

गोलोकवासी ग्रन्थकार ('प्यारे' कवि)

[सचित्र संग्रह]

रचयिता

राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह 'प्यारे'

(भूतपूर्व सूर्यपुराधीश)

प्रकाशक

श्रीराजराजेश्वरी-साहित्य-मन्दिर

सूर्यपुरा (शाहाबाद ; बिहार-प्रान्त)

प्रथम संस्करण

विक्रम-संवत् १९९४

मुद्रक—हनुमानप्रसाद, विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

श्रीरामनवमी

सन् १९३७ ई०

वक्तव्य

इस ग्रन्थ के रचयिता मेरे पूज्य पिताजी का गोलोकवास हुए आज पूरे ३४ साल हो गये। उनकी रचनाओं के प्रकाशन में इतना विलम्ब क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में दो शब्द कह देना मुझे नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

जिस समय ग्रन्थकार की शोकमयी मृत्यु की दुःखद घटना घटी—सन् १९०३ में, उस समय मेरी तथा मेरे अनुज कुमार राजीवरञ्जनप्रसादसिंह की बहुत छोटी अवस्था थी। पिताजी की मृत्यु के अनन्तर राज्य का प्रबन्ध 'कोर्ट-आफ-वार्ड्स' के हाथ चला गया। हम दोनों भाइयों के भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का भार भी गवर्नमेंट के ही हाथ में रहा।

सन् १९१७ ई० में, बालिग होने पर, राज्य की बागडोर मेरे हाथ में आई। १४ वर्ष की लम्बी अवधि तो इस प्रकार बीत गई। इस अवधि में सारी चीजें अस्तव्यस्त रूप में पड़ी रहीं।

अब मुझे उनकी इन रचनाओं का स्मरण हुआ। बड़ी कठिनाई से इनका पता लगाया गया। जिस सज्जन के हाथ में ये पड़ गई थीं उनसे इनका उद्धार करने में काफी अड़चनें आईं और बहुत खर्च भी करना पड़ा। इनके संकलन का भार मैंने पिताजी के सखा और दरबारी कवि 'रीवाँ-निवासी मिश्र श्यामसेवकजी' को सौंपा, जिनके सहवास-काल में ही इनमें अधिकांश की रचना हुई थी। आपने इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को उद्योगपूर्वक किया तो जरूर; पर इसमें आपने पूरे पाँच वर्ष लगाये, और जो कुछ संकलन किया भी, वह अपने ढंग से।

मुझे वह संकलन सन्तोषप्रद नहीं जँचा। मैं चाहता था कि छपने के पहले इन रचनाओं का विषय-क्रम से समुचित विभाग कर दिया जाय और आलोचनात्मक दृष्टि से इन पर कुछ प्रकाश डालते हुए एक अच्छी भूमिका आरम्भ में दी जाय।

राजकाज के झमेलों में मैं इतना व्यस्त था कि मुझे इस कार्य के लिए अवकाश मिलना दुर्लभ था। अतएव स्थानीय हाइ-इङ्गलिश-स्कूल के हेड-पंडित 'श्रीरामवृक्ष शर्मा काव्यतीर्थ' से मैंने इस कार्य के सम्पादन के लिए अनुरोध किया। उन्होंने इसे अपने हाथ में लिया। दुर्भाग्य-वश एक दिन अकस्मात् उनके डेरे में चोरी हुई और अन्यान्य कई चीजों के साथ इन रचनाओं का पुलिन्दा भी गायब हो गया! इस खबर को सुनकर मैं कितना दुःखी और चिन्तित हुआ, यह वही समझ सकते हैं, जिन्हें ऐसी अपूर्व निधि खो बैठने का शोक हुआ हो।

मैं बिलकुल हताश हो बैठा। पर होना तो कुछ और ही था। अकस्मात् एक दिन गाँव के कुछ बच्चे इन रचनाओं की पोथी के साथ खेलते नजर आये! इस आकस्मिक घटना को मैंने ईश्वरीय अनुकम्पा समझा और यथासंभव शीघ्र ही इनको मुद्रित कर प्रकाशित करने के लिए उतावला हो उठा। इसी बीच मैं बहुत अस्वस्थ हो गया, और स्वास्थ्य-सुधार की चिन्ता में ही कई साल कट गये!

आज से दो वर्ष पहले मुझे अपने जिले के साहित्यसेवी श्रीशिवपूजनजी से मुलाकात हुई। मैंने आपसे इन रचनाओं का जिक्र किया और अनुरोध किया कि इनके सम्पादन और मुद्रण का भार आप अपने ऊपर लेकर इस कार्य में मेरा हाथ बटावें। आपने सहर्ष इस कार्य में मेरी सहायता करने का वचन दिया और उक्त हस्तलिपि को नये ढंग से संकलित तथा सम्पादित करने के लिए अपने साथ ले गये। इधर कई वर्षों से आप 'पुस्तक-भंडार' (लहेरिया-सराय) में हिन्दी की सेवा कर रहे हैं, और इसीलिए मैंने इच्छा प्रकट की कि वहीं के 'विद्यापति प्रेस' में आपके ही निरीक्षण में इसका मुद्रण भी हो तो बहुत अच्छा हो। प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन, विषय-विभाग, चित्रों की सजावट—सब कुछ आपके ही अदम्य उत्साह तथा अनवरत परिश्रम का फल है। इसके लिए शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करना सम्भव नहीं। यदि आप इस कठिन परिश्रम का बीड़ा न उठाते, तो यह ग्रन्थ इस रूप में आज हिन्दी-संसार के सामने आता या नहीं, मैं कह नहीं सकता। इसके लिए अलंकार-चित्रों के बनाने में 'पुस्तक-भंडार' के कुशल कलाकार श्रीउपेन्द्र महारथी ने जो श्रम किया है उसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

हाँ, इस ग्रन्थावली के जीवनेतिहास की एक और कहानी कहने से रह गई। वह यों है कि आज से लगभग १४ वर्ष पूर्व, जिस समय शिवपूजनजी 'मतवाला'-मंडल (कलकत्ता) में रहते थे, मैं कलकत्ता गया था, और वे जब आरा-निवासी पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा के साथ मेरे पास आये, तब मैंने इस ग्रन्थावली की मूल प्रति उन्हें दी थी—प्रेस-कापी तैयार करने के लिए। उन्होंने इसके वसन्त-वर्णन का कुछ अंश 'मतवाला' के वसन्ताङ्क में प्रकाशित भी किया था। पर वे प्रेस-कापी तैयार न कर सके और ग्रन्थावली लगभग चार साल तक उनके पास पड़ी रही। जब वे काशी आ गये तब उन्हें साहित्यिक कार्य में बहुत व्यस्त देख मैंने इसे वापस मँगा लिया और फिर प्रेस-कापी तैयार करा डाली।

अस्तु। इन रचनाओं का रचना-काल आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व का है; इस बीच हिन्दी-साहित्य की जो अभूतपूर्व प्रगति और उन्नति हुई है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। शृङ्गार-रस और व्रजभाषा की रचनाएँ अब असामयिक प्रतीत हो रही हैं; पर जिस समय ये रचनाएँ रची गई थीं, वह समय आज से सर्वथा भिन्न था। मेरे पूज्य पिताजी हिन्दी-भूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे और उनसे इनकी खासी घनिष्ठता थी। व्रजभाषा की रचनाओं और

शृङ्गार-रस की प्रधानता का वह युग था। उस समय यदि इनका प्रकाशन हुआ रहता, तो हिन्दी-साहित्य में इनका क्या स्थान होता, यह विचारने की बात है।

पूज्य पिताजी ने २५ से ३० वर्ष की अवस्था में इन कविताओं में अधिकांश की रचना की थी। ३७ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गई। अतएव उनको इन्हें प्रकाशित करने का मौक़ा ही नहीं मिला।

आज हिन्दी-संसार में इस ग्रन्थावली का क्या स्थान होगा, इसका निर्णय तो गुणग्राही पाठकों के हाथ में है। इसको प्रकाशित कर मैंने तो केवल अपना कर्त्तव्य-पालन किया है—पितृऋण से मुक्त होने का प्रयत्न-मात्र किया है। यदि इसको सुन्दर और उपयोगी बनाने में मुझे कुछ भी सफलता मिली हो, तो मैं अपनेको कृतकृत्य समझूँगा।

सूर्यपुरा — विनीत

होलिकोत्सव, १९९३ — राधिकारमणप्रसादसिंह



ग्रन्थकार-परिचय

बिहार-प्रान्त के दक्षिण खंड में, शाहाबाद ज़िले के अन्दर, 'सूर्यपुरा' एक प्राचीन और प्रतिष्ठित रियासत है। रियासत की राजधानी 'सूर्यपुरा', ईस्ट-इंडियन-रेलवे के 'डुमरॉव' नामक प्रसिद्ध स्टेशन से, क़रीब बीस-पचीस मील दक्षिण पड़ता है। इस ग्रंथावली के रचयिता 'गोलोकवासी राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंहजी' उक्त राज्य के ही अधीश्वर थे।

आपका शुभ जन्म सूर्यपुरा में, विक्रम-संवत १९२२ के पौष-मास में, हुआ था। आपके पूज्य पिता 'दीवान श्रीरामकुमारसिंहजी' बहुत गम्भीर प्रकृति के विचारशील व्यक्ति थे। विद्या का अनुराग उनके हृदय में यथेष्ट था। प्राचीन कवियों और कविताओं का वे बहुत आदर करते थे। शान्त-रस और भक्ति-पक्ष की कविताएँ उन्हें विशेष प्रिय थीं। शिव-पार्वती के वे अनन्य उपासक थे। 'कुमार' उपनाम से भक्ति-पक्ष की कुछ रचनाएँ भी उन्होंने की थीं, जिनसे उनकी कवित्व-शक्ति का भी अच्छा परिचय मिलता है। सुप्रसिद्ध 'डुमरॉव-राज्य' की दीवानी का सम्बन्ध बहुत दिनों से पूर्वजों में चला आता था, इसीसे उनके और उनके पूर्वजों के नाम के पहले 'दीवान' की उपाधि अवश्य लिखी जाती थी।

स्वर्गीय राजा साहब बचपन से ही बहुत कुशाग्रबुद्धि थे। खेल-कूद में भी आपका मन बहुत लगता था। आरम्भ में आपको उर्दू, फ़ारसी और फिर संस्कृत तथा अरबी की शिक्षा दी गई। इसके बाद सुयोग्य शिक्षकों की देखरेख में आपने अँगरेज़ी भाषा की भी पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की। आप बड़े मेधावी विद्यार्थी थे।

बाल्यावस्था में आप बड़े चंचल स्वभाव के थे—तरह-तरह के खेल खेला करते थे। साथी बालकों में किसी भी तरह का भेद-भाव रखे बिना आप सब पर हार्दिक प्रेम रखते थे। पतंग उड़ाने का शौक़ आपको बहुत था और यह शौक़ बराबर बना रहा। यहाँ तक कि 'राजा' होने पर भी आप अपने महल की छत पर बैठकर पतंग उड़ाया करते थे! कुश्ती और व्यायाम की ओर आपकी विशेष रुचि थी। यही कारण था कि मृत्युपर्यन्त आपका



ग्रन्थकार

शरीर सर्वाङ्गसुन्दर और सुघटित बना रहा। यद्यपि आप खेल-तमाशे के बड़े प्रेमी थे, तथापि आपके पठन-मनन में कभी क्षति होती नहीं देखी गई। अपनी तीव्र बुद्धि और विलक्षण स्मरणशक्ति के कारण आप अपने सहपाठियों में बराबर सर्वप्रथम होते रहे।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में, संवत् १९३७ में, बहुत धूमधाम के साथ, आपका शुभ विवाह, उत्तर-बिहार के 'मुजफ्फरपुर' जिले में, 'परमानन्दपुर' के प्रतिष्ठित रईस 'दीवान चतुर्भुज सहाय डिप्टी-कलक्टर की कल्याणी कन्या से, हुआ था। उस विवाहोत्सव में डुमराँव के तत्कालीन महाराजा श्रीमहेश्वरबख्शसिंह बहादुर तथा अन्य अनेक गण्यमान्य व्यक्ति सूर्यपुरा पधारे थे।

आपके विवाह के कुछ ही दिनों के बाद, संवत् १९३८ की चैत्र-शुक्ला द्वादशी को, लकवे की बीमारी से, आपके पूज्य पिताजी का कैलास-वास हो गया। यों तो पिता के समय से ही राज-पाट का कुछ अंश आपके निरीक्षण में रहता था, पर अब तो सारा भार आपके ही कंधों पर आ पड़ा। किन्तु इस उत्तरदायित्व को किस ख़ूबी और मुस्तैदी से आपने निबाहा, यह इसीसे प्रकट है कि थोड़े ही समय में राज्य की आय पहले से बहुत अधिक बढ़ गई।

सोलह वर्ष की अवस्था में ही, अचानक पितृ-वियोग के कारण, आपको राज-काज के झंझट-झमेलों का विकट सामना करना पड़ा। फिर भी साहित्य की ओर आपकी जो अभिरुचि शिक्षण-काल से ही चली आ रही थी, वह अनुदिन प्रखर होती गई। राज-काज से बचा अधिकांश समय आप साहित्य-सेवा में ही व्यतीत करते थे। हिन्दी, अँगरेजी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, बँगला आदि के अतिरिक्त पश्तो, गुर्खी, उड़िया आदि कई अन्य भाषाओं का भी आपको अच्छा ज्ञान था।

आपका पुस्तक-प्रेम परम प्रशंसनीय था। पाँच-पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक आप एक ही दिन में समाप्त कर डालते थे, और वह भी गम्भीर मनन के साथ। आपकी पढ़ी विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का एक बड़ा-सा पुस्तकालय हो गया है, जो अद्यावधि वर्त्तमान है।

संगीत और काव्य की ओर आपकी प्रवृत्ति आरम्भ से ही थी, जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। गाना और बजाना—दोनों ललित कलाओं के आप अच्छे जानकार थे। आपके दरबार में प्रायः गुणियों और कलावन्तों का जमघट होता था। आप उन सबका बहुत आदर करते थे। शतरंज के भी आप अच्छे खिलाड़ी थे।

आपके बनाये बहुत-से ललित-मधुर गीत चिट-पुर्जों पर लिखे हुए थे, जिनमें बहुत-से

नष्ट हो गये, बहुत थोड़े ही मिल सके हैं। आपकी यह आम आदत थी कि जब कोई सुन्दर चित्र या दृश्य देखते, चट उसपर कोई गीत बना डालते।

साहित्य-सेवियों और कवियों का आप बड़ा सम्मान करते थे। आपके दरबार में बहुत-से कवि और शायर रहते थे; बाहर से भी बहुतेरे आया करते थे। आपके दरबारी कवियों में कविवर लछिराम, कवि प्रभाकर (महाकवि पद्माकर के पौत्र), कवि सन्त, मिश्र श्यामसेवक आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दरबार में अक्सर मुशायरे हुआ करते थे। कितने ही मीर-मीरजे मुलाजिम थे।

ब्रजभाषा और शृङ्गार-रस की कविताएँ आपको विशेष प्रिय थीं—यद्यपि भक्ति-पक्ष की भी कुछ कविताएँ आपने रची हैं। उर्दू-फ़ारसी में भी आप रचनाएँ करते थे। आपका लिखा एक 'दीवान' भी था, जो मीरज़ा लेकर चले गये। और भी बहुत-सी कविताएँ यों ही नष्ट हो गईं। आपकी अधिकांश रचनाएँ सन् १८८५ से १८९५ ई० तक की हैं।

आप स्वयं बहुत अच्छे पहलवान थे। अतएव पहलवानों का बड़ा सत्कार करते थे। मथुरा और कई अन्य स्थानों के पहलवान आपके दरबार में बराबर रहते भी थे। कुश्ती लड़ने, घोड़ा चढ़ने, बन्दूक़ चलाने, शिकार खेलने आदि में आप बड़े दक्ष एवं सिद्धहस्त थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर रमेशचन्द्र दत्त, महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर आदि सम्भ्रान्त व्यक्तियों से आपकी बड़ी घनिष्ठता थी। शम्सुल-उलमा नवाब इमदाद इमाम साहब, मौलवी फ़जल इमाम साहब, मिस्टर राबिन्सन, श्रीअनुकूलचन्द्र चटर्जी आदि आपकी विद्वत्सभा के सहृदय सदस्य थे।

भारतेन्दुजी जब डुमराँव आये, तब सूर्यपुरा भी आकर आपके यहाँ ठहरे थे। आप भी भारतेन्दुजी के यहाँ काशी गये थे और उन्होंने आपकी बड़ी आवभगत की थी।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ तो आप बहुत दिनों तक रहे। उनकी नाटिका 'चित्राङ्गदा' निकलने के बाद आपने उसका हिन्दी-अनुवाद भी किया, जो अमित्र छन्द और नवीन शैली के कारण अपना खास महत्त्व रखता है। 'वीरबाला' (ऐतिहासिक नाटक) और 'स्वाधीन बाला' (प्रहसन) के अनुवाद तो अधूरे ही रह गये!

जनता के हित का खयाल आपको बराबर रहता था। इसके लिए समय-समय पर आपने बड़ी-बड़ी रक़में खर्च की थीं। १८९२ ई० में, जब शाहाबाद के कलक्टर 'मिस्टर स्कीन' ने, 'आरा'-निवासियों का जलकष्ट दूर करने के लिए, पानी की कल खोलने के उद्योग में जिले के सभी धनी-मानी प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक बड़ी सभा करके चन्दे की अपील की, तब

आपने कहा कि अन्य जनों के चन्दा देने के अनन्तर जितने रुपयों की कमी होगी, मैं पूरा कर दूँगा। अन्त में अपने वचनानुसार आपने एक लाख पचास हज़ार रुपये उक्त कार्य के लिए सहर्ष दे डाले।

सन् १८८९ ई० में, पटना में, कायस्थ-कानफरेंस हुई थी, जिसमें आपने पाँच हज़ार रुपये की सहायता दी थी। उसकी स्वागतकारिणी समिति के सभापति-पद से जो आपका ज़ोरदार भाषण हुआ था, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी।

सन् १८८७ ई० में बङ्गाल-बिहार के तत्कालीन गवर्नर 'सर स्टुअर्ट बेली' को आपने अपने यहाँ निमंत्रित कर 'सूर्यपुरा' में अस्पताल की नींव रखवाई, जिससे आज भी ग़रीब रोगियों की पर्याप्त सेवा हो रही है।

आपने पिता के निधन के दो-तीन वर्ष बाद, अपनी माताओं को तीर्थाटन कराने के लिए, मकर-स्नान के समय, आपने तीर्थराज प्रयाग की यात्रा की थी। उस यात्रा में 'डुमरॉव' से इलाहाबाद तक स्पेशल-ट्रेन छूटी थी। आपने एलान कर दिया था कि जो भी चाहे, ट्रेन से प्रयाग-यात्रा कर सकता है। इस सुअवसर से बहुतों ने लाभ उठाया था।

सन् १८७३—७४ के भयंकर अकाल में भी, दुर्भिक्ष-पीड़ितों के कष्ट-निवारणार्थ, आपके पूर्वजों ने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था।

आप बृटिश सरकार के बड़े हिमायती थे। समय-समय पर उसकी बड़ी मदद भी करते थे। सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में भोजपुरी बलवाइयों ने सूर्यपुरा के क़िले को भी घेर लिया था। क़िले के फाटक पर आजतक गोले का दाग़ है। उस समय आपके पूर्वजों ने बड़ी वीरता के साथ बलवाइयों को शान्त करने का प्रयत्न किया था। आपके पिताजी ने अपनी रियासत की ज़मीन में निकली हुई सरकारी नहर के मूल्य-स्वरूप एक लाख पचासी हज़ार रुपये स्वयं न लेकर सरकार को दे डाले थे।

सन् १८९४ ई० में, आपकी राजभक्ति और अन्य सद्गुणों से प्रसन्न होकर, बृटिश सरकार ने आपको 'राजा' की उपाधि प्रदान की। उस समय 'सूर्यपुरा' और 'ससराम' के निवासियों ने सोत्साह सभाएँ करके आपको अभिनन्दन-पत्र दिये थे—शानदार उत्सव मनाकर आन्तरिक हर्ष प्रकट किया था।

आप गौर-वर्ण और मझोले क़द के थे। शरीर गठीला, सुडौल, बलिष्ठ और सुदृढ़ था। बड़ी-बड़ी सरस आँखें और काले घुँघराले केश बड़े मनोहर लगते थे। आपका चित्ता-कर्षक मुखमंडल देखकर ही आपकी आभ्यन्तरिक सरलता और सहृदयता का पता लग जाता

था। आप सदा प्रसन्न-वदन रहते थे। सत्यप्रियता आपमें कूट-कूटकर भरी थी। सत्यवादियों की आप बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। सत्य बात कह देने पर अपराधियों को तुरत क्षमा कर देते थे। शील का प्रभाव आप पर इतना अधिक था कि उसके कारण कभी-कभी मानसिक वेदना भी सहनी पड़ती थी। सादगी को आप बहुत पसंद करते थे। छल-कपट से सदा दूर ही रहते थे। प्राचीनता के पुजारी होते हुए भी अन्धपरम्परा को आप बिलकुल प्रश्रय नहीं देते थे। समयानुकूल सुधारों से आपकी बड़ी सहानुभूति थी।

विक्रम-संवत् १९६० की चैत्र शुक्ला नवमी (सोमवार)—तारीख ६ अप्रैल १९०३ ई०—को, ३७ वर्ष की अवस्था में, आपका अचानक इहलोक-लीला-संवरण हो गया। इस दुःखद घटना से चारों ओर शोक छा गया। सबने वह क्षति महसूस की—जिसकी पूर्ति असम्भव है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आपके शील-स्वभाव में बहुत-कुछ समानता थी। दोनों ही समकालीन, ब्रजभाषा और शृंगार-रस के प्रेमी कवि, सौन्दर्योपासक, कृष्णभक्त और गुणियों के प्रवीण पारखी थे। इसी कारण, स्वभावतः इन दोनों में घनिष्ठ मित्रता भी हो गई थी। सचमुच यह एक आश्चर्य ही की बात है कि इन दोनों सहृदय मित्रों का गोलोक-गमन अत्यल्पावस्था में ही हो गया—भारतेन्दुजी का ३५ वर्ष की आयु में * और आपका ३७ वें वर्ष में!

गत वर्ष (मार्च १९३६ में) आपकी सहधर्मिणी रानी साहबा का भी स्वर्गवास हो गया!

आप जैसे तेजस्वी, यशस्वी और मनस्वी थे, वैसे ही आपके दोनों सुयोग्य सुपुत्र भी बड़े ही सहृदय और उदार हैं। राजा राधिकारमणप्रसादसिंह एम० ए० का शुभ जन्म संवत् १९४७ में और कुमार राजीवरञ्जनप्रसादसिंह एम० ए० का संवत् १९५० में हुआ था।

श्रीमान् राजा साहब हिन्दी के स्वनामधन्य कहानी-लेखक और गद्य-कवि हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानी की आपकी मनोरम शैली बिलकुल अनूठी है। हिन्दी, संस्कृत, बँगला, अँगरेजी, उर्दू, फारसी आदि कई प्रमुख भाषाओं के साहित्य का आपने बहुत गहरा अध्ययन किया है। इन भाषाओं के आप बहुत अच्छे विद्वान् हैं। भारतीय दर्शन की ओर आपका विशेष झुकाव है। आपका अधिकांश समय स्वाध्याय और साहित्य-संवर्द्धन में ही व्यतीत होता है। राजकाज की देखभाल अधिकतर कुमार साहब ही करते हैं। आपके दो सुपुत्र हैं—श्रीबालाजी और श्रीशिवाजी, जो क्रमशः इलाहाबाद-विश्वविद्यालय और सूर्यपुरा-हाइस्कूल में उच्च शिक्षा पा रहे हैं। 'गल्प-कुसुमावली', 'नवजीवन', 'नवीन सुधारक', 'तरंग' आदि कई पुस्तकों की आपने रचना की है। आप बड़े साहित्य-रसिक, सादगी-पसन्द, मिलनसार, मिष्टभाषी और

* भारतेन्दुजी का जन्म विक्रम-संवत् १९०७ में और निधन संवत् १९४१ में हुआ था।

विनोद-प्रिय हैं। आपकी सौम्य प्रकृति में अद्भुत आकर्षण है। 'राम-रहीम' नामक आपका एक बृहत् मौलिक उपन्यास शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है, जो हिन्दी में अपने ढंग और अपनी शैली का अद्वितीय होगा।

श्रीमान् कुमार साहब अँगरेजी के बहुत अच्छे विद्वान् और वर्तमान बिहार-कौंसिल के अपर-चेम्बर के माननीय मेम्बर हैं। पुराणादि संस्कृत-ग्रन्थों में आपकी बड़ी आस्था है। संस्कृत-साहित्य-मर्मज्ञ पंडितों का बहुत आदर करते हैं। आप आदर्श गोभक्त और भ्रातृभक्त हैं। प्रजा-पालन में आपकी तत्परता स्तुत्य है। आपका राज्य-प्रबन्ध-कौशल अभिनन्दनीय है। आपके एकमात्र सुशील सुपुत्र श्रीराणाजी इलाहाबाद में कालेज की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

परमात्मा करे, राजा साहब और कुमार साहब—जिन दोनों में राम-लक्ष्मण-सा अलौकिक भ्रातृस्नेह है—चिरायु हों; और अपने उदार सत्कार्यों से साहित्य तथा देश का अधिकाधिक उपकार करते रहें।



प्रकाशकीय निवेदन

श्रीराजराजेश्वरी-साहित्य-मन्दिर में सरस्वती-समाराधन-समारम्भ के निमित्त यह सचित्र ग्रन्थावली ही प्रथम पुष्प है। वर्त्तमान सूर्यपुराधीश श्रीमान् राजा साहब का वृहत् मौलिक उपन्यास 'राम-रहीम' द्वितीय पुष्प होगा, जो इस ग्रन्थावली के बाद शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। आगे के पुष्पों में श्रीमान् राजा साहब की अन्य पुस्तकें होंगी, जो कई साल पहले छपी थीं; पर जो इस समय—अधिक माँग होने पर भी—दुष्प्राप्य हो रही हैं। भगवान् साहित्य-मूर्त्ति श्यामसुन्दर से प्रार्थना है कि दया करके इस 'मन्दिर' की महत्त्वाकांक्षा को सफल करें।

इस 'मन्दिर' की स्थापना इस ग्रंथावली के रचयिता की पुण्यस्मृति में ही हुई है, और यह बड़े सन्तोष की बात है कि ग्रंथकार की निधन-तिथि (श्रीरामनवमी) के दिन ही यह ग्रंथावली प्रकाशित भी हो रही है। विश्वास है कि प्रतिवर्ष यह पुण्य-स्मृति-तिथि इस 'मन्दिर' को एक नवीन साहित्य-सुमन से सुसज्जित होने का गौरव प्रदान करेगी।

इस ग्रन्थावली के लिए श्रीमान् राजा साहब ने जो वक्तव्य दिया है, उसमें पाठकों को इसके पुनरुद्धार की करुण कहानी मिलेगी। किन्तु इसका पुनरुद्धार हो जाने पर भी इसका जीर्णोद्धार अनेक वर्षों और विघ्न-बाधाओं के पश्चात् हुआ; और यह भी ग्रन्थकार के इष्टदेव की ही कृपा का फल है।

इसकी पांडुलिपि तैयार कराने में जो कठिनाइयाँ हुईं, उनका वर्णन नहीं हो सकता; क्योंकि मूल प्रति अत्यंत जीर्ण-शीर्ण दशा को पहुँच गई थी और बहुत-से चिट-पुर्जे भी बिखरे हुए थे। फिर भी लिखावट आदि में यथासम्भव ग्रन्थकार की मौलिक शैली की ही रक्षा की गई—किसी प्रकार के संशोधन अथवा परिवर्त्तन को कहीं स्थान नहीं दिया गया—इसलिए कि उस युग की प्रणाली और प्रयोगों का कुछ आभास मिल सके।

ग्रंथकार के दरबारी कवियों की भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं; पर उन्हें इस ग्रंथावली में स्थान न दिया जा सका, वे कभी अलग ही छपेंगी। हाँ, ग्रंथकार के पूज्य पिताजी की

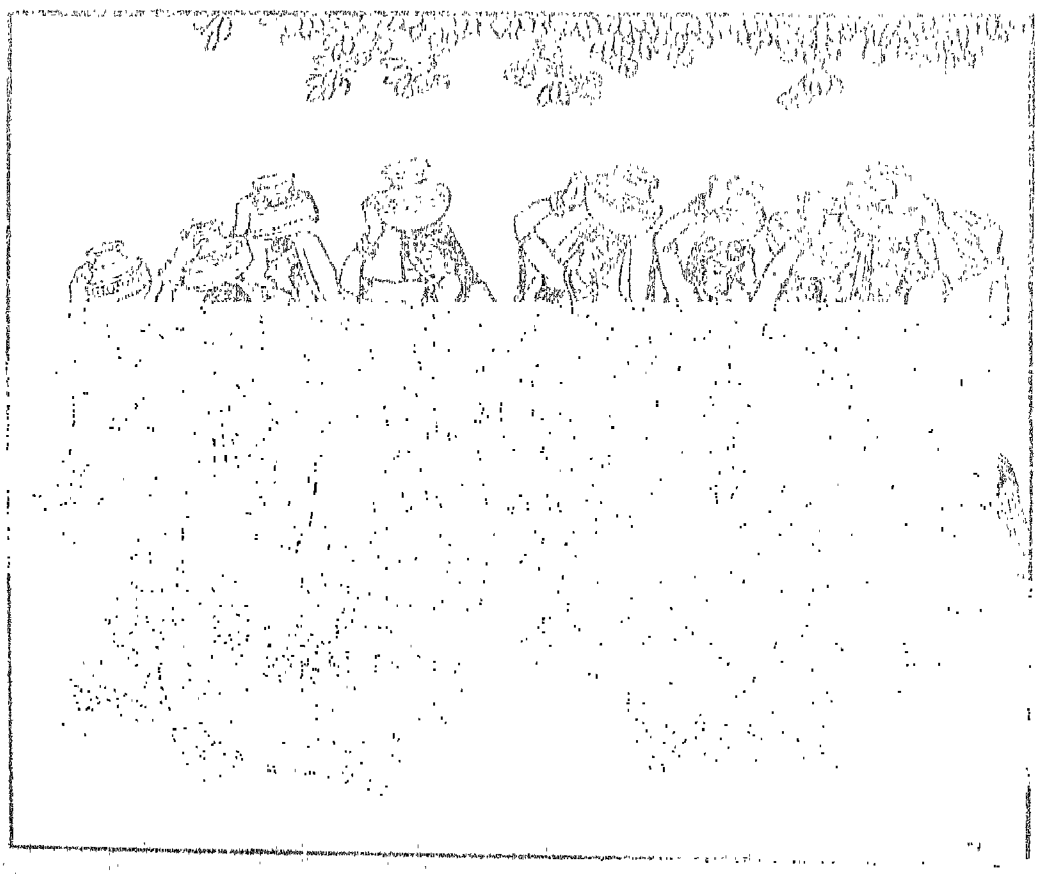
कुछ स्फुट रचनाएँ इसके परिशिष्ट में दी गई हैं, जो सौभाग्यवश इसी ग्रंथावली के अस्तव्यस्त पत्र-खंडों पर यत्र-तत्र अंकित थीं।

यद्यपि ग्रंथावली की कुछ चीज़ें अधूरी ही हैं, तथापि प्रकाशित कर दी गई हैं; क्योंकि ग्रंथकार की एक पंक्ति को भी नष्ट होने देना अभीष्ट न था। ग्रंथकार ने सूर्यपुरा के प्राचीन गढ़ से पृथक्, अत्यंत रमणीय स्थान में, अपने लिए जो 'उद्यान-भवन' (गार्डन-हाउस) नामक नवीन एवं प्रिय सुख-निवास बनवाया था, उसका चित्र भी इसमें दे दिया गया है और उनके स्मारक-स्वरूप निर्मित हाइस्कूल का भी। जो भी सामग्री प्राप्त हो सकी, उसका सदुपयोग यथास्थान कर दिया गया है; पर जो अप्राप्य रह गई, उसका मोह छूटना असंभव है।

आशा है, साहित्यानुरागी काव्यरसिक सज्जन इस ग्रंथावली को पाकर अवश्य आप्यायित होंगे।

सूर्यपुरा
शाहाबाद

व्यवस्थापक
श्रीराजराजेश्वरी-साहित्य-मंदिर



[illegible]

[illegible]




श्रीकृष्ण-गोपिकाष्टक

कानन मुरली-मधुर धुनि, नैनन में ब्रज-बाल
मन-मन्दिर में राधिका, रोम-रोम गोपाल

कवित्त

१

छाया हू छुअत तेरो भूलत जगत सब, फूलत हिये में बस एक तेरो नाम है ।
दीखत सुनामी औ कुनामी दोऊ एक सम, तेरे छकि छाक दुख सुख सो न काम है ।
तू ही प्रगटावत पखान हू ते 'प्यारे' हरि, तेरे डोर नाध्यों चहूँ डोलै घनस्याम है ।
पावन परम जग-पावन-करनहारो, धन्य धन्य प्रेम तोहिं कोटिन प्रनाम है ॥

२

कैसो जप जोग व्रत नेम ग्यान ध्यान कैसो, कैसो प्रानायाम चित्त इनमें न नाखिये ।
लहिये अमित सुख, लूटिये अनन्द-रासि, याही को हिये में दृढ़ ध्यान धरि राखिये ।
फेंकिये मयूख, ढरकाइये पियूष-घट, 'प्यारे' याही रस को सुबार-बार चाखिये ।
भाखिये न और कछु, रहिये सु मौन सदा, भाखिये जो मुख ते तो प्रेम प्रेम भाखिये ॥

३

मान्यो कियो चहुँघा चवाव ब्रजबीथिन में, बैर को सभी के मुख चरचा रह्यो कियो ।
फेरे रहे नैन गुरु लोग हाय यों लिखि ते, रोष को प्रबाह नित-नूतन बह्यो कियो ।
छिनहूँ न पायो चैन, जीवन सिरानो योंही, दूबरो दुखारो तन दाहन दह्यो कियो ।
बिचलो न पाँव प्रेमपन्थ ते 'पियारे' तऊ, लाख लाख दुःख याही देह पै सह्यो कियो ॥

४

प्रेम ही की दासी अहौं, भूखी बस प्रेम ही की, प्रेम ही को एक तन-मन ते चहति हौं ।
प्रेम ही को जानति औ मानति सुप्रेम ही को, रैन दिन प्रेम ही के ध्यान में रहति हौं ।
प्रेम ही ते नाम, काम मेरो एक प्रेम ही ते, प्रेम ही को 'प्यारे' बिसवास कै गहति हौं ।
प्रेम ही हमारो नेम, प्रेम ही हमारो जप, प्रेम ही हमारो तप, प्रेम ही कहति हौं ॥

५

प्रेम ही के फन्द परि सरबस गँवाई हाय, प्रेम ही के हेत बदनामि हूँ लहति हौं ।
प्रेम ही सो कानि गई, प्रेम ही सो मान गयो, प्रेम ही किये ते देखु लाखन सहति हौं ।
प्रेम ही बिगार्यो मोहि, प्रेम ही उजार्यो मोहि, प्रेम ही के दाह देह आज लौं दहति हौं ।
प्रेम ही किये ते गति औरै मति औरै भई, प्रेम को तजौं ना तऊ प्रेम ही चहति हौं ॥

६

कैसो गेह-काज जग-लाज कुल-कानि कैसी, कैसो उपहास टेरि-टेरि के सुनाती हूँ ।
कढ़ि है न ही ते, जौन होनी होय होय भले, चौचँद चबाइन सो नेक ना सकाती हूँ ।
पाय परौं 'प्यारे' कर जोरौं बिनती हूँ करौं, जान दे हमें री परी जौन मग जाती हूँ ।
डोलो नहिं संग मेरो छोलो ना करेजो बीर, बोलो नहिं मोसो मैं तो प्रेम-मद माती हूँ ॥

७

छानि देख्यो बेद औ पुरानन को काऊ दम, टोय देख्यो जोगिन जतीन गुन-ग्रामी को ।
सिव देख्यो, बिधि देख्यो, कृष्ण ब्रजचन्द देख्यो, देख्यो है अनेक राव राजा खुसनामी को ।
कहँ लौं बखानौं ताहि 'प्यारे' जौन-जौन देख्यो, देखि हार्यो जगत सुनामी बदनामी को ।
जाहि देखि और के न देखिबे को चित्त चहै, ऐसो एक देख्यो पंथ प्रेम अनुगामी को ॥

८

सवैया

छूटे न प्रेम को पंथ पुनीत, घटे नहिं आदर प्यारी सों पी को ।
भाव वही जो हरै मन को, अरु बात वही जो रुचै सबही को ।
मान हु को परमान अहै, यह तोहि अनीति सिखाइ सखी को ?
फीको लगै रस-हीन अमी, रस राखि हलाहल हूँ लगै नीको ॥

९

हम लाख सहैंगी सभी बिधि ते, पै उन्हैं सपने ना उराहहिंगे ।
वह लाख करैं पै तऊ चित सो, हम 'प्यारे' उन्हैं तो सराहहिंगे ।
हमको वह नीकी करैं या बुरी, हम तो रस-रीति निबाहहिंगे ।
सुख होवै हमैं कै हमैं दुख हो, पर चाहति हैं तिन्हैं चाहहिंगे ॥

१०

तुम्हरे मिलिबे को नगीच हो सो अहै, सागर-पार को दूर हमैं।
अभी ल्यावैं अजू नभ के ससि को, तुम लाल कहो जो जरूर हमैं।
दुख दो तो अरै सुख ओढ़ी हमैं, बिष दो तो है जीवन-मूर हमैं।
हम दासी तिहारी हैं 'प्यारे' पिया, तुम जो-जो कहो मनजूर हमैं॥

११

अति टेढ़ो सनेह को मारग है, बिन जाने कोऊ ना निगाह करै।
बदनाम जो होय तौ होय सखी, पर 'प्यारे' कबौं नहिं आह करै।
नहिं नेकहुँ चौचँद सो बिचलै, बरु औरहु यामें उछाह करै।
सुख यामें मिलै कै मिलै दुख ही, पर नेह करै तौ निबाह करै॥

१२

समुझावन को नहिं काम कछू, मन 'प्यारे' पिया को दियो सो दियो।
मिलि गाँव चवाव करो सिगरो, सुकलंक को टीको लियो सो लियो।
अब तो कुल-नेम बिसारि सखी, छकि प्रेम को प्यालो पियो सो पियो।
गुरु लोग भले ही रिसाहुँ हमैं, नँद-नन्द सों नेह कियो सो कियो॥

१३

लाज छुटै, घर-बार छुटै, कुल-कानि छुटै, नहिं संक हियो।
लोक छुटै, परलोक छुटै, छुटि जाय सखी पितु-मातु बियो।
प्रानहूँ छूटै तो छूटै भले, पर 'प्यारे' यही दृढ़ मंत्र लियो।
होनी हो जौन सो होय सखी, अब तो नँदलाल सों नेह कियो॥

१४

गुरु लोगन को नहिं भीति इन्हैं, अरु संक कलंक को त्याग चुकीं।
सब ही सो बिराग उदास है ये, मनमोहन-राग सो राग चुकीं।
'कबि प्यारे' न सीख धरैंगी कबौं, पद-पंकज-प्रेम में पाग चुकीं।
बरजो कोउ लाख नहीं मनिहैं, पिय सो अँखियाँ यह लाग चुकीं॥

१५

धरि राखी है जा चित में तव ध्यान, मनोहर तामें न धीर धर्‌यो बनै ।
पिय 'प्यारे' रटी मुख जेही सदा, तेहिते अब हाय नहीं उचर्‌यो बनै ।
गहिरे गड़ि के सु वियोग-पयोनिधि, ऊपर सीसहू नाहिं कर्‌यो बनै ।
जिन नैनन में तव रूप बसै, तिन नैनन कैसे सुनीर भर्‌यो बनै ।।

१६

एक बार हू वा मुखचन्द बिलोकि, सु और कहू फिर कैसे चितैये ।
कर जो पिया 'प्यारे' को माल बनो, किमि और गले को हुमेल बनैये ।
मन-मोहनी बाँसुरी-तान सुनो, तिन कानन को कहा और सुनैये ।
जिहि चित्त में मोहन मित्त बसै, तेहि चित्त में और को कैसे बसैये ।।

१७

पिय 'प्यारे' से प्रीति करी जो इहा, तौ सदा कुलटा ही हमैं भखियो ।
अपराधिनी दोष-भरी हौं सही, पर मेरे न दोषन को लखियो ।
लरिकाई की संगिनी हौं तुम्हरी, बिनती इतनो या मेरी रखियो ।
बिचली नहिं प्रेम के मारग ते, कहि दीजियो मोहन सो सखियो ।।

१८

साज सजो सो सजो सजनी, नित साज नयो तन पै न सजौंगी ।
भोरु नहीं मन लोगन ते, भयभीत भई भरमी न भजौंगी ।
लाज किये नहिं 'प्यारे' मिलै, अब लाज कहाँ, नहिं कैहूँ लजौंगी ।
नेह कै देह सुखेह भई, पर होय सो होय, न नेह तजौंगी ।

१९

तुम चौचँद पारो, चहो सो करो, बदनाम करो, धरो नावरियाँ ।
कुल-कानि कनौड़ी भई, यह डौंड़ी बजाओ सबै ब्रज-गाँवरियाँ ।
एहि भाँतिन ते दिखराय तुम्हैं, भरिहौं या गलीन की भाँवरियाँ ।
सिख मानिबो कैसो सिखावन का, पिय 'प्यारे' पै हौं तो निछावरियाँ ।।

२०

तुम जानती रोके न ये रुकिहैं, कत चाहती नेह-निवारन को ।
अपनी तो भली-बुरी जानै सबै, तुमको कहै कौन सँवारन को ।
दुख पायहैं कै सुख पायहैं वे, कछु 'प्यारे' न काज बिचारन को ।
तजिहैं रसलोभी मलिन्द नहीं, किहु भाँति गुलाब की डारन को ॥

२१

ब्रज को उपहास घनो सहि कै, चुचवाइन को मुख देखनो है ।
कहनो ना कछू मन ही मन सोचि, हितू अहितू को परेखनो है ।
बिचले मन 'प्यारे' जू जामें नहीं, इन बातन सो चित लेखनो है ।
धरि धीर सनेह के मारग में, बिधना जो दिखावै सो देखनो है ॥

२२

कैसो है चित्त जो प्रेममई, पिय-मूरति को नहिं ध्यान करै ।
वा रसना हूँ भुजंगिनी-सी, गुन-गान पिया को न जौ उचरै ।
'प्यारे' बियोग नहीं सलथा, हिय सो मनि-बज्रहु को निदरै ।
फूटैं अरी वे जरी अँखियाँ, जिनतें नहिं नेह को नीर झरै ॥

२३

सिखवो उन्हें सीख जो मानैं सखी, हम तो पिय-प्रेम के आसव छाकी ।
उपहास को चोलना डारि गरे, बदनामी को आँगी बनाई हिया की ।
जग जानि के तुच्छ सु छोड़ि दई, भ्रम मानि के रंक सुमातु-पिता की ।
मनमोहन से अरी नेह करी, अब लाज कहाँ, कुल-कानि कहाँ की ॥

२४

समयो नहिं है अब जानिबे को, हमैं जाननो जो हुतो जानि चुकी ।
इन आँखिन को जो भलो दरसो, तेहि को सरबस्व मैं मानि चुकी ।
किहि को समुझावति को समुझै, करनी जो हुती चित ठानि चुकी ।
मन आवै तिहारे सो जाइ करौ, हम प्रेम की बारुनी छानि चुकी ॥

२५

कब लो सरसाइये आनन को, न चवाव चवाइन को सरिहै।
जब लो दृढ़ प्रेम नहीं हिय में, तब लो गुरु लोगन को डरिहै।
यहि प्रेम के मारग में सजनी, जग-लाज ही बाधन की जरि है।
जब प्यार सो 'प्यारो' मिलैगो हमैं, बदनाम कै कोऊ कहा करिहै॥

२६

घहराइन तीव्र तरंग जहाँ, कुल-कानि करार अराय गिरै।
जग-लाज-जहाज डुबावत ढूँढ़त, चारु चवाइन भौंर फिरै।
उपहास को जोर झकोर जहाँ, पिय 'प्यारे' न धीरज नेकु थिरै।
नहिं जैये किनारहुँ लौं सजनी, परि प्रेम-पयोधि में कौन तिरै॥

२७

बदनामी को बाजो बजै चहुँ ओर पै, ता दिसि नेकु न कान लगावै।
गुरु लोगन की वह रोस-भरी, अँखियाँ लखि कै चित नाहिं डिगावै।
तन पै सहै लाख कलेस सदा, पै न धीरज नेकहुँ 'प्यारे' नसावै।
दुख में सुख मान ले जो निहचै, तब प्रेम के पन्थ पै पाँव बढ़ावै॥

२८

ध्यावैं दिनेस सुरेस महेस, नरेसन की कहै कौन कहानी।
पार ना आज लौ पाए इहा, जिनकी महिमा को गनेस सों ग्यानी।
ठाकुर जौन तिहूँ पुर के, तिनहूँ की जू 'प्यारे' अहैं ठकुरानी।
घूमत प्रेम के फन्द फँसी, चहुँ मत्त ज्यों सोइ ये राधिका रानी॥

२९

यह प्रेम की जोगिन हैं अँखियाँ, सब भाँति सहैं ये चवाव कसाले।
कुल-कानि की आहुति दै बिरहागि में, नेह की बैठी सखी मृगछाले।
तुव नाम ही को नित मंत्र रटैं, अरु ध्यावैं सदा तुव रूप रसाले।
पिय 'प्यारे' तिहारे निहारे बिना, निसि-द्यौस जपैं अँसुवान के माले॥

३०

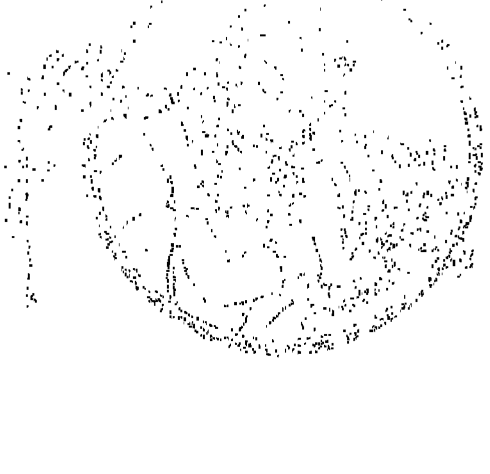
मानति क्यौं नहिं वाकी कहूँ, पर छायो चहूँदिसि प्रेम ह्ह्रा है।
बेद-पुराननहूँ में समान ही, प्रान सो देह में राज रह्रा है।
'प्यारे' तिहूँ पुर सो यो बिचित्र, सु ऐसो कछू ढँग याको मह्रा है।
जा तन याहि के होय गये बिन, नेकु न जानि परै यो कह्रा है॥

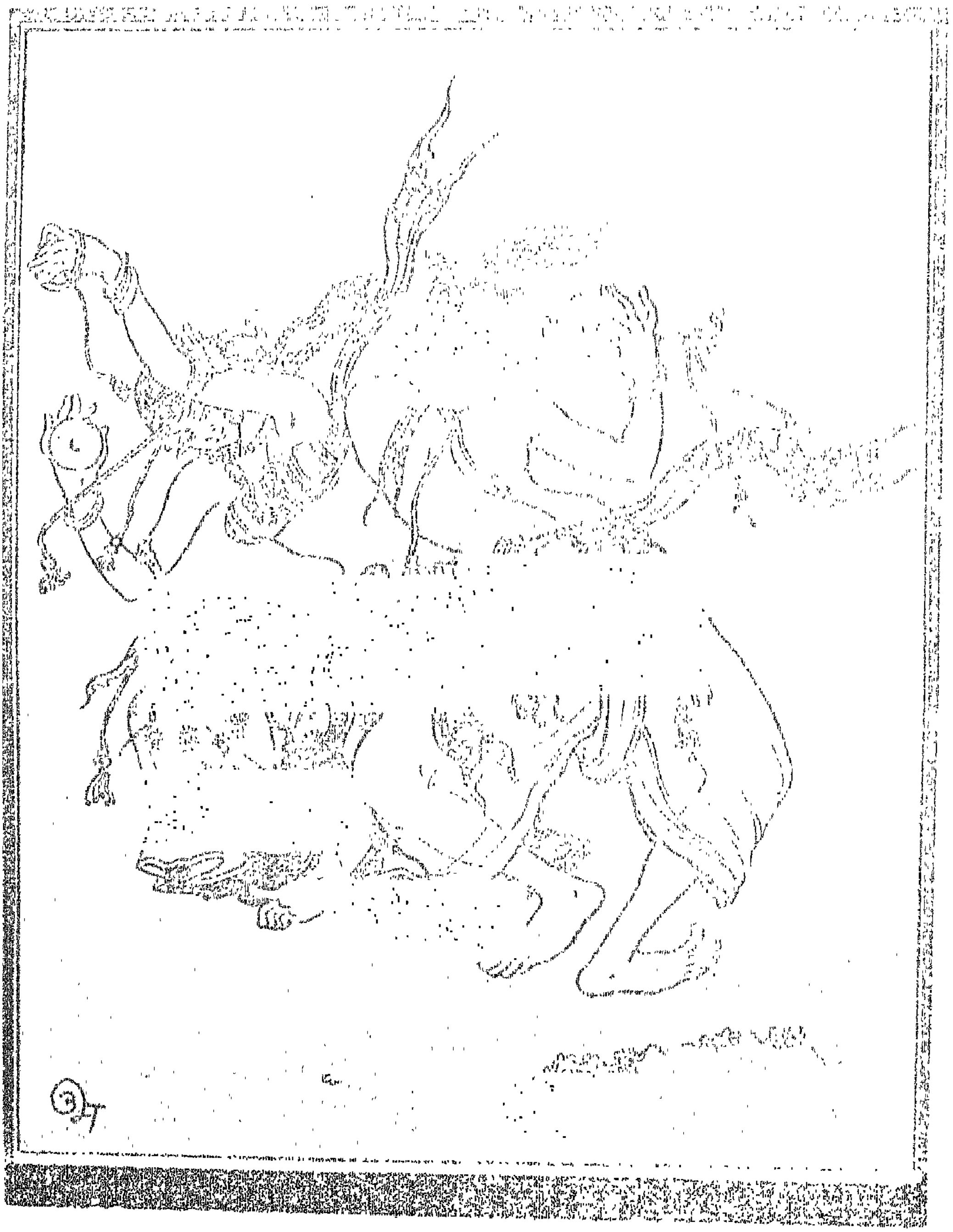
३१

चाहै जितो दुख दो सजनी तुम, चाहै जितो मिलि चौचँद पारो।
जेतो कलङ्क लगायो चहो, बदनाम करो चहै गारी दो मारो।
बात ठनी सो ठनी मन में, नहिं कैसहूँ टेक टरैगो हमारो।
प्रान कढ़ैगो न जौ लगि देह तें, ही तें कढ़ैगो न तौ लगि 'प्यारो'॥

३२

जो याके सुफाँस फँस्यौ सो फँस्यौ, फिर वाके लिए नहिं नेकु बचाय है।
लागै न मंत्र न जंत्र कछू, नहिं बूटी जरी को चलै बेवसाय है।
ताको कहै मुख बैद-गुनी, केहूँ भाँति फुरै नहिं एकौ उपाय है।
प्रान के साथ ही 'प्यारे' छुटै, यह प्रेम न जानै धौं कौन बलाय है॥



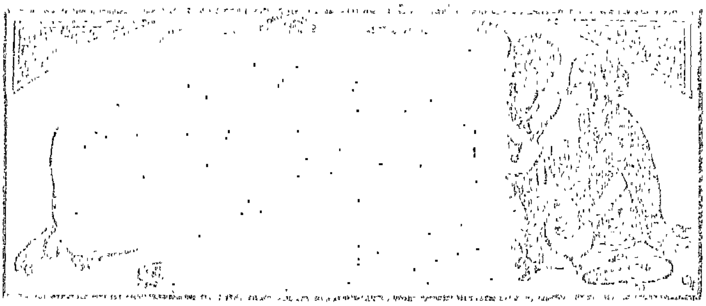


[illegible]

ग्रीवा मोरि नचाय दृग, मंद-मंद मुसकाय
चली चोरि चितचोर-चित, घूँघट-ओट दुराय



राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह 'प्यारे' (भूतपूर्व सूर्यपुराधीश)



कवित्त

१

लोनो केस लटकि सु पाँय की बलाय लै लै, खाय-खाय लाख बल भूमि परस्यौ परै।
सुन्दर सुडौल गोल अमल कपोलन में, इंगुर सो अरुन बिकास दरस्यौ परै।
सोभा सरसी के सरसीरुह रसीले 'प्यारे', नैनन में सरस सनेह सरस्यौ परै।
ओठन पै हास औ मिठास मंजु बैनन पै, इन्दु से बदन पै सोहाग बरस्यौ परै॥

२

घटि बढ़ि चन्द कोटि कौतुक कलानि करि, आनन समान हौंस हिय में धरे रहैं।
कानन में जाय मृग संगति तपस्विन कै, नैन तुल्य होन भूरि भावन भरे रहैं।
भृकुटीन बंक ताकि समता लही ना नेक, झुकि-झुकि नै-नै चाप लाजन गरे रहैं।
प्यारी-पद-पंकज-पराग को न पद पायो, पुंडरीक-पुंज पौरि पावन परे रहैं॥

३

नवल किसोरी नव नेह सराबोर चली, मन्द गति वाली मतवाली हंसराज की।
ज्वालामुखी ज्वालमंत्र मोहनी परी है, इन्द्र-जाल की छरी है, की वधू है देवराज की।
मानिक-जटित भाल मरकत-बेंदी 'प्यारे', करति करेजा रेजा संतन-समाज की।
पुतरी लौं भूलन खरी है, किन्नरी है कैधों, कुन्दन छरी है, की परी है पोखराज की॥

४

कोमल कमलदल-अमल-बिनिन्दि नैन, उन्मद मदन-मद चंचल निरबिराम।
रंजित-सुहास मृदु रक्तिम अधर मंजु, गंजित गयंद गति मन्द सुखमाभिराम।
ललित कपोल आलुलाइत अलक-जाल, उन्नत उरोज-आन्दोलित गल-लग्न दाम।
आनन-बरेन्दु सम्पन्न-स्वर्गीय-कान्ति, पूर्न छबिधाम अभिराम ललना-ललाम॥

५

पद्माकृत कोमल प्रदीप्त कमनीय कान्ति, हास्ययुत आनन बिनिन्दित प्रभा निसेस।
पातिव्रत-व्यंजक प्रकासक प्रगाढ़ प्रेम, सुन्दर सोहाग-बिन्दु-अंकित ललाट-देस।
बिम्बित कपोल युग कर्णाभरण-द्योत, चुम्बित चरन चारु कुन्तल कलित केस।
जुवती-सुलभ लज्जा जौवन-जनित मैन, इन्दीवर नैन मध्य युगपत समावेस॥

सवैया

६

सिय-जज्ञ को सोहै किधौं धनु-संभु, किधौं रति को यह सौन अमंद है।
रबि के रथ अस्व के नाल की छाप, परी नभ-पंथ बिलोकि अनन्द है।
पिय के कर की करवार किधौं, प्रतिबिम्ब सु तौन की सोभा द्विचंद है।
बृषभानुजा की भ्रुव बंक किधौं, पिय 'प्यारे' किधौं नभ सोहत चंद है॥

७

मुख मंजु पै कंज जमाति तेरे, भृकुटी पै कमान निछावर है।
अलकों पै मलिन्दन की अवली, अँखियान पै बान निछावर है।
मुकुता की लरी सुचि दंतन पै, मृदु बोल पै गान निछावर है।
अधरान पै 'प्यारे' तिहारे सुधा, मुसुकान पै प्रान निछावर है॥

८

प्रात समै उठि केलि के मंदिर, कालिँदी-कूल गयो असनान को।
'प्यारे' जू ठाढ़ रहे सुबिलोकत, चारहु ओर छटा-छबि छान को।
आई मेरे मन में उपमा, अवलोकि हिलोरन बिम्ब सु भान को।
प्यारी को आनन देखि दिवाकर, ढूँढ़त ठौर मनों बुड़ि जान को॥

९

मंजु लतान के कुंजन में, ब्रजरानी जबै हरखानी फिरैं।
पंकज पंक दुरै मुकलै, औ मराली लजानी लजानी फिरैं।
भूली भ्रमी बिथकी ठिठकी ठगी, 'प्यारे' मृगी अकुलानी फिरैं।
मोरी चकोरी भुजंगी भ्रमी चहुँ, संग लगी मँड़रानी फिरैं॥

१०

मुख-आभा दबाय दिनेस-प्रभा, दिन हीं दिपै इन्दु की दीपति सी।
मुसकान मरीचन की चमकै, चहुँ चाँदनी दीसै दिसाहत सी।
गति हेरि गयंदिनी भूली रहै, पिय 'प्यारे' मराली भ्रमी मति सी।
बड़भागिनी सोहै सुसील सनी, अनुराग सोहाग की मूरति सी॥

११

चन्द सो आनन कंज सो नैन, सुकेहरि के कटि सी कटि खीनी।
संभु से ऊँचे उरोज दोऊ, अरु कंबु सी ग्रीवा मनोहर कीनी।
या विधि ते नख ते सिख लौं रचि, 'प्यारे' अनूप निकाई में भीनी।
ओठ मिठास कपोलन हास, हिये पति-प्रीति दई तब दीनी॥

१२

रति कै थकी प्यारी सु आलस त्यौं, मृदु अंगनि सों फरक्यो सो परै।
मसकी अँगिया छरा छूट्यो सबै, अरु टूट्यौ हरा लरक्यौ सो परै।
लट 'प्यारे' लुरी सो कपोलन लौं, कुच सों अँचरा सरक्यौ सो परै।
मुख-चन्दु सो स्वेद को बुन्द गिरैं, बसुधा मैं सुधा ढरक्यो सो परै॥

१३

केलि कै सोई मयंक-मुखी, मुख-आभा अनूप छटा-छबि छाजै।
कञ्चुकी छूटि हटे अँचरा, उघरे कुच तामें नखच्छत राजै।
'प्यारे' जू तापर हीर को हार, लखे उपमा कवि की मति लाजै।
ईस के सीस पै सोहत चन्द, सुचन्द पै गंग की धार बिराजै॥

१४

केलि कै सोई मयंक-मुखी, अलसाने सुगात मनोज सनोहर।
सोहत दाग नखच्छत के, स्रम-सीकर ते अँगियाहू भई तर।
'प्यारे' कपोल पै आनि लुरी लट, एक अमोल अडोल छटा धर।
ऐसी लसै सुखमा तिनकी, सु मनों अहिराज मयंक के ऊपर॥

१५

पाग को छोर छवान छुए, दृग-खंजन दोउन बीरी खवाये ।
ओठन में मन-रंजन अंजन, हार बिना गुन हीय सुहाये ।
दंतन दाग सुगोल कपोलन, जावक सो वर भाल रँगाये ।
सीतल होत लखे हियरा, यह लालन आज भले बनि आये ॥

१६

सौसनि ओढ़नि सीस सजाये, सुजावक ते बर भाल रँगाये ।
कंचुकी ठौर सु छाप लगे, हियरा में बिना गुन माल सुहाये ।
चाल वही अठिलान लिये, सिर पाग की पेच लटे लटकाये ।
घाँघरी की अहै एक कमी, बलिहारी सु लाल भले बनि आयें ॥

१७

लाल ही सेंदुर-बिन्दु मनोहर, भ्राजत भाल मेरे मन भावत ।
लाल ही लीक सुजावक पीक की, 'प्यारे' अनूप छटा-छबि छावत ।
लाल ही त्यों मन-रञ्जन नैन, सु देखत नैन महा सुख पावत ।
साँवरे कैसे कहौं तुमको, पिय आज तो लाल बने तुम आवत ॥

१८

चख चारु चकोरन की सुखदा, मुखचंद पै चाँदनी छाई रहै ।
मृदु मंजु मदारन की कलिका, अलकावलि में लिपटाई रहै ।
पिय 'प्यारे' असीसै सदा चित सों, बर भाल पै ये अरुनाई रहै ।
अरबिन्द पै बैठे मलिन्द के पाँति की, नैनन में छबि छाई रहै ॥

१९

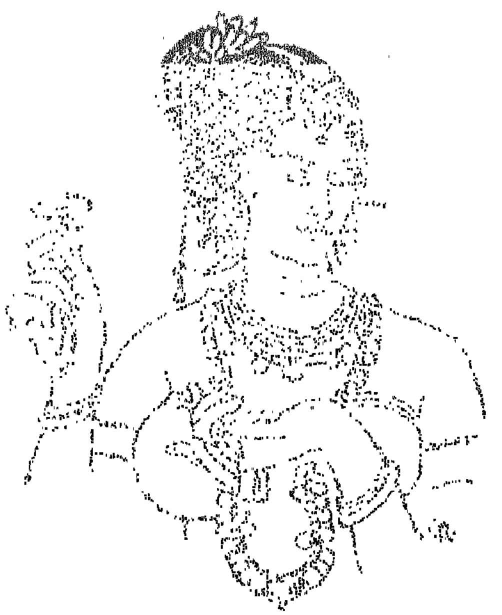
उमदी सी मनोभव के मद से, नख ते सिख लौं लिय रंगरली ।
लटकै लट लोनी कपोलन पै, झुकि झूमै सरोजन चम्पकली ।
मुख मंजु में पान की बीरी दबी, कर-कंज में मंजरी भाति भली ।
इठलाती अली मुसकाती महा, ब्रजराजै बसन्त बधावै चली ॥

२०

बलि सुन्दर कोमल गोल कपोल, बड़ी अँखियान मनोहरनी।
तिरछीली चितौन चितौत चहूँ, हियरा महँ लागत चोट घनी।
लकुटी कर पीत पटी कटि में, मृदु बोलन बैन सनेह सनी।
धनि है धनि है धनि भेंटति जो, उर लाय सदा धनि ऐसो धनी ॥

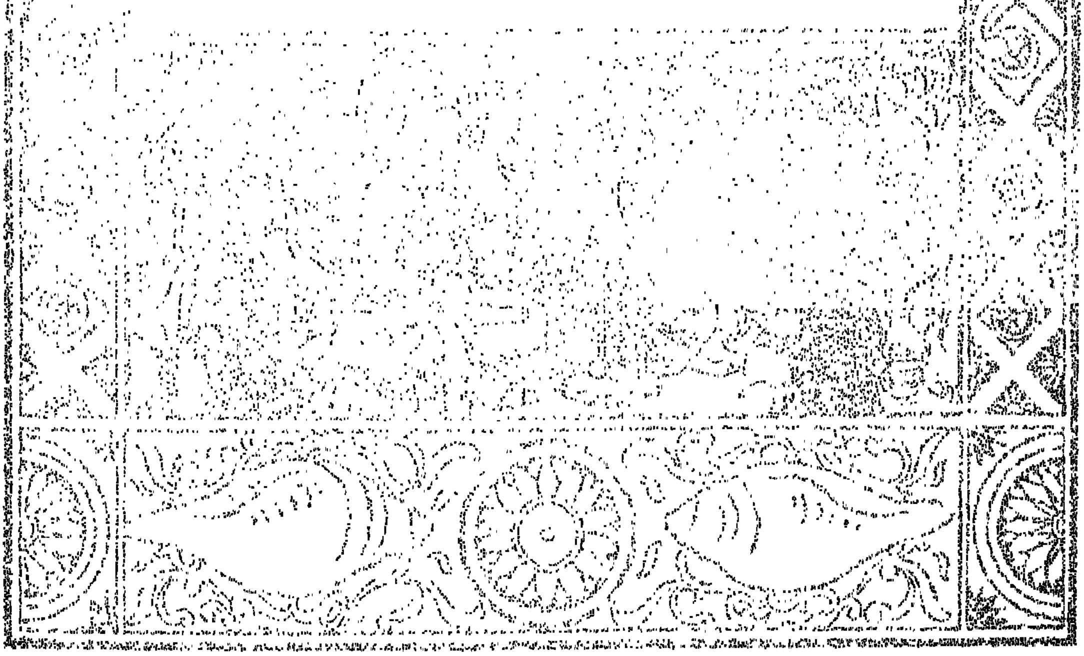
२१

कोमल गोल कपोल अमोल, सुलोचन लोल कटाछ घने।
ऊँचे कसे उकसौंहैं उरोज, छ्वये कच कारे सुगन्ध सने।
झीनी किनारी की सारी में साफ, सु 'प्यारे' जू अंग गुराई छने।
कैसो बिचित्र है चित्र अहा, यह जो निरखै सो बिचित्र बने ॥

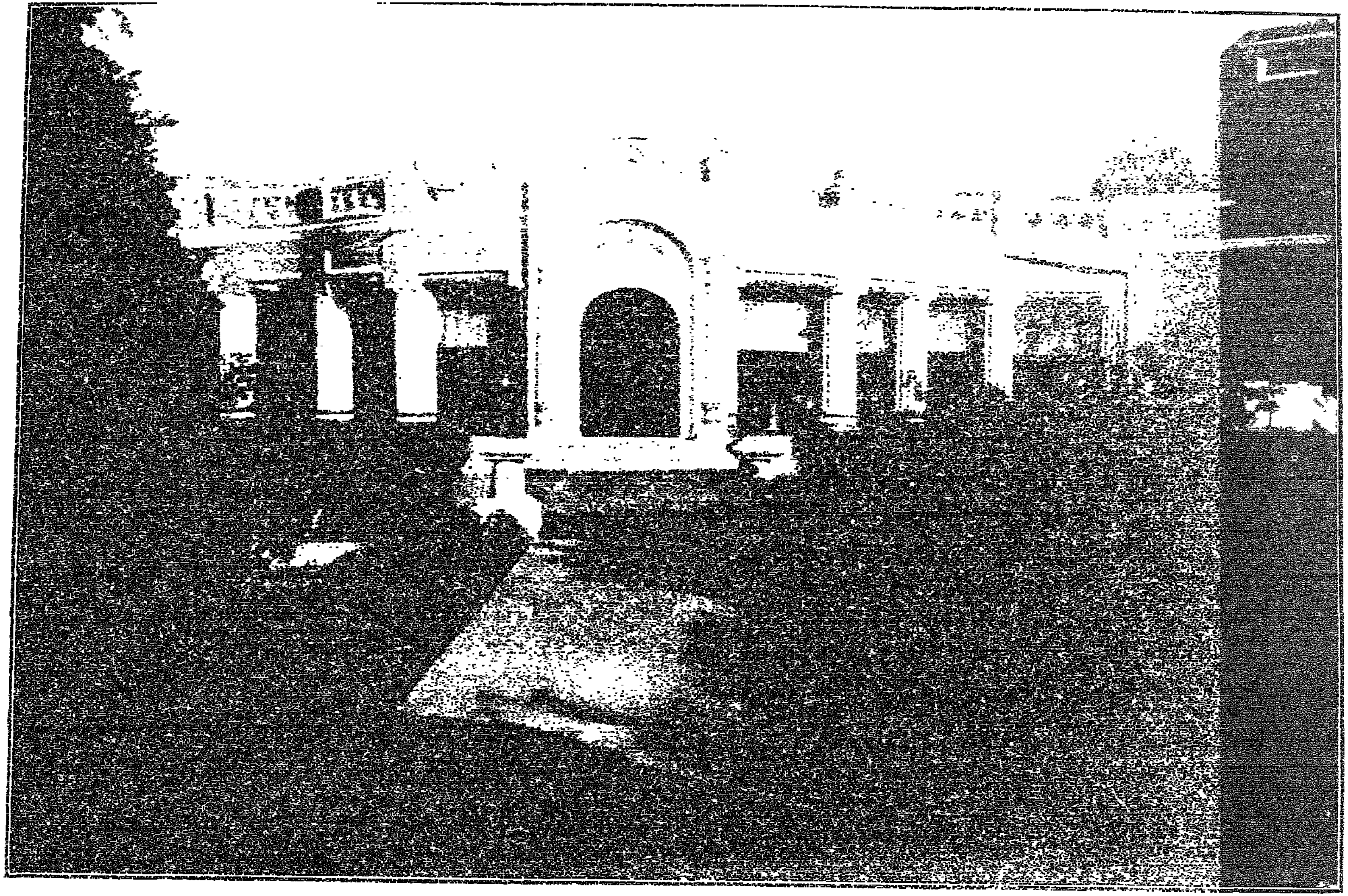




शृङ्गार-पुष्प



दरपन दरप न क्यों करै, सुघर स्याम के हाथ
जाके हिय हरि है बसत, कीट-मुकुट के साथ



[illegible]

कवित्त

१

वैसी सीस मुकुट लकुट कर सोहै वैसी, वैसी मंद गति जो गयंद-मद भानती ।
वैसी खौर भाल उर मोँह बनमाल वैसी, आभा मुख वैसिए चकोर भ्रम आनती ।
पूरी नख-सिख सब भाँति बनी वैसी तू तो, राधे देखि कौन तोहि 'प्यारे' नहीं जानती ।
होती नहिं तेरे दृग मूरति गोविन्द की जौ, हौंहूँ पिय प्यारी तोहि नाहिनै पछानती ॥

२

बढ़ि कै सभी से कहा सुन्दर सुघर स्याम, और कहा कोऊ सखि वैसी छबि धारै ना ।
याही ब्रज-मंडल में केतिक परे हैं एरी, हेरि जिन्हैं वेऊ मन हाथ राखि पारैं ना ।
तोसो है दुराव कहा साँची कहौं तेरी सौंह, लाभ-हानि आपनी ये नेकहूँ बिचारैं ना ।
जानौं नहिं कौन हेतु हाय प्रान-'प्यारे' तजि, अँखियाँ हमारी कोऊ और को निहारैं ना ॥

३

मनि-मई मन्दिर नवेली सजि बैठी साँझ, सखिन समाज साथ जोबन जगी सी है ।
रजनी सिराय जुग जाम लौं गई री हाय, सजनी न आयो 'प्यारो' रहिगै ठगी सी है ।
बोलै ना कछुक वर बदन मलीन ह्वै पै, और की कहौं लो कहौं सारदा भगी सी है ।
मदन-मरोर अंग सुन्दरी उनींदे नैन, सेज पै सु लोटती सचोट पन्नगी सी है ॥

४

भोर होन चाहत है बिनती करति नाथ, मानत न बात घरी द्वैक मैं पधारिहौ ।
जब लौं यहाँ हौ अजू तब लौं धरैहौ धीर, जाय पीछे कैसे इन आँसुन निवारिहौ ।
ह्वैहौ कहा आप ना दुखित 'कबि प्यारे' पीछे, कै सुधि हमारी फेर धीर नाहिं धारिहौ ।
जान जो चहत अबै अबला को बल कहा, एहो प्रानप्यारे पर मोहि ना बिसारिहौ ॥

५

रूप की निकाई पद-पानि मृदुताई तजि, अंग अनुहारी गैल मेरे लाल क्यों गहो।
मेरे हिय बसि निज हिय को निबाहो गुन, रसिक कहाय अनरस में कहा बहो।
'प्यारे' परिपाटी प्रात सुखद समीरन को, कुमुद-कलीन हेत नाहक लिये रहो।
जानत हौ रीति सदा चले अनरीति हाय, चन्दकुल-चन्द ह्वै के सूर-गति क्यों लहो॥

६

कौन हुतो काज तजि साथ जो सखी-गन को, घर ते इतेक दूर आज उठि धाई मैं।
धाई उठि जोपै तौ बिचारे बिन ही मैं हाय, काहे येहि तरनि-तनूजा-तीर आई मैं।
आई जोपै तरनि-तनूजा-तीर 'प्यारे' हौं तो, आनन ते काहे पट टारि ललचाई मैं।
आनन ते टारि पट भले ललचाई, पर मोहन ते हाय काहे अँखियाँ मिलाई मैं॥

७

पाँव परौं तेरे कर जोरौं बलि-बलि जाऊँ, बिनती करति तापै नेसुक नजर दै।
लगन लगी तो है दुराव कहा लोगन ते, कोरे अपबादन पै चित्त ना सुधर दै।
पारन दै चौचँद चबाइन को चारौं ओर, करन कुनाँव 'प्यारे' सिगरे सहर दै।
मन तो भयो है अनुराग-रंग आपै लाल, तबहुँ गुलाल लाल रँगि लाल कर दै॥

८

तजि जग-लाज कुल-कानि की न कानि करी, कुटिल कलंक-टीको कर माथे पर दै।
चेरी भई तेरी ये कसूर जो कियो मैं कछु, चाहै जो सजाय मोहि साँवरे सुघर दै।
गाड़ि दै चिबुक-गाड़ मोहि प्रान-'प्यारे' चाहै, बेधि कै कटाछनि सों छाती छेद कर दै।
कैद जनमावधि को कारा-हिय कर चाहै, जुलुफ-जँजीरन सों जालिम जकर दै॥

९

पौढ़त नवोढ़ जुरि ननद जिठानी आय, करि मनुहारि बहु भाँतिन बनाय बात।
काऊ बिधि आँगन अँगोछन अँगोछि पोंछि, देत दृग अंजन बनै ना अति कंप गात।
कोस सों जनात ढैक डग को निगोड़ो बीच, चिहुँकति चकित चित सोचति चितै सकात।
धरकत छाती उर धीर ना धरात 'प्यारे', धरति सु आगे पग पाछे पै परत जात॥

१०

होती जो न 'प्यारे' अनुरागिनी सु तोपै रैन, ऐसी मनमोहनी तौ मूरति बनाती क्यों।
सुन्दर या नील-रङ्ग-रंजित प्रसंसनीय, सारी निज तन साजि चारु छवि छाती क्यों।
देती क्यों सुभाल बेंदी सुन्दर ससी की सुभ्र, तारन को माँग में कतारै कै जमाती क्यों।
सोभ सरसाती मन मैन उमगाती फिर, मन को लुभाती तुव सौंहें लाल आती क्यों॥

११

सुनि कै सखीन मुख सूचक-बिरह बैन, दुखित न होति बरु और हुलसति है।
देखि-देखि आरसी में सुन्दर मुखारबिन्द, प्रमदा प्रमोद मन मानि बिलसति है।
याद करि पी को पुनि प्रेम-पूरो ब्यवहार, दुगुन उछाहन सो रस में रसति है।
गुन के गरूर गरबीली ना गनति कछू, लालन को गौन सुनि-सुनि कै हँसति है॥

१२

दूर देस जात तो टहल हेत काहे नाहिं, साथ लै चलत मोहि नाथ का न करिहौं।
छाया प्रति संग लगी जाइहौं जहाँई जहाँ, आँचर को आड़ करि आतप निवरिहौं।
नेकहूँ बिकल देखि बिजन करौंगी 'प्यारे', सोवत जगत कैहूँ काज ना बिसरिहौं।
मोहि स्रम लाज कहा दासी इन चरनों की, पायन की धूरि सदा बारन ते झरिहौं॥

१३

कनक-लता-सी निसाकर की मरीचिका-सी, दीप-सी प्रकास रही प्यारी कारी रैन में।
सोने की सलाका-सी सँवारे स्वच्छ भेष आज, ओज गात सुन्दर मनोज मौज सैन में।
उघरै ढँपै है परिहास के डरन एरी, घूँघट झुकाय मुसकाय मंजु बैन में।
जोबन-गरूर सो सरूर में भई है चूर, धँस रही जी में ही में 'प्यारे' इन नैन में॥

सवैया

१४

मंजु गुलाब की पाँखुरी सों, बर गोल कपोल अमोल महा।
सुन्दर त्यों अधरा ये तेरे, नवपल्लव है जिन आगे दहा।
कंज से कोमल अङ्ग तेरे सब, मैं मन ही मन सोच रहा।
जानि परै ना कछू बिधना यह, पाहन सो मन कीन्हों कहा॥

१५

काहु की बात न मानै अरी, हठ सोइ करै जो लगै तुहिं नीको।
हानि औ लाभ बिचारै नहीं, बरिआई करै रस प्रेम को फीको।
लावति कंठ न ठानि महा हठ, 'प्यारे' भला तरसावति पी को।
तेरेई भाल सो जानौं सखी, अँठिलानपने को दियो बिधि टीको॥

१६

अठिलापन पोर ही पोर भरो, हठ ठानि सु ठानि रही उर माहीं।
नहिं काऊ को माने सिखावन तू, नहिं हौं करी कैहूँ सु छाड़ि के नाहीं।
'कबि प्यारे' की बातन मानि लै री, पछताती रहैगी नहीं तो सदाहीं।
छुटि जायगी मान सु आपही ते, यह फागुन को दिन मान को नाहीं॥

१७

कौन पै रोस करो इतनो, भृकुटी धनु कानन लों तनि जूट्यौ।
खंजन नैन प्रवाल भए, अँसुआ गिरै ज्यों मुकताहल छूट्यौ।
जाति खिंची हौ इती तेहिते, जेहि के सँग मोद सदा सुख लूट्यौ।
प्रेम तो साँचो है काँचो धगा, इत गाँठ परी सजनी उत टूट्यौ॥

१८

द्वारहिं ते लखि आवत तोहिं, सु आदर कै गहि बाँह लै जैहैं।
मोद भरे परजंक बिछाइ, बिठाइ तुम्हैं मन में सुख पैहैं।
प्रेम सो पाय पखारि कै भाभी, सु आनँद के अँसुआनि अन्हैहैं।
बाँह गहे खिंचि आपुहिँ तेरे, हिये लगि कै तन ताप बुझैहैं॥

१९

अध-ऊरध जाय थिरै थिरकै, फिरकै फिरकी-सी सुडोलती है।
तरु ते तरु साख ते साखन पै, उड़ि बैठि अमी-रस घोलती है।
पिय 'प्यारे' जू झूम झुकै झिझकै, झमकै मधुरै सुर बोलती है।
नट की सी बटा है उछाह-भरी, अरी कैलियौ बीर कलोलती है॥

२०

वाहि बिलोकि तो जानि परै, दिन द्वै में कछू के कछूक ह्वै जायहैं।
कंज तजैंगे मलिन्द के वृन्द, सुखंजन खोजे कोऊ नहिं पायहैं।
कानन में मृग कंदर केहरी, 'प्यारे' मराल सरोवर छायहैं।
मोर बनैगी अरी घनस्याम, चकोर हिये में महा भ्रम खायहैं॥

२१

गुड़ियान के खेल की बान छुटी, गति गौन गयन्द की लूटि लई।
चढ़ी चाह सिंगार सिंगारिबे की, अँग-अंगनि मैं छवि फैलि गई।
चख चारु में चेटक बोधक भो, चित चोरि लियो सबहीं को दई।
वह चन्दकला-सी लली बढ़ि कै, दिन द्वैक में और की और भई॥

२२

गुड़ियान लै खेलै छिनौ ललना, रस-बातन में छिनौ कानि करै।
छिन धूर-धुरैटी घरौंदा रचै, अँग-अंग अँगोछि छिनौ निखरै।
कछु बाल की बात न जाति कही, छिन ही छिन भाव अभाव भरै।
सिसुतापन वो तरुनापन डोर, बँधी दोउ ओरन ऐंची फिरै॥

२३

नहिं आइहौं खेलन बाग कबौं, सुबिलोकि इन्हैं जिय मेरो डरात है।
यह बौरे महा मधु छाक छके, मद-मत्त चहूँ दिसि घेरत जात है।
पिय 'प्यारे' न जात कहूँ अनतै, इक मेरेइ नेरे सदा दिखरात है।
तजि मालती मंजु गुलाब-कली, क्यों मलिन्द मेरे मुख पै मँड़रात है॥

२४

बितवै दिन केहूँ कलेस भरो, बन बागन में भरमात फिरै।
छिन ही छिन होत अचैन महा, मन ही मन में पछतात फिरै।
पिय 'प्यारे' न धीरज धारि सकै, तरु-मूलन पै थहरात फिरै।
जब कंज-कली में बिकास नहीं, अलि क्यों ना चहूँ मँड़रात फिरै॥

२५

मृदु बैसई बात अहै सजनी, तरुनापन लेस न दीस परै ।
नहिं सौरभ चारु चहूँ पसरी, औ न फूटी कली ना पराग झरै ।
पिय 'प्यारे' कहा हौं कहौं तुमसों, इन बातन कौन अचंभो करै ।
दिन द्वैक की मंजुल हेम-लता, कहु कैसे तमाल को अंक भरै ॥

२६

दिन द्वैक ते ऐसी भई कछु है, जिहि को कछु हेत न जान परै ।
उड़ि काटिबो चाहत कीर कहा, अधराधर को नहिं नेक डरै ।
'कबि प्यारे' जू घेर्यो करै मुख को, मतवारे मलिन्द न टारै टरै ।
लखि गोरे तरेरे उरोजन को, केहि कारन लोग प्रनाम करैं ॥

२७

आज कहा है सुनै हमहूँ, घरहाई कहा जुरि मंगल गावैं ।
ऐपन सो रँगि कोरो घड़ो, भरि नीर सिंदूर को टीको लगावैं ।
बारहिं बार बिलोकि हमैं, ननदी हँसै भाभी क्यों भौंह नचावैं ।
कैसे हैं कौन हैं मेरे सखी, यह पाहुने जे हमरे घर आवैं ॥

२८

बैठे अकेले दोऊ रँग रावटी, आनँद सों उर मोद बढ़ावैं ।
भेंटैं भुजा भरि झूमैं झुकैं, उझकैं झझकैं मुख चूमैं चुमावैं ।
सो छबि जात न 'प्यारे' कही, हुलसैं बिलसैं औ हँसैं सुख पावैं ।
वे उन पै जो निछावर होत तो, वे उन पै हँसि के बलि जावैं ॥

२९

वे उनके दृग अंजन देत हैं, वे उनको पट पीत ओढ़ावैं ।
डारत वे उनके मनि-माल त्यों, वे उनको बनमाल पिन्हावैं ।
गूँथत वे उनके सिर बेनी औ, वे उनके अँगराग लगावैं ।
चूमत वे उनके मुख मंजु औ, वे उनको हँसि बीरी खवावैं ॥

३०

मुख देखि सु सासु को पाय धरै, रुख पेखि जिठानी को भावती भाखै ।
ननदी को निहारि हँसै हुलसै, पिय की अनुहारि सुधारस चाखै ।
पिय 'प्यारे' सु गौरि गरूर हरै, पति-प्रीति में नीति भरी अभिलाखै ।
मनमोहन के मन को बस कै, मन सौतिहूँ को तिय हाथ में राखै ॥

३१

रुख प्रीतम को सदा लीन्हे रहै, दृग कोर के आयसु पाँव धरै ।
मुख नेक मलीन लखे उनके, तिय नैनन आँसु की धार ढरै ।
लखि आवत सौतिहुँ के घर ते, 'कवि प्यारे' हि भाल में स्वेद भरै ।
मृदु कंज की पाँखो लिये कर में, हरुयें कछु पी को बयार करै ॥

३२

साँझ ही सोचि के धाय मिलाय, सुदीबो हरो हिय को ठहराय के ।
आधी निसा हरे खोलि केवार, खरे भये आय सुभेष बनाय के ।
देखत वाको हियो हुलस्यौ, गृह पाय भले अपने मन भाय के ।
बाँहन बाँधि के धाय सु जान कै, सोय रही छतिया लपटाय के ॥

३३

नैनन द्वार सों जोरि सदा, सहमी सी निसा भरि जागति है ।
औरहुँ की सुनि पाँय की आहट, बाल बेहाल ह्वै भागति है ।
जान पिया पहँ जौन कहै, हँसि-बोलिबो तौन सो त्यागति है ।
सासहुँ के ढिग देखि पियै, भजि सौतिन के गर लागति है ॥

३४

बैठी बिलोकि तियै ढिग सासु के, और ही लालन के रुचि जागी ।
नैन बचाय सुभौन मैं आय कै, बैठे रहे रति के अनुरागी ।
एते में आइ गई दुलही, लखि प्रीतमैं पीछिले पायन भागी ।
यौं कहि को है हहा घर में, ननदी को तिया तब टेरन लागी ॥

३५

मुख मोरि रही नहिं सौंहैं करे दृग, अंक में लालन के भरते।
परजंक पै धीरे से लेट रही, झनकै जिन किंकिनि के डर ते।
अति कौतुकी 'प्यारे' सु तोरी तनी, अँगिया की, सुकेलि-कला करते।
गड़ी जाति लजीली सुलाजन ते, पै न छोड़ती पैंजनियाँ कर तें॥

३६

सूधो सनेह के मारग ते, बिचलै नयो पंथ घुमाय रह्यो है।
प्रीत की रीत में बाधक है, अपनी ही सुनीति सिखाय रह्यो है।
'प्यारे' न दोस तिहारो कछू, करनी बुरी एही कराय रह्यो है।
बैठ्यौ है भाल पै भौंर जो लाल, सोई तुमको भरमाय रह्यो है॥

३७

सीस पै सुन्दर सौसनी ओढ़नी, ओठनि की दुति त्यों मुरझानी।
अंजन भाल पै पीक कपोलन, नंद-लला के सनेह निसानी।
देखत ही मन और भयो, उर सोच बढ्यौ ना कढ़ी मुख बानी।
काहु सखी सों मँगाइ के घाँघरी, लालन को दई राधिका रानी॥

३८

मिलि धूरि में धूसर होत लखो, ये खुली सिरपेच सम्हारो जरा।
तुम आये गये नहिं 'प्यारे' कहूँ, स्रम बैठि कै नेक निवारो जरा।
अहै छाये कपोलन पै बिखरे, इन बारन को तो सुधारो जरा।
यह आरसी 'प्यारे' लई है नई, मुख आपनो नेक निहारो जरा॥

३९

आये कहूँ पै बिताय निसा, मृगलोचनी के ढिग स्याम सकारे।
देखत ही उठि आदर कै, बर आसन दै दोउ पाँय पखारे।
हाथ उठाई सु देखिबे को, तब दीख पर्‌यौ दृग द्वै अरुनारे।
ह्वै रही काठ की पूतरी सी, कर खैंचे बन्यो न बन्यो गर डारे॥

४०

पायो है लाखन कै कै उपाय, सुआज तुम्हैं केहुँ भाँति सकारे।
जान न दैहौं कबौं तुमको, भले जानति हौं छलछन्द तिहारे।
नैनन में हिय में तुम्हरे हित, ठौर दियो अलगाइ दुलारे।
चाहै जहाँ बसिये सुख सो, घर रावरे हैं दोउ प्रीतम 'प्यारे'॥

४१

चहै आवो चहै जिन आवो लला, जेहि भाँति सो हो उर मोद भरो।
सुख मेरो पिया तुम्हरे सुख सों, सुख सों जहाँ चाहो तहाँ बिहरो।
अबला की बिचारी गरीबिनी की, बिनती पै इती चित माँहि धरो।
रस जानो रसीले हो 'प्यारे' पिया, रस राखि कै जो मन आवै करो॥

४२

नहिं चाहति मेरे हिया में हिया, मनमोहन 'प्यारे' लगाये रहौ।
नहिं चाहति हौं तू हमारे लिये, मन में जो बसै बिसराये रहौ।
नहिं चाहति नेह करी जिहिं ते, तिहिं को छिनहूँ बिलगाये रहौ।
सुख है तो हमैं तुम्हरे सुख में, सुख पावो जहीं तहीं छाये रहौ॥

४३

प्रेम के फंदन में फँसि कै, मन लाज के जाल में काहिं अरूझै।
हारैं सिखावन दै सखियाँ, गुरु लोग बुझावैं कछू नहिं बूझै।
सासु बृथा ही रिसानि रहै, पिय 'प्यारे' बृथै ननदी लरि जूझै।
जब आँखिन में कोउ आनि अरै, तब कानि कहा है कछू नहिं सूझै॥

४४

जौन गली ह्वै कढ़ूँ सजनी, जुरि 'प्यारे' कहै ये कलंकिनी आई।
कोऊ हमैं कुलटा कहती, कोउ प्रेम के फन्द फँसी फरमाई।
कासों कहौं दुख आपनो हाय, सु को समुझै हहा पीर पराई।
लोग बुरे हैं बड़े बृज-गाँव के, कूर कसाई गँवार चवाई॥

४५

ऐसी हैं क्यों चुपचाप चवाइनैं, आय न क्यों इत चौचँद पारैं।
सासु जेठानी दुरी हैं कहाँ, समयो है यही अब क्यों न निवारैं।
'प्यारे' कहाँ हैं परोसिनी पापिनी, काहे न आय के आज निहारैं।
बैठि अहौं हरि के हिय ते लगि, केलि के भौन को खोलि किवारैं॥

४६

तुम जो कहती हौ अजान हमैं, हमहूँ सही तेरी ही मानती हैं।
मन–मोहन मोहन 'प्यारे' नहीं, यह बात वृथा हठ आनती हैं।
हठ छोड़ि के पूछौ तो जानि परै, ब्रज की बनिता का बखानती हैं।
तुम जानती हौ कै न जानती हौ, हम जानती हैं कै न जानती हैं॥

४७

कुलटा हौं कलंकिनी हौं सबहीं, चहुँ च्वाव भलेई मचायो करौ।
बदनाम करौ जो चहौ सो करौ, सुख पावो चहो दुख पायो करौ।
कहे देति हौं 'प्यारे' यही सबतें, अब मोहि वृथा ना सतायो करौ।
अब मानिहौं मानिहौं मानिहौं ना, तुम लाख हमें समझायो करौ॥

४८

हक-नाहक बातैं बनावती क्यों, हमहूँ अब ऐसी सुभोरी नहीं।
हम नीके पिछानती हैं सबको, वसती बृज की कहा खोरी नहीं।
इतनी बनितान में साँची कहो, सु निछावर 'प्यारे' पै को री नहीं।
घनस्याम की कौन मयूरी नहीं, बृजचन्द की कौन चकोरी नहीं॥

४९

जैसे लियो अपनाय दया करि, तैसे रहौ अपनाय दुलारे।
भूलि हूँ कै जनि जाव कहूँ, अब मो छिन ते छिन होहु न न्यारे।
हेरो करो हँसि ऐसही नेह सों, डारे रहो गर में भुज डारे।
नैनन में पुतरी है रहौ, हिय में बसो प्रान है प्रान-'पियारे'।

५०

करी 'प्यारे' सो प्रीति हमी ने कहा, हमहीं अरी एक कहा बिगरी ।
हम जानती हैं का नहीं तुमको, तुम कैसी सती छल में हौ भरी ।
हँसती हौ कहा हमको लौ सुनो, कहे देति हौं बात सफा सिगरी ।
तुमने हूँ करी, इनने हूँ करी, उनने हूँ करी, हमने हूँ करी ।।

५१

मुख देखन पाती न आँगन को, ननदी वो जेठानी सबै सँसती हैं ।
जुरि आय चवाव करैं चहुँघा, पिय 'प्यारे' जू पास सबै बसती हैं ।
अफसोस नहीं मन माँहि कछू, परछाई परोसिन जो गँसती हैं ।
दुख एक यही न सुहात हहा, हरि हेरि हमैं सखियाँ हँसती हैं ।।

५२

दुख सासु के सासन को है नहीं, दुख नाहिं कछू ननदी बतियान को ।
दुख नाहिं परोसिनैं जो हँसतीं, दुख नाहिं चवाइन की छतियान को ।
दुख नाहिं जुपै बदनामी भई, दुख नाहिं बिछोह हू की रतियान को ।
मुख देखत भागती हाय मेरो, दुख एक यही अपनी सखियान को ।।

५३

डर होतो जुपै गुरु लोगन को, जग-लाज सो नैन दुरावती क्यों ।
चित लाती चवाव को जो मैं कछू, पिय 'प्यारे' सो नेह लगावती क्यों ।
कह दीनी करोरन बार तुमैं, इक-नाहक मोहि खिझावती क्यों ।
हुती भावती सीख तुम्हारी जुपै, कुल-कानि को तो मैं गँवावती क्यों ।।

५४

मन मैलो कै ठानि कै मान सखी, रुख रूखो मरू कै बनावनो है ।
मुख मोरि सुअंचल ऐंचबे पै, भृकुटी बर बंक चढ़ावनो है ।
किहु भाँति कै रोकि हँसी सजनी, पिय 'प्यारे' को पाय परावनो है ।
हँसि हेरि के फेरि लगाय गरे, नँदलाल को फेरी छकावनो है ।।

५५

सूधी पतिव्रत बाट कटी, सु कटी कुलकानि की सीम कन्हाई।
नातो कटो गुरु मातु पिता को, कटी सखियान की 'प्यारे' मिताई।
लाज समाज सबै कटि गे, सु कटी हिय जो हुती संक चवाई।
साँवरे रावरे नैनन को, करवाल की चाल धौं कौन सिखाई॥

५६

इत आय मैं कौन सी फंद फँसी, चितचोर सों नैन मेरो जुटिगो।
जग-लाज बिदा भई आँखिन ते, पितु मातु सो नातो अरी टुटिगो।
तन 'प्यारे' मनोज के पाले पर्यौ, कुल-कानि को सीसो सही फुटिगो।
कोउ देखियो देखियो देखियो री, मन-मानिक मेरो यहीं लुटिगो॥

५७

बृज मैं बजै नेह की डौंड़ी भले, जग-लाज पै गाज भले ही परै।
बदनामी सु और हू होय चहूँ, ननदी हिय खोलि के रोस भरै।
जग जीवन को फल 'प्यारे' मिल्यौ, सु चवाव से मेरी बलाय डरै।
अब कान्ह-मै प्रान भयो सजनी, कुल-कानि की कौन धौं कानि करै॥

५८

पलकों के सुपींजरे मूँदि कै अंजन, रेख-जँजीरन बाँधि दई॥
बरुनी बर बान दिखाय इन्हें, भृकुटी धनु बंक चढ़ाय लई।
नहिं मानो मैं याहू पै होय अधीर, सु घूँघट के पट ओट कई।
अँखियान की ओज कहाँ लौं कहूँ, करी ताऊ पै लाल पै चोट दई॥

५९

समुझावन को कहै कौन तुम्हें, केहि के कहे बीच में कूदि परौ।
मनिहै कोउ बात तुम्हारी सु क्यों, हक-नाहक काहे को 'प्यारे' लरौ।
कुलटा हौं कलंकिनी हौं सब हौं, तुमकों कहा आपनी गैल धरौ।
मन भाई सो कीनी अरी हमने, मन भावै तिहारे तुहूँ सो करौ॥

६०

बावरी तू तो भई निहचै, भरमी मति तेरी तो हाय घनेरी।
यामें तो हानि है दोउन की, तू करै का इहा सुनु सीख या मेरी।
लाभ कहा है बिबाद किये, बदनामी लिये इकनाहक एरी।
लूटैं मजा मिलि कै हम दोऊ, न तू कहु मेरी न मैं कहौं तेरी॥

६१

देह दहै दइ चाल पै तेरी, सु चाल तेरी अब हौं हूँ गहौंगी।
चेरी न हौं कछु तेरी अरी, जो सही सो सही अब नाहिं सहौंगी।
चाहे भलो तो रहै चुप नाहिं तो, हौं हूँ न कैस हूँ मौन रहौंगी।
जैसे को तैसे मिलै तब ठीक है, मेरी कहैगी तो तेरी कहौंगी॥

६२

छूटिहैं ये हँस-बोल सबै, अरु आँखिन आँसु-प्रवाह ढरैगो।
चौचँद ह्वैहै चहूँ दिसि ते, ब्रज-गाँव सबै उपहास करैगो।
'प्यारे' कहै, ना फिरो यों कहूँ, फिर कैस हूँ धीर हियो ना धरैगो।
बावरो सो मन रैहै सदा, नँदलाल कहूँ जब देख परैगो॥

६३

कोटि उपाय करो पै तऊ, हिय हाय अधीर या धीर धरै ना।
पीरो परै मुख, सूखो करै तन, चित्त में नेकहुँ चैन परै ना।
'प्यारे' रहै मन बावरो सो, कुल-कानिहुँ की कछु कानि करै ना।
प्रान के लाले परैं सजनी, सु दई करै काहू सों आँख लरै ना॥

६४

सुन्दर गोल कपोलन पै, अनमोल सुकुंडल-डोलनि प्यारी।
ही हलकै द्युति मोहन की, झलकैं सुथरी अलकैं घुँघुरारी।
वा मुसुकान बिलोकत ही, कुलकानि सबै तजि होति बिहारी।
लागि जो जाहिं तो कीजै कहा, सखि ये अँखियाँ रिझवारि हमारी॥

६५

है अति भीति चवाइन की, हँसिहैं अरी पापिन दै करतारी।
लाज गही ब्रजराज बिलोकत, आज लौं मैं कुल-कानि सम्हारी।
आवत जात सदा यहि गैल है, छैल छबीले सुकुंज-बिहारी।
लागि जो जाहिं तो कीजै कहा, सखि ये अँखियाँ रिझवारि हमारी॥

६६

देति सदा सिख तू सजनी, अरु मैं हूँ बिचारति हौं हितकारी।
मान किये गुनमान कहैं, सनमान बढ़ै फिरि है हित भारी।
मोहनि मूरति मोहन की, अवलोकत लोक-रिझावनिहारी।
लागि जो जाहिँ तो कीजै कहा, सखि ये अँखियाँ रिझवारि हमारी॥

६७

लीन रहैं नित रूप-पयोनिधि, मीन कहैं कवि बुद्धि बिचारी।
दीन अधीन रहैं बिनु देखत, तोष लहैं नहिं नेकु सदा री।
जानि परी पिय पेखन की, कुल-कानि बिसार दई इन सारी।
लागि जो जाहिँ तो कीजै कहा, सखि ये अँखियाँ रिझवारि हमारी॥

६८

प्रेम-अरन्य में आय सखी, गुरु लोगन सो है डेरानो कहा।
आपु ही आइ गये मनभावन, 'प्यारे' हिये सकुचानो कहा।
औसर ऐसो न ऐहैं कबौं, अरी बावरी आज सकानो कहा।
साहस कै किन अङ्क लगै, जब प्रीति करी तौ लजानो कहा॥

६९

काह परी तुम्हें एरी भटू, सँग-लागि सी मेरे जो यों नित डोलो।
जाव चवाव करौ चहुँ ओरहिँ, आय करेजहिं नाहक छोलो।
'प्यारे' से प्रीति करी तो कहा, नहिं चेरी किसी की, कहा तुम खोलो।
नीकी लगी सो करी हमने, सखि जाव हटो हमसे जनि बोलो॥

७०

बैठि रहै घर ही में सबै दिन, खान वो पान कछू नहिं भावे।
जान परै नहिं रोग कछू, पर 'प्यारे' महा दुबरी भई जावे।
हाय मसूसि करै मन में, मन की सु सखीन हू सो न बतावे।
ज्यों-ज्यों बिबाह को होत उछाह, सु त्यों-त्यों उदासी तिया-मुख छावे॥

७१

सासु सों बालन रीस बढ़ी, गई रूसि रिसाय परोसिनि के घर।
पीछे तो नन्द हू धाय चली, नहिं मानी मनाई मैं पायन पै पर।
'प्यारे' मनावन को सुनि बालम, हाय गए बिलमे ना छिनो भर।
कोऊ नहीं घर माँह अहै, मग जोऊँ अकेली परी पलिका पर॥

७२

हम तो लरिकाई की साथिन हैं, हम सों काहे नेह छिपावत ही रहौ।
हम ही का चवाव करैंगी चहूँ, हक-नाहक काहे को हाय डरी रहौ।
नहि यामें हमारी है हानि कछू, सदा 'प्यारे' की प्रीति में प्यारी पगी रहौ।
जिनके गर को अहै हार गरे, तिनके गर को सदा हार बनी रहौ॥

७३

मग रोके खरो है अरो ना टरै, कोउ कैसे भला ब्रज से निकरै।
हटकी झटकी झझकी री तऊ, यह ढीठ दई नहिं नेकु डरै।
मुख चूमै सुगाल गुलाल मलै, तुम देखती हौ अब अंक भरै।
बरजो री सखी बरजोरी सखी, बरजोरी करै बर जोरी करै॥

७४

लेन गई जल कालिँदी कूल, अँधारे ही आज जबै कछु भोर सो।
रस्ते में छाई सुघोर घटा, चपला हू लगी चमके चहुँ ओर सो।
'प्यारे' उतायल हौं रपटी, झपटी मग पाँव गिरी अति जोर सो।
सोई पिरात अबौं सजनी, भरमै जिन या सिसकीन की सोर सो॥

७५

झंझा सु पौन झकोर बहै, मुख मूँदि दुरे दबके घरबारे।
भादव की उमड़ी जमुना, अरराय परै दोउ ओर करारे।
ऐसो समै करि होड़ सखीन सों, लागिहै कैसे कलंक हमारे।
'प्यारे' जू बातन रीझि मनो तिय, चाव ते चौथ को चंद निहारे॥

७६

रूप-भरी रस-रङ्ग-भरी, झलकै अँग-अङ्ग अनङ्ग की छाहीं।
कोक-कला में प्रबीन महा, कबहूँ कहुँ काहु सो कीन्ही न नाहीं।
एते पै हाय न जानौ दई, जग कौन बिचार कियो मन माहीं।
कीनी न कीनी सु कीनी सबै, पर हाय कोऊ हमैं पूँछत नाहीं॥

७७

बालहिं ते बहकै लगीं बाल, सबै ब्रजमंडली रूप अमोला।
बैस भए पद लागीं गरै, अब नेह बटोरि कै बैठीं सुडोला।
होत बिदा फिदा लोग भये, पर 'प्यारे' तबौं नहिं घूँघुट खोला।
काढ़ि करेजा निकारि कै जान, चलीं ससुरारि उजारि कै टोला॥

७८

कनखैयन देखी तो देखी हहा, अनखायन बातें तो नाधे रही।
मुसुकाई दया करिके जो कबौं, भ्रुव बंक को ताहू मैं बाँधे रही।
पग हू मग में नहिं सूधो धरै, उनमत्त सी चाल अगाधे रही।
निसि द्यौस समीपी सहेलि हूँ के, सदा सूधी चितौन की साधे रही॥

७९

सखियान को आस तिहारोई है, पर-कारज में नित देह धरी रहौ।
तुम जानती रीत मिलाइबे को, पर प्रीत में प्यारी सदैव पगी रहौ।
स्रम एतौ सह्यो सु हमारे लिए, छिन हू पलिका पर लेटि अली रहौ।
जिनके गर को गरे हार सखी, तिनके गर को सदा हार बनी रहौ॥

८०

कासो कहौं सजनी अपनो दुख, जो जो दसा यह मेरो करैं।
बैठि रहौं घर ही मैं सदा हम, कुंजन हूँ की न फेरो करैं।
लागै हमैं डर देखि इन्हैं, 'कबि प्यारे' सदा हमैं हेरो करैं।
कुंज के धोखे मेरे मुख को, मधुमाते मलिन्द ये घेरो करैं॥

८१

ऐसी कहूँ नहिं देखी सुनी, वे छूटैं नहिं कोटि सखी हटकाये।
छोड़ैं नहीं छतिया ते छिनो, मुख मंजु पै मेरे सदा टक लाये।
'प्यारे' की प्रीति की रीति नई, निसि-बासर काज सबै बिसराये।
बैठे रहैं भुज मैं भुज मेलि, हिया मैं हिया मुख मैं मुख नाये॥

८२

वारौं सुधाधर की मैं सुधा, अधरा अधरा पै तेरे धरिबे पर।
वारौं दुहूँ जग की सुखमा, भृकुटी हँसि बंक कछू करिबे पर।
वारौं 'पियारे' सदेह या प्रान, मिलै छतियान भुजा भरिबे पर।
वारौं कहा नहिं जानि परै, पिय प्यारी तेरी यह सी करिबे पर॥

८३

पिय होतो कहा हिय हेरो तनी, क्यों बुलायो यहाँ लिखि कै पतियाँ।
यह गैल के पास को ठौर खुलो, केहिं भाँति बनै रस की घतियाँ।
कै बिचार लख्यो हुतो वाकी कहा, खुलि जातीं सबै अबहीं बतियाँ।
पति राखती जो न दया करिकै, पिय 'प्यारे' पलासन की पतियाँ॥

८४

बहके से फिरो बृज-बीथिन में, जग लाज समाज निवारे भये।
निडरे ह्वै करो जो चहो बदि कै, बिन ही मन माहिं बिचारे भये।
कछु जानि परै ना हमैं अब तो, केहिं भाँति के तौर तुम्हारे भये।
भरते हो हमैं भुज माहिं यहाँ, तुम हाहा कहा मतवारे भये॥

८५

न्हान है आज न जानो कहा, अबहीं छिन में यह घाट भरैगो।
धीर धरो मन में नहिं तो, या उतावली सों सबही बिगरैगो।
आइहौं हौंहीं जहाँ कहौ 'प्यारे' पै, ह्याँ नहिं काज कछू निकरैगो।
ऐसी करो जनि हाहा हटो हरि, छोड़ो हमैं कोउ आइ परैगो॥

८६

देखियै आवत जात सबै, है खुलो मग क्यों नहिं 'प्यारे' पतीजिए।
प्रेम भलो जो छिपाई रहै, इन चौचँद-हाइन पै चित दीजिए।
हौं भजि कै हहा जैहौं कहाँ, बदनामी की मोटनि क्यों सिर लीजिए।
रावरी दासी तो हूँ ही लला, पर माँझ गली में सु ऐसी न कीजिए॥

८७

बीसी घरीक निसा है अभी, चहूँ लोग जगे हैं हहा सुनि लीजिए।
आवत जात सबै इत से उत, 'प्यारे' कछू इह पै चित दीजिए।
लोग यहाँ के चवाई महा, मग में कबौं भूलि हू ऐसी न कीजिए।
साँवरे रावरे पाय परूँ, चलि और कहूँ अधरा-रस पीजिए॥

८८

जानत ही बृज की बनितान को, कैसी हमैं इमि देखि जरैंगी।
प्रेम हिये को हिये में भलो, प्रगटे यह और हू पीछे परैंगी।
'प्यारे' सबै खिझिहैं हम पै, सँग की सखि हू उर रोस भरैंगी।
बेनी गुहो ना हमारी हहा, परछाईं पत्ती उपहास करैंगी॥

८९

मान तू मेरे सिखावन को, फिर पीछे न तो पछितानि परैगी।
ऐसी घरी सुख की सजनी, कबहूँ दई-जोग ते आनि परैगी।
'प्यारे' हैं तेरे लिए वाँ खरे, तू चली चल नाहिं पछानि परैगी।
चैत की चाँदनी में चमकीली, तू चन्दमुखी है न जानि परैगी॥

९०

सासु जिठानी रिसानी सबै, ननदी हू हहा हिय में अनखाई।
बोली कुबोल परोसिनि पापिनी, आवति हेरि हमें मुसुकाई।
'प्यारे' जू आपनी भूल पै हौं, हक-नाहक सीस कलंक लगाई।
जान कै मोहन के निरमोहहिं, हाय कहाँ ते कहाँ कहाँ आई॥

९१

आय सकारे जरावत मोहिं, सु जावो हटो जहँ रैन बिताई।
मो सी नहीं हतभागिनी कोउ, न जानौं कबौं सुख काह कन्हाई।
दोष नहीं पिय 'प्यारे' तेरो, वही होगी ललाट में जो लिखि आई।
काह कहौं बिधि की करनी, जग में वृथा दीन्ह्यो हमें जनमाई॥

९२

औरन की छतिया लगि कै तुम, औरन सो रस-रीति निबाहत।
औरन के रस के बस है, निसि द्यौस उन्हीं की गली अवगाहत।
'प्यारे' कहा के कहा है गये, कपटीन को कौन भला है सराहत।
वाह जू चाहिये ऐसी कहो, हम चाहैं तुम्हैं तुम औरन चाहत॥

९३

लाज समाज सु त्यागि सबै, पर-प्रेम की 'प्यारे' नदी अवगाहत।
यौं कपटी ह्वै गये क्यों लला, यह बानि तिहारी कहो को सराहत।
सौतिन के सो गुलाम बने, कछु मेरी दिसा नहिं भूलि निबाहत।
वाह जू प्रीति की रीति यही, हम चाहैं तुम्हैं तुम औरन चाहत॥

९४

जिन सो हमैं आस रही हित की, तिन नेकु कह्यो नहिं मेरो कर्‌यो।
पहिले तो भरोसो दियो सबही, पर अंत में हाय दगा दै टर्‌यो।
पितु मातु की बात तो मानी नहीं, दुख आइ सो मेरे कपारे पर्‌यो।
सखि काह कहौं अपनी करनी, फल वाही को चाखनो मोहिं पर्‌यो॥

९५

मनमोहन को मन मोहिबो वा, यह झूठे सनेह को नेह बिसेखो ।
वह संग लगो गलियान में डोलबो, देखत ये दुरि भाजिबो पेखो ।
पिय 'प्यारे' जू नेह जतायो तबै, अब ऐसी रुखाई की रीत परेखो ।
जिन आँखिन ते वह हाय लखी, तिन आँखिन से सजनी यहो देखो ॥

९६

जिनके करि प्रेम पै एतो भरोस, तजी कुल-रीत सबै जग भाखैं ।
जग लाज समाज निवारि सबै, ये करी जो चहीं बरजी इन्हें लाखैं ।
पिय 'प्यारे' बुरी है सबै जग से, अब जान परै ना कहा अभिलाखैं ।
कोउ और के सँग में देखि उन्हैं, दई फूटि न जातीं कहा यह आँखैं ॥

९७

छिन होती जु मैं पलकों के परे, अँखियाँ तुमरी तो सुनीर-भई ।
बिन देखे न धारते धीर हिये, अकुलाने महा फिरते तुमई ।
दुरि भाजत हो अब देखत ही, यह कैसी अनीति की रीति नई ।
नहिँ जान परै दिन द्वैक ही में, तुम और कै मैं ही सु और भई ॥

९८

पहिले बहु भाँति जताय सनेह, हँसाय रमाय के आस दई ।
अब हाय कहा के कहा हो गये, 'कवि प्यारे' गही किन चाल नई ।
दुरि भाजत हौ मुख देखिबे में, कपटीन की बानि कहाँ धौं लई ।
धिक प्रीत प्रतीत तिहारी लला, दिन द्वैक में और की और भई ॥

९९

नाहक ही परो पाय लला, कर जोरि वृथै बिनती इती भानो ।
जानति रावरी हौं छल-छंदनि, झूठहिं मेरी गली नित आनो ।
देति कहे सफा 'प्यारे' सुनों, भली मानो चहै कै चहै बुरी मानो ।
नेह की रीति तो जानो सबै, पै निबाह की रीति कछू नहीं जानो ॥

१००

देख री देख री प्रेम-प्रभा वही, चेटक चोट विचित्र भई।
बैठी बनाय घरौंदे में राखत, लै गुड़ियान को बाल नई।
एते में 'प्यारे' चले मथुरा, कही काऊ सखी सु उदास भई।
डोली न बोली रही ठिठकी, मनों आप ही बाल खिलौना भई॥

१०१

सुनि कै तुम हौ जू वहाँ सुख सों, दुख आपनो मौन सु तो बिसराइहैं।
लिखि कै तुम्हें पाती सनेह-सनी, कर हू नहिं एतो लला अकुलाइहैं।
पुनि याद कै प्रीत पुरानी तेरी, चित हू ये कछूक तो धीरज लाइहैं।
पर 'प्यारे' तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ ये नहीं कल पाइहैं॥

१०२

नहिं जावो लला तुम हौं ये कहौं, वो कहौं ना बिदेस के पंथ परौ।
न कहौं है बसंत को मौसिम या, बिहरौ यहीं बाहेर ना बहरौ।
बस दासी को स्वामी पै कैसो कहा, बिनती पै इती चित माँह धरौ।
रस जानो रसीले हौ 'प्यारे' पिया, रस राखि कै जो मन आवै करौ॥

१०३

ग्रीषम सो दुखदाई अहै ऋतु, आग लगी है अकास मही ते।
धारत पाँव बनै नहिं आँगन, लागत पौन बढ़ै दुख ही ते।
'प्यारे' जू देह पै दुःख सही, पै निबाही तऊ सु सनेह की रीते।
आनँद क्यों नहिं होवै अनंत, सु आए तो कंत बसंत के बीते॥

१०४

मंडप ही में बेहाल भये मन, रोके न नेकु रुक्यौ नँद-लाल सों।
पानि ते पानि गह्यौ न गयो, त्यों पढ़्यौ न गयो सुचि मंत्र गुपाल सों।
आनन पै दुति फैलो नई, पिय 'प्यारे' भयो गुरु लोगन ख्याल सों।
कम्प भयो तन स्वेद छयो, सु सिँदूर भयो कर घोरो गुलाल सों॥

६

१०५

दरसै नहिं कंज में कोमलता, ससि में वह आभा दिखाति नहीं ।
न हरै हिय बोल सु कोकिल को, गज की गति वैसी जनाति नहीं ।
नव पल्लव में रस वैसो कहाँ, वह लोच लता में लखाति नहीं ।
जब से छबि प्यारी तिहारी लखी, तब से कछु और सुहात नहीं ॥

१०६

करी जो जो कही तुमने सब ही, कबौ दोस करी नहिं आपने जानी ।
सुख आपनो हौं तजि दीनों सबै, सदा आनँद में तेरे आनँद मानी ।
'कवि प्यारे' जू का अपराध कियो, जेहि पै करि रोस इतो हठ ठानी ।
तरस्यो करै प्रान हमारो सदा, तुम आवतीं काहे न राधिका रानी ॥

१०७

मुखचन्द को ध्यान धर्यौ ना हियो, नहिं टीको कलंक को सीस लगायो ।
नहिं कोक के आसन बैठि कबौं, रमनीन सुजान को माल बनायो ।
जग-लाज को 'प्यारे' न होम कियो, त्रिबली जो त्रिबेनी में नाहिं अन्हायो ।
कुच-सम्भु को पूज्यो जथारथ ना, सो अकारथ मानुस को तन पायो ॥

१०८

बार भए पकि के सन सो, कटि होत कमान सी होत खरे ।
आँख के सौंहें को ऊँट ना सूझत, बात सुनात ना कान करे ।
पेट में आँत, ना दाँत अहै मुँह में, डर नेकु तो रैनि डरे ।
'दाल की मंडी' अजौं नहिं छूटत, ऐसहूँ हौंस पै गाज परे ॥

१०९

चाल तुम्हारी अनोखी सबै, मुसकात में एती भली अनखाति हौ ।
भौंहन बाँकी अमेठि-अमेठि, सदा रस में रिस ही सरसाति हौ ।
'प्यारे' जू बात न जात कही, बलि सूधी चितौन में टेढ़ी लखाति हौ ।
बोलिन में कहा घोलौ अमी, मुख फेरन में जो पै मारति जाति हौ ॥

११०

द्वार पै आय छिनो तिय ऊँची, अटा पै खरी मग जोवति ह्वैहै।
औधि के द्यौस कितेक रहे, गिनते ही सबै दिन खोवति ह्वैहै।
'प्यारे' अधीर ह्वै नेह के आँसुन, पीरो परो मुख धोवति ह्वैहै।
हाय निसा में नवेली अकेली, परी परजंक पै सोवति ह्वैहै॥

१११

जा दिन ते निरख्यौ मनमोहन, ता दिन ते सब ही बिसरायो।
भूले सुहास-बिलास सबै, उपहासहु को डर 'प्यारे' गँवायो।
रैन दिना हियरा में लगाये, भने इहि बैन मनों बौरायो।
काम-चितेरो सु मोहनी-मंत्र सों, सोधि बिचित्र या चित्र बनायो॥

११२

ठाढ़े ह्वै ह्याँ अब कीजै कहा, इन तुच्छन पै क्यों भला चित दीजै।
बाहर जोति है द्वैक घरी की, अँध्यारि ही फेरि है साँच पतीजै।
'प्यारे' निबाहहु नेह को मारग, काँचन छोड़ि कै कंचन लीजै।
दीप-सिखा सी नई अबला पै, सुदीप-सिखानि निछावर कीजै॥

११३

होवै सुडौल मनोहर आनन, नैन दोऊ रहैं कानन लागे।
लंक लचीली सु बंक बिलोकनि, बैन सुधा से मिठास में पागे।
छोटी सी बाल न मोटी न पतरी, हास-बिलासन जो अनुरागे।
'प्यारे' को चाहिये ऐसी वधू, जेहि देखत ही उर में रस जागे॥

११४

रूप दियो जू बिधाता तुम्हैं, तो अनीति के बीजन बोय ना छीजिये।
चाहिये सील दया हू कछू, पिय 'प्यारे' पै नेक मतौ सुनि लीजिये।
होय बिहाल गिरैंगे सबै, यह बात प्रमान कै मेरी पतीजिये।
कीजिये पाप न भूलो हहा, इन नैनन में कजरा नहिं दीजिये॥

११५

वाँ तो जसोमति मातु बेहाल, सुनैनन नीर-प्रवाह बहे हैं।
कीरत हूँ अकुलानी महा, बिरहानल दाहन अंग दहे हैं।
हेरत हौं हूँ हैरान भई, फिरी 'प्यारे' उतै जितै लोग कहे हैं।
देखो न री ये कलंकी दोऊ, भरि अंक निसंक हाँ सोय रहे हैं॥

११६

तोहिं को लखि पायो कहूँ जब ते, सजनी वह सुंदर साँवर री।
तब ते सुधि भूली सबै तन की, परि हाय गयो दुति झाँवर री।
भयो बौरो सो देखि परै हमको, भरै तेरे गलीन की भाँवर री।
मग में तुव पाँय के छापन को, लखि चूमि कै होय निछावर री॥

११७

काहे इती सतराति हो साँवरी, क्यों गहि कै झगकारत बाँहीं।
क्यों ना निसंक ह्वै अंक भरो, चलि कै वा छबीले सु 'प्यारे' के पाँहीं।
एक तुम्हीं तो लजीली नहीं अहो, केती अहैं बनिता बृज माँहीं।
नैनन हीं सो है लाज-सँकोच, सु मूँदि लो आँख कहूँ कछु नाहीं॥

११८

आंचल को सिर बाँधति पाग सी, लै मुरली अधरान पै फेरति।
सारी को फेट कसी कटि ऊपर, प्रेम-मई अँखियान ते हेरति।
अंग त्रिभंग कै होति खरी, छिन धावति यों जनु गैयन घेरति।
कान्ह के ध्यान में कान्ह-मई भई, राधिका, राधिका राधिका टेरति॥

११९

चुरिहारिन के धरि भेष लला, बृषभान के भौन गये अनुरागे।
कर में कर लेत ही राधिका के, चित दोउन के रस और ही पागे।
पिय 'प्यारे' न पेन्हे-पेन्हाये बन्यो, कर खैंचे बन्यौ न बन्यौ कर त्यागे।
धरि द्वैक लों दोऊ छरे से रहे, टक बाँधे दुहूँन निहारन लागे॥

१२०

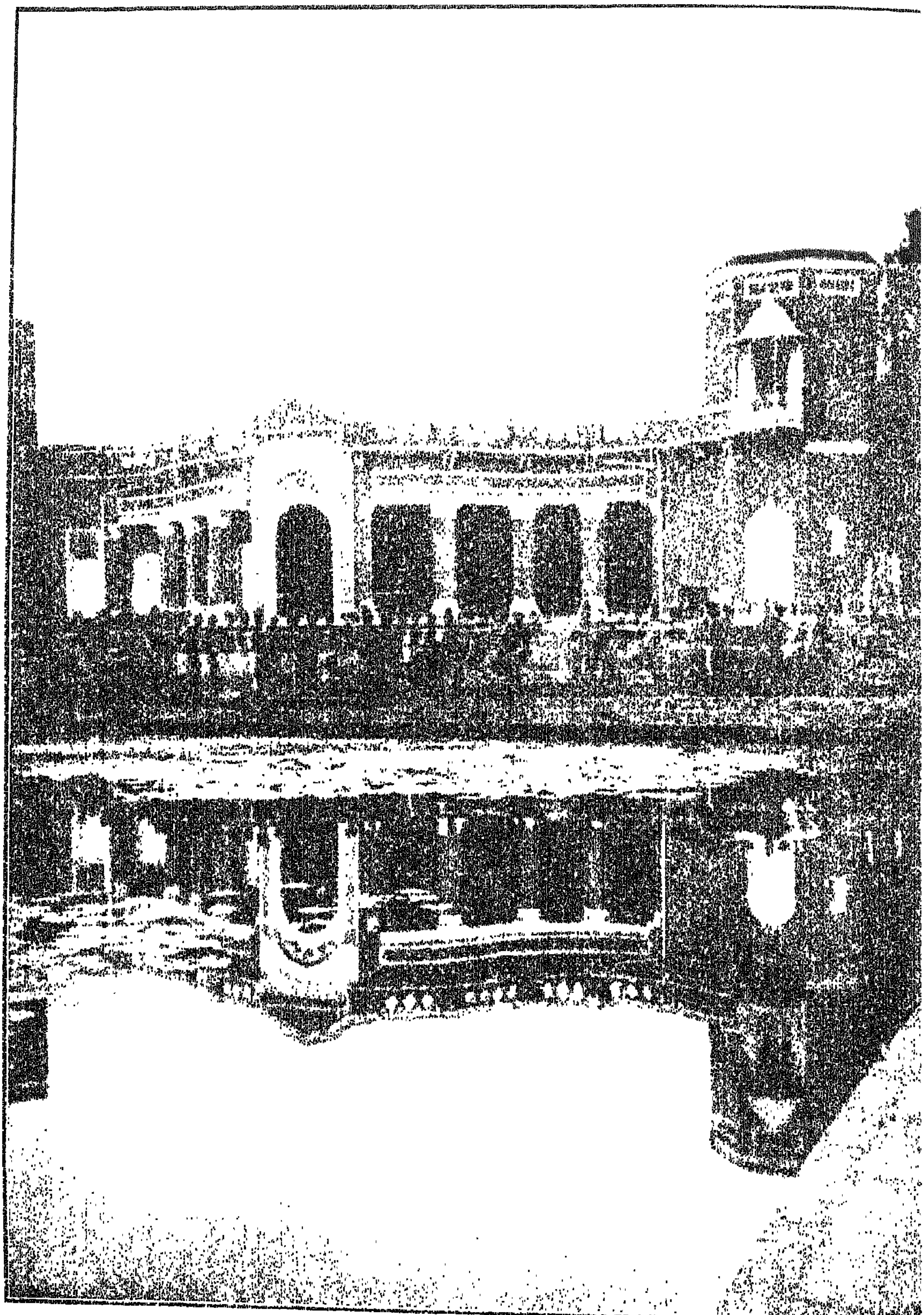
ऊधम कीबो करो दिन-रैन, सबै ब्रज-मंडली सोर मचावत।
रोकत गैल कहूँ अबलान की, माखन दूध कहूँ लै नसावत।
माँगत दान कहूँ तुम 'प्यारे', सु जाय कहूँ तुम चीर चुरावत।
ऊखल हूँ सन बाँधे गये, पर हाय अजौं तुम्हैं लाज न आवत॥





উৎকণ্ঠা-[illegible]

सुनि काऊ सखियान सों, पिय आगम सुखदैन
तिय हुलसन बिहँसन लगी, द्वार टकटकी नैन



[illegible]

सवैया

१

नैनन ते निरखौं उनको, मुख ते तजि 'प्यारे' सु और न भाखौं।
वे मधुरे अधराधर छोड़ि, न भूलि सुधारस हूँ कबौं चाखौं।
पूरै नहीं मन को अभिलाख, बढ़ै वरु औरो जितो अभिलाखौं।
चाहति ही ते निकारि के प्रान, सुप्रान के ठौर पै कान्ह को राखौं॥

२

कासौं कहौं दुख आपनो हाय, सु को समुझै किहि पीर सुनाऊँ।
लोग चवाई सबै नँदगाँव के, क्यों कहि झूठे ही नाम धराऊँ।
तू लरिकाई की मेरी सखी, नहिं तो ते कछू सजनी मैं दुराऊँ।
कोइ उपाव तो ऐसो बताव, कि जाते पिया-मुख देखन पाऊँ॥

३

आवै यही मन मैं सजनी, तजि लोक की लाज पिया ढिग जाऊँ।
पीर-भरी करुना-परिपूरन, प्रेम-कहानी सुनाय रिझाऊँ।
लाइ गरे मुख चूमि भले, हिय ते बिरहागि की ताप नसाऊँ।
हाथ मैं हाथ दै हरी निकुंज तैं, 'प्यारे' के संग मैं भींजत आऊँ॥

४

धीरज त्यागि अधीर से ह्वै रहे, क्यों यह लालची रूप रसाल के।
बेबस से कहा जाय उतै चलि, हाय विरोधी भये कुलचाल के।
राधे यों रूँधे गले क्यों कहो, पिय 'प्यारे' सो बैन भरे दहचाल के।
पंकज से यह नैन तिहारे, मलिन्द भये किमि स्याम तमाल के॥

७

५

हेरत सी उभकोहैं चितौन, चितौती मनों कछु भूल्यो भयो है।
'प्यारे' धुरेटी लटैं लपटी, मुख मंजुल सूखो भयो पियरो है।
साँवरो साँवरो टेरत टेरत, हारी सी बानी भरो सो गरो है।
भाँवरी दै रही कुंजन की, यह बावरी सी सखी साँवरी को है॥

६

तुम काहे सुनी असुनी सी करौ, सुनो कौन धुनी कढ़ै बैनन में।
यह बातें हैं प्रेम की प्रान-मई, जे दुरी ही रहैं उर ऐनन में।
अहैं गूढ़ रहस्य-मई पै यहाँ, प्रगटी सी परैं तऊ सैनन में।
इन्हें चाहो तो देख लो नैनन हूँ, जो निहारो पिया इन नैनन में॥

७

देखि बियोग-बिथा से बढ़ी, सखियाँ मुख पै जरदाई तिया की।
धीरज देती हुती कोउ पते में, आय अवाई सुनाई पिया की।
'प्यारे' उमंग-तरंग बढ़ी, सु अँटो न अँटाये हिये में हिया की।
दीठ बचाय सहेलिन की, छलि छोरी छबीली तनी अँगिया की॥

८

भूली भ्रमी सी रहै बिथकी, छिनहू जो न देखति प्रान-अधार।
चौंकी छकी सी तकै केहि को, कुच-कोर खुलैं अँचरा लै सुधार।
'प्यारे' न प्रेम दुराए दुरे, जो पै स्याम के प्रीत की है न सम्हार।
तो कहा नीलम सों झलकै, हिय राधे तिहारे सुहीर को हार॥

९

पिय की पढ़ि प्रेम-पगी पतिया, पिय साँझ लौं आइहैं प्रान-अधार।
फरकै लगी नाम सुने ते भुजा, उर में नहिं आनँद होत सम्हार।
बर माँग में सेंदुर दै पहिले, अँग-अंगन में पुनि कीन्हो सिंगार।
लच खा गई लंक सु किंकिनि ते, बल खा गई बार सुगंध के भार॥

१०

आनन गोल अमोल मनोहर, 'प्यारे' प्रभा लखि को न उछाहै।
चोखे चुटीले बड़े-बड़े नैनन, चैन हरैं तिरछौली निगाहैं।
डोलनि मंद सु बोलनि माधुरी, मैन-मई मन मोद उमाहै।
जेतो निहारिये साँवरे को, सखि तेतेई देखिबे को चित चाहै॥

११

चाह चहै हँसि बोलन को, पर भाखै बनै ना बनै बिन भाखै।
'प्यारे' जू सिन्धु-तरंग की भाँति, रहैं मन की मन में अभिलाखैं।
साहस कै कै तकै पिय को, पै न सौंहैं सकै छिनहूँ करि आँखैं।
काम कहै मिलु कुंज में कान्ह, सु लाज लियै गहि गेह में राखै॥



विरह-वेदना

यह सुभाग मेरो कहाँ, लेहुँ पिया उर लाय
सौति लगै हिय रावरे, लेहु ताहि लपटाय

कवित्त

१

ऐसो दिन कौन राति कौन-सी सिरानी जामें, नैनन ते नीर-धार निरवधि बह्यो नहीं।
कौन-सी घरी वा जामें रञ्चक कलेस छूट्यो, खेह सम सूखो गात दाहन दह्यो नहीं।
ऐसो पल कौन जामें पलहू पलक लागी, बेकल ह्वै 'प्यारे' हाय मुख ते कह्यो नहीं।
अरे निरमोही करि तो सन सनेह हाय, ऐसो दुख कौन जौन तन पै सह्यो नहीं॥

२

रोज ही बुझावति सुझावति सु ऊँच नीच, रोज ही डरावति पै नेकहू न ये डरैं।
रोज ही बतावति न नेह करि देह सुख, मिलत सनेही बिरहागि में सदा जरैं।
आपुनी समझ भरि साँची कहौं तेरी सौंह, एकहू उपाय तो उठाय हम ना धरैं।
जाने पै न कौन हेतु परी प्रान-'प्यारे' बिन, मानै नहीं प्रान कैहूँ हाय हम का करैं॥

३

प्रानधन प्रीतम 'पियारे' के बिदेस जात, भाव सबही को बिपरीत दरसत है।
याही भौन कालिह जौन सुखद सुहायो हुतो, देखु सो भयावनो दुखद दरसत है।
कोकिल को बोल जौन हिय रस पूरि देतो, आज फीको निरस निराल सरसत है।
आँखिन में ह्वै जो चन्द ढारत सुधा को बुन्द, सोई आज हाय बिष-बूँद बरसत है॥

४

सुन्दर सुजान मनमोहन कुँअर कान्ह, निठुर सँदेसो यह कौन वा पै भेजिहै।
ऐसो दया-हीन कौन कठिन-कठोर-हिय, जानि-बूझि जौन वाहि दुख में अमेजिहै।
ह्वैहै कहा हाल ब्रजबाल को हमारे 'प्यारे', सुनतहिं बिहाल गिरि भूमि सुख तेजिहै।
हाय हाय हाय है बिरह-बस रेजो-रेजो, कोमल करेजो दुख कैसे कै अँगेजिहै॥

५

जैसे दुख मो पै परै सजनी सनेह—बस, तैसिये सनेह—बस याऊ पै पर्‌यो करै।
पीरी-परी हौं तौ एहू पीत ही बरन धारै, मेरो और याको काज एक सो सर्‌यो करै।
जैसे झरै मेरी अँखियान ते सदा ही नीर, देख कछु याऊ ते सु तैसिये झर्‌यो करै।
'प्यारे' के बियोग में सँघाती यही साँचो एक, मेरे संग रैन भर दीपक जर्‌यो करै॥

६

जौन हेत धीरज बिहीन मन होय रह्यौ, सौन हेतु छूटे बिन कैसे धीर धरिहै।
तेरे रूप पानिप के प्यासे यह नैन 'प्यारे', ताहि बिन पाये इन्हैं कैसे चैन परिहै।
पाती सो न काज कछु, याहि लै करौंगी कहा, यहि ते हमारो हाय कौन काज सरिहै।
कागज के नाव ते बियोग-महासागर को, एरे निरमोही कोऊ कौन भाँति तरिहै।

७

सूझै नहिं आरपार दीसै ना किनार ताको, तामैं परि हाय कोऊ कैसे कै उबरिहै।
टूटि रही आस पग-पग पै निरास बाढ़ै, उबचुब होत मन कैसे धीर धरिहै।
आवत न आप बाँह गहि के उबारि लेत, पतिया पठाय कै सो कौन हित करिहै।
कागज के नाव ते बियोग-महासागर को, एरे निरमोही कोऊ कौन भाँति तरिहै॥

८

चेरी अहौं तेरी काहू भाँति ना हजुर मोहिं, करिहौं अवसि जौन हुकुम लगाय दै।
बिनती अहै पै एक सुनि कै सु 'प्यारे' ताहि, अबला अजान जानि नीके कै बुझाय दै।
कैसे गहौं जोग केहिं भाँति कै सनेह तजौं, एकहूँ उपाय तौ सहाय है बताय दै।
मन ही न मानै हाय, मन ही ते होत सब, मन में बसत तू ही मन को मनाय दै॥

९

जाके पद-पदुम-पराग में सुप्रेम करि, नन्दनन्द मोहन बिदित तिहुँ लोकराय।
जाके गुन गावत गनेस बुधि-आगर भे, जगत-उजागर भे देव—कुल समुदाय।
जाहि हेत आसन समाधि 'प्यारे' जप तप, प्रानायाम प्रत्याहार आदिक सुनायो गाय।
जाहि जोग साधत महेस भए जोगिराय, ताहि तुम ऊधव सिखावत हो जोग आय॥

१०

बिन मृगछाला बैठि प्रेम के दृढ़ासन पै, आँसु-जप-माल गिनि गुन-गन गानो है।
बिरह-दवारि हिय दहिबो दवारि बिनु, सीतल उसास मिस अंगन कँपानो है।
रहिबो मगन निसि-द्योस धरि 'प्यारे' ध्यान, बिघन चवाव भीति चित्त ना डिगानो है।
संग रहि सुनो ऊधो घर ही बनैबो बन, जोगिन ते कठिन बियोगिनि को बानो है॥

सवैया

११

फिर बैठि कदम्ब की छैयाँ कबौं, गलबैयाँ दिये रस-बैन सुनाइये।
कालिंदी-कूल कबौं पुनि आइ कै, बाँसुरी 'प्यारे' बजाय बुलाइये।
मोर-पखौवन सीस धरे, इन गौअन को तौ दया कै चराइये।
प्यासे मरैं तुव दरस बिना, इन नैनन रूप-सुधा-रस प्याइये॥

१२

जिनही से सबै सुख मेरो अहै, वह हाहा मेरे सुखसींव कहाँ।
करैं नेह जो मो सों अतीव सदा, वह नेही हमारे अतीव कहाँ।
बिन जीव सी देह है जाके बिना, यहि देह के हैं सोई जीव कहाँ।
वह प्रान ते 'प्यारे' दुलारे मेरे, कहु एरे पपीहरा 'पीउ कहाँ'॥

१३

आयगे कंठ लौं प्रान अरे, सुधि बेगि लो नाथ कृपा कै हमारी।
कोटि उपाय कै हारि गईं, 'कवि प्यारे' जू रोग भयो अधिकारी।
पीर सुजान ह्वै हाय ना बूझत, जाउँ लला मैं तेरी बलिहारी।
प्रान पयान करैंगो जबै, तब आय कहा करिहौ बनवारी॥

१४

कैसे कै बैठि रहैं घर मैं, अरु कैसे कै धीरज हीय धरावैं।
ऐसी परोसिनैं पापिनी हैं, बिन बात ही हाय चवाव मचावैं।
सासु जिठानी सबै इक-सी, यह औरहू पानी मैं आग लगावैं।
कैसे न रोय के प्रान तजैं, मुख हूँ भरि नैन जो देखि न पावैं॥

१५

जाके लिए कुलकानि तजी इन, सो सब ही विधि जानती हैं।
सो तो दगा दै जुदा है गये, पै कछू नहिँ ए डर आनती हैं।
'प्यारे' कहा इनको कहिये, नहिँ हानि औ लाभ पिछानती हैं।
हाय बिलोके बिना उनके, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं॥

१६

कासों कहौं अपनी मैं दसा, मन-ही-मन में हौं सदाहिं अरूझत।
'प्यारे' तिहारे निहारे बिना, अँखियाँनहुँ सों कछु नाहिन सूझत।
आस निरास की भौंरनि में परि, चित्त हमारो सदा पिय जूझत।
अंतरजामी दयाल कहाइ कै, पीर हमारी कहा नहिं बूझत॥

१७

घेरे सदा रहते हमको, अब भूलि हमारे गली हूँ न आवत।
बोलते होय बिनीत सदा, अब बाँसुरी-तान हूँ नाहिँ सुनावत।
पायन पै परते, भरते पिय 'प्यारे' सु अंकन छाँह छुआवत।
लाल इन्हीं अँखियाँ बसि कै, इन आँखिन में नहिं आँख मिलावत॥

१८

'प्यारे' बिना तो सखी धिक जीवनो, कौन के काजन प्रान बचाइहौं।
ये अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानें, इन्हें कहु कैसे पियै दिखराइहौं।
का सँग बोलिहौं डोलिहौं खेलिहौं, स्रौनन बैन-सुधा किमि प्याइहौं।
काहि लगाइहौं अंक भटू, भुज काको गरे को हुमेल बनाइहौं॥

१९

हाय बियोग न काहू के होय, दई ना मिलाय इन्हें बिछुरैबो।
होत वृथा सब जंत्र औ मंत्र, फुरै नहिं चन्दन-चूर लगैबो।
औषध या की तो दोय यही, किहु भाँति सों कै पिय 'प्यारे' को पैबो।
कै कछु लाय कै खाय सखी, चुपचाप ही सेज परी रहि जैबो॥

२०

दुख औ सुख एक से जानि परैं, जब तें पिय 'प्यारे' बिदेस छये ।
इन क्रूर चवाइन में परि के, नहिं जानि परे गति कौन लये ।
मुकलैं बिकसैं नहिं एको घरी, निसि-बासर केते सु बीति गये ।
ससि और कै सूरज और भये, दृग-कंज कै और सु मेरे भये ॥

२१

पिय 'प्यारे' बिदेस गए जबते, घरहाई सदा कलपावती हैं ।
मुख मेरो मलीन अरी लखि कै, चहुँ हाय चवाव मचावती हैं ।
इनमें परि धीर धरै ना हियो, हम लाखन धीर धरावती हैं ।
नहिं जानत और हमारी दसा, सुख पावती कै दुख पावती हैं ॥

२२

उनके गुन रूप सुनाय इन्हैं, बहु भाँतिन ते बहरावती हैं ।
उनके कर-कंज की पाती लिखी, दिखराय सु धीर धरावती हैं ।
दिन द्वैक में ऐहैं पिया कहिके, नित औधि की औध बतावती हैं ।
तबहूँ नहिं 'प्यारे' बिना सजनी, अँखियाँ यह धीरज लावती हैं ॥

२३

दुख 'प्यारे' बियोग सो ना कहि कै, बिरहागि में देह या ठाढ़ी जरै ।
सुधि भूलै न नेकहूँ वा छबि की, हिय हाय अधीर ना धीर धरै ।
नहिं नैनन आवै सु नींद कबौं, यह व्याकुल चित्त ना चैन परै ।
सजनी यही जानि परै कै कोऊ, मन बैठि करेजो को रेजो करै ॥

२४

घूमौ करौ बिन रोक के टोक के, चारो दिसान करौ नित फेरी ।
ऐसी नहिं जग ठौर कहूँ, कोउ होत ना 'प्यारे' जहाँ गति तेरी ।
पाँव परौं कर जोर कहौं, अहै तेरिही आस दसो दिसि हेरी ।
पौन जो गौन करौ मथुरा, कहि दीजियो लाल सों पा-लगी मेरी ॥

२५

लालन हाय वियोग-कथा, अकथा है न मोपै कछू कहि जाती।
याद परै तन कम्प बढ़ै, नहिं धीर धरै धड़कै मम छाती।
'प्यारे' जू रावरे ध्यान धरै, सुर है बस एक ही नैन सँघाती।
कुम्भज की गति लेते न नैन तो, आँसुन-धार सों मैं बहि जाती॥

२६

राहु सी होती न जौं अलकैं, तो कलाधर की न कला कहि जाती।
'प्यारे' न संभु से होते सरोज, मनोज की साँसति ना सहि जाती।
प्रेम-समुद्र परी बिरहागि, न तो मैं हहा कब की दहि जाती।
कुम्भज की गति लेती न आँखैं, तो आँसुन-धार सों मैं बहि जाती॥

२७

गोए रहे मन की मन में, खुलि कै नहिं बाल उसास हू लेति है।
हाय करै न कबौं मुख से, चित चौचँद सो भयभीत सहेति है।
'प्यारे' जू पीर पिरायो करै, निसि-द्यौस में होति घरीक सचेति है।
जामें न भीत लखाइ परै, मुख आलिन हूँ को न देखन देति है॥

२८

वह नाम लै तेरो जपै निसि-बासर, तेरो निरन्तर ध्यान धरै।
जग सों है बुरी एक तेरे लिए, कुलटा बनि या जग में बिचरै।
सुख त्यागि सबै दुख सीस सदा, पै न हाय कबौं मुख ते उचरै।
कबौं भूलि हूँ वा सों न नेक मिलै, अरे जालिम ऐसहूँ कोउ करै॥

२९

जब ते लखि पाई गुपाल तुम्हैं, तब ते दुख पावै लली सुख ते।
निसि-बासर भौन के कोन परी, पट भींगो लपेटे रहै रुख ते।
वह 'प्यारे' सु पूरन-चन्द-कला, भई चाहै अमावस सी दुख ते।
केहि भाँति कै सेज पै जानि परै, जब आहहु नाहिं कढ़ै मुख ते॥

३०

बिरहानल-ज्वालन से झुरसी, सु च्चवाव बयारि-झकोर बहै।
गुरु लोगन के पतखारन तें, बिन पात भई पिय 'प्यारे' अहै।
तिहि पै उपहासन आतप माँहि, परी केहि भाँति कै ठाढ़ी रहै।
जेहि प्रेम के पानिप सींचे सदा, अब सोई लता मुरझाई चहै॥

३१

नहिं भूलत हाय अजौं हिय तें, हित हेरि हियो हरि को हरिबो।
मुसकाय कछू अरु बेनु बजाय, हँसाय बुलाय भुजा भरिबो।
रिझिबो खिझिबो पिय 'प्यारे' मेरो, अरु बंक सुभौंहन को करिबो।
डरिबो परिबो पिय के पग पै, बहि पानि पयोधर पै धरिबो॥

३२

प्रेम को नेम न जानैं कोऊ, सुनि औरो हँसैं हम कौन सो भाखैं।
कोऊ मिलावनहारो नहीं, बिन 'प्यारे' सो कैसे कै प्रानहिं राखैं।
चित्त तो लीनों चुराय चितै, बल कै पलकैं हिय मारत साखैं।
भूलति नाहिं भुलायहु पै, वह हाय मनोज-भरी बड़ी आँखैं॥

३३

धीर धरैं कहु कैसे सखी, अरु आनन को केहि भाँति तें राखैं।
कैसे हँसैं बिहरैं बन-बीथिन, कैसे करैं मन की अभिलाखैं।
बूझि कै हाय भई अनबूझ तो, तोसों सखी हम का अब भाखैं।
पूछति हाय क्यों रोय रही, नहिं जानति तू बिरहीन की आँखैं॥

३४

बातैं बनावते आवते ना, केहि आस पै धीर हिये धरिहौं।
औध किलेकन बीत गए, दिन द्वैक में बीसबिसै मरिहौं।
आइहैं 'प्यारे' न काम कछू, यह पाती लै हाय कहा करिहौं।
कागद की भला नाव सों का, या बियोग के सागर को तरिहौं॥

३५

हौं तो नहीं अनबूझ कछू, तुम ही कहो काह तुम्हें समझावैं।
हाल हमारी छिपी है नहीं, जग-जाहिर जौन सो काह लखावैं।
औरहू ह्वैहौ दुखी सुनि कै, किहि काज बियोग-कहानी सुनावैं।
देखत जौन हौ सो कहियो, सु कहा हम उत्तर ऊधो बतावैं॥

३६

जानैं हमारी दसा न कहा, अनजान जो होय तो ताहि जनावैं।
सोवते को तो जगावैं सबै, पर जागत को नहिं 'प्यारे' जगावैं।
हाल हमारी छिपी ही नहीं, तुमहू भलै जानत काह बुझावैं।
देखत जौन हौ सो कहियो, हम कौन सो उत्तर ऊधो बतावैं॥

३७

धिक ऐसे सनेह को हाय भटू, नहिं आज लौं पूज्यो मनोरथ जी को।
'कबि प्यारे' सदा तरसाय रहे, मुख हू भरि नैन न देखौं सु पी को।
मथुरा बिसराय कै जाय बसे, नहिं आय उपाय करे हू किती को।
नँदलाल जो आवते ह्यौं सजनी, बसिबो ब्रज-गाँव को लागतो नीको॥

३८

ऊधोजी कीजै कृपा हम पै, बिन बातन काहे को रार बढ़ाइये।
कोटि किए हम मानिहैं ना, अपनो वहीं जाय प्रभाव दिखाइये।
जा पै बिसेष सनेह है 'प्यारे' को, ताही पै जाके सनेह जनाइये।
आछी हैं यों ही सबै सखियाँ, हमको जिन जोग अजोग सिखाइये॥

३९

धरि कै हिय ऊधो सिखावन को, कोध सौंति कै चित्त मनावनो है।
तजि हीर हरा हरि हेत सबै, रुद्राछ को माल लगावनो है।
'कबि प्यारे' जू छोड़ि अभूषन को, अँग-अंग बिभूति रमावनो है।
हरि तें मिलनो तो किनारे रह्यो, अब जोगिन-भेस बनावनो है॥

४०

पाती पठाय कै हारि गई, वह बात हू आवन की न चलावैं।
कूबर देखि लट्टू भये लालन, जोग पठाइ कै धीर धरावैं।
चाहती जो 'कवि प्यारे' मिलें, यह सीख हमारी सुनो जो बतावैं।
या तजि और उपाय नहीं, हमहूँ सखि कूबर-रूप बनावैं॥

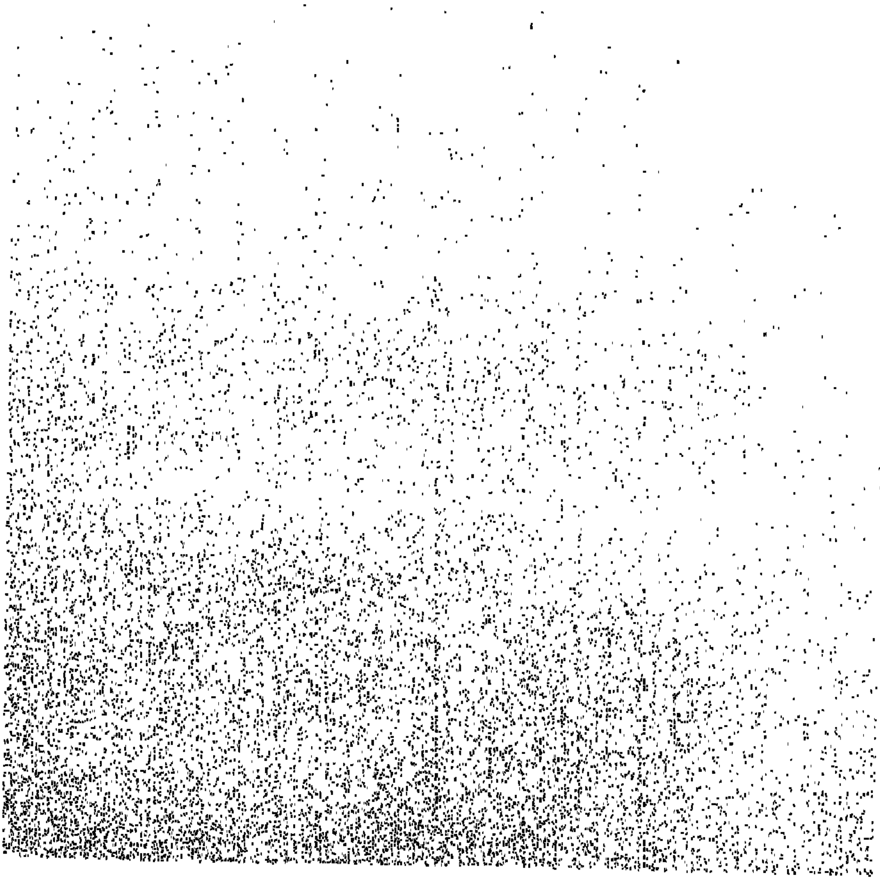
४१

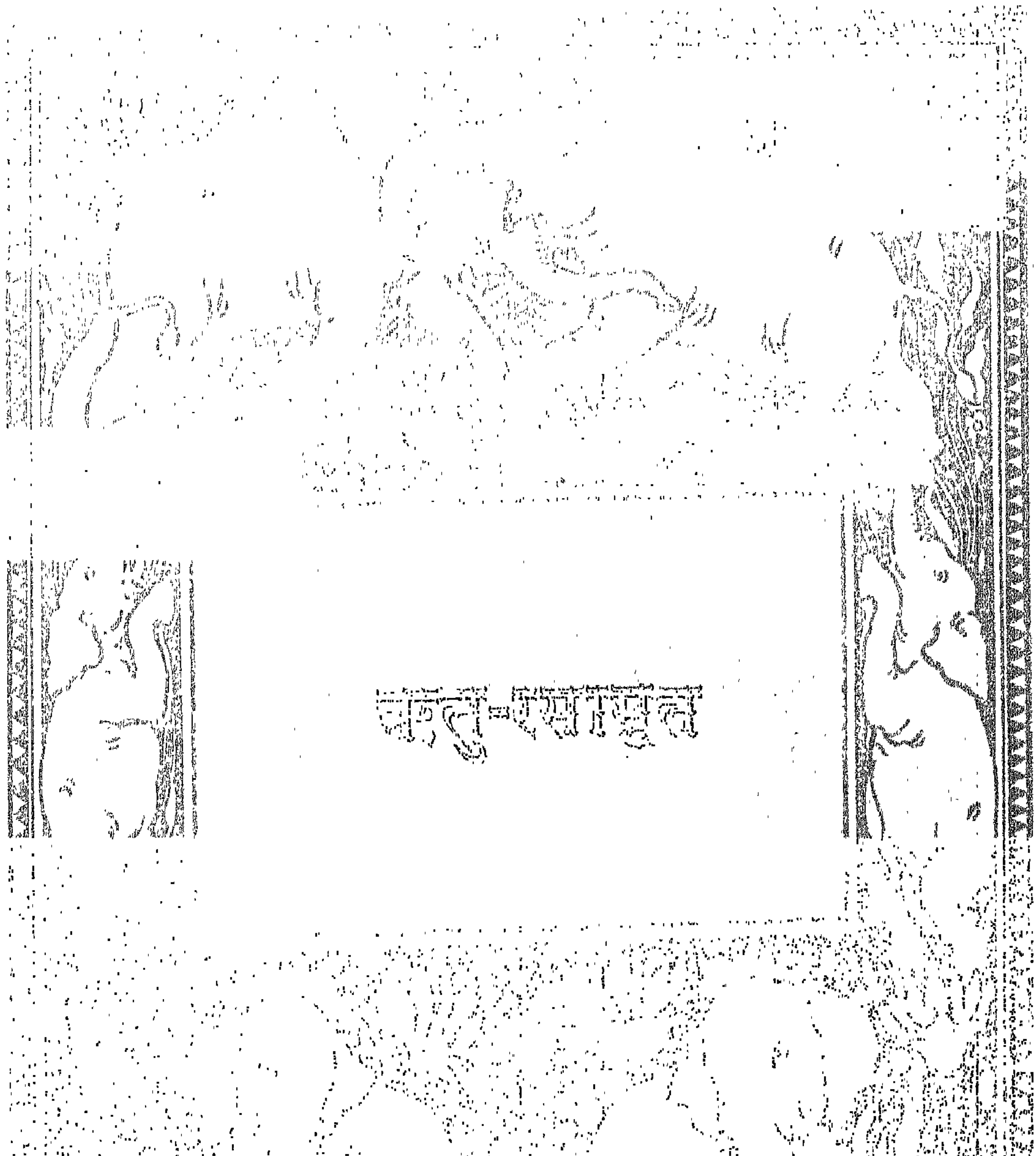
चूक भई हमसों छमियो, यह पाती कृपा करि दो हमैं फेरी।
यामें लिखी है बियोग-कथा, निसि-द्यौस जो बीतत मेरे सिरे री।
'प्यारे' जू ह्वैहैं दुखी सुनि कै, चले आइहैं वे बिन काज करे री।
हाल ना मेरो कछू कहियो, कहि दीजियो लाल सों पा-लगी मेरी॥

४२

दौड़ी फिरी घर बार तजी, औ कनौड़ी भई कुल-कानि दई।
कौड़ी को मोल न मेरो रह्यो, बदनामी की मोटन सीस लई।
'प्यारे' दुलारे तिहारे लिए, या निगोड़ी सु कौन न काम कई।
डौंड़ी फिरी हमरी जग प्रीत की, लौंड़ी तऊ पटरानी भई॥







जन्तु-ग्यालरुव

स्याम घटा नभ में निरखि, सजल भये दृग लोल
फिर प्रमदा प्रमुदित भई, सुनि कोयल के बोल

कवित्त

[फाग]

१

मधुर मृदङ्ग-रव-मिश्रित धमार-ध्वनि, अवनी-प्रपूरि मग-गगन गहत है।
प्रमदा-प्रमोद-मद-प्रमुदित मत्त मन, हरष-हिलोर लहि हीय उलहत है।
सुखमा सुखद रस रास मन मैन-प्रद, प्रसरि दिसान दस 'प्यारे' उमहत है।
जुवती-जुवक अङ्ग-अङ्ग लाग्यो रङ्ग होन, आज अनुराग ब्रज-बीथिन बहत है॥

२

स्यामल सरीर सुचि बिकसित अरुन कान्ति, रंजित अबीर माल-मानिक ललित गर।
लुंठत महीतल बिबर्नीकृत उत्तरीय, सिक्त दर बिगलित सुरंग बारि-कन पर।
कलित कपोल आकुलाइत अलक-जाल, 'प्यारे' प्रतिभात दृग धौत धौत पंचसर।
मंडित-गुलाल मुख-निर्गत अनूप आभा, पिचकी कनक कम्र कोमल कमल-कर॥

३

लगन लगी तो फेर छिपति छिपाये नाहिं, दोउन ते प्रीति आज कैहूँकै न म्वै गई।
आखिर भई या बात जाहिर सबों के बीच, सब ही के हिय की सँदेह-लीक ध्वै गई।
पिचकी चलावै कौन मारै कौन मूठ 'प्यारे', दोउन की सुधि एकबारगी ही ख्वै गई।
बाल-मुख लाल, बाल हेरति गोपाल-मुख, बाल-मई लाल, बाल लाल-मई ह्वै गई॥

४

जात हुती खेलन सखीन सों निकुंज माहिं, सामुहे खड़े ह्वै पथ आय रोकि लीन्हें क्यों।
काहे को कहत चूक और के सु धोखे भई, नीके करि मोहिं नाहिं पहिलेहि चीन्हें क्यों।
देहौं का जवाब जब पूछिहैं ननद मेरी, हाय मोहिं रंगन ते 'प्यारे' बोरि दीन्हें क्यों।
चोरियै लगैहैं सासु देखि कै गरे की ओर, हाय हीर-हार को प्रबाल-माल कीन्हें क्यों॥

छप्पै

५

आज महोत्सव कौन, जगत आनँद-परिपूरित।
सबके हृदय उछाह, सबै हैं परम उमंगित।
नव आमोद-प्रमोद, मत्त सब सुधि-बुधि भूले।
गावत मधुर धमार, उच्च स्वर फूले-फूले॥
भरि-भरि भाजन कुमकुमे, रङ्ग-कमोरी साथ में।
हो हो कै गलियन फिरत, पिचकी 'प्यारे' हाथ में॥

सवैया

६

अरी होरी है आज तो होरी अहै, खुलि खेलौ सबै न लजाओ कोऊ।
बढ़ो आवत नंद को लाल इतै, पिचकी भरि ताकि चलाओ कोऊ।
मुख देखती क्यों चुपचाप खरी, अरी धाय अबीर उड़ाओ कोऊ।
भरि झोरी गुलाल लिये हौ कहा, धँसि लाल के गाल लगाओ कोऊ॥

७

संग सखा इतै लीन्हें गोपाल, उतै सखियाँ लिये गोप-किसोरी।
गावैं बजावैं हँसावैं हँसैं, मिलि खेलैं सु 'प्यारे' अनूपम होरी।
भीजैं भिजावैं लजैं दुरि भाजैं, उड़ावैं अबीर-गुलाल की झोरी।
गोरी गुलाल मलैं मुख लाल के, लाल मलैं मुख गोरी के रोरी॥

८

खेलत फाग सु राधिका-मोहन, 'प्यारे' जू देखि महा सुख पावैं।
ठौर ही ठाढ़े, भजैं ना दोऊ, नहिं नेकहूँ पाँव सु पीछे हटावैं।
भीजैं भिजावैं भजैं जुरि आवैं, अबीर-गुलाल की झोरी उड़ावैं।
दोऊ दुहून के गालन में, बड़े चाय सों धाय गुलाल लगावैं॥

९

दोऊ दुहूँ दिसि ते पिचकी भरि, 'प्यारे' दुहूँन को रंग अन्हावैं ।
दोऊ दुहूँ के सनेह सने, मृदु होरी धमार की तान उड़ावैं ।
दोऊ दुहूँन को अंक भरैं, अरु दोऊ दुहूँन को चाव बढ़ावैं ।
दोऊ दुहूँन के गालन में, बड़े चाय सों धाय गुलाल लगावैं ॥

१०

ऐसे न देखे खिलाड़ी कहूँ, नहिं नेकहुँ पाँव सु पीछे हटावैं ।
ज्यों-ज्यों सु अंग पै रंग परै, हिय 'प्यारे' जू त्यों-त्यों सुरंग बढ़ावैं ।
धावैं सुकंठ लगावैं दोऊ, मुख चूमैं अबीर की झोरी उड़ावैं ।
दोऊ दुहूँन के गालन में, बड़े चाय सों धाय गुलाल लगावैं ॥

११

कंचन की पिचकी कर लै, चहुँ दौरत बिज्जु-छटा-छबि छोरत ।
डारत ताकि नई अबलान पै, रंग के छींटे अनंग झकोरत ।
मूठ गुलाल की मूठ सी मारत, लाय अबीर चितै चित चोरत ।
केसर के रँग के सँग में, बलिहारी सनेह के रंग में बोरत ॥

१२

नीलम के सुचि खम्भ पै कै, मनि-मानिक-माल-प्रभा हिय हूलै ।
कै निसि के कमनीय कलेवर, सूरज के करै जोति अतूलै ।
'प्यारे' किधौं जमुना-जल पै, अरविन्द के वृन्द लखें मन भूलै ।
स्याम सरीर पै सोहै गुलाल, कै किंसुक-माल तमाल पै फूलै ॥

१३

होरी जु खेलन आये हौ लाल तौ, मो सन सूधे है खेलि लौ होरी ।
ऐसी कुचाल सुहाति हमैं नहिं, हार हमारे गरे को सु तोरी ।
हौं वृषभान-पुरा की निवासिनि, 'प्यारे' न जानौ गँवारिन भोरी ।
छाड़ि दो हाथ हमारो सुनो, जिन लालन मो सों करो बरजोरी ॥

१४

नव पल्लव से अधराधर ये, नहिं बोलिबो भार सु जात सम्हारौ।
मृदु मंजु गुलाब की पाँखुरी सों, अति कोमल गोल कपोल निहारौ।
तन पीपर पात सों हाथ कँपै सब, 'प्यारे' जू नेकु दया उर धारौ।
नहिं जात चितौन की चोट सही, हलके कर-कंज ते कुमकुम मारौ॥

१५

फाग सों मोहिं बिराग नहीं, छलछन्द सों पै हमैं छैल छलो ना।
जानि लला निबला अबला, पद के तल मो बिनती को दलो ना।
रंग चलाओ भिजाओ भिजो, बरजोरी को कीबो है 'प्यारे' भलो ना।
कुमकुम मारो बचाय उरोज, गुलाल मलो पर गाल मलो ना॥

१६

हौंस हमारे हू जी के कढ़ैं, कबौं पूरे हमार्‌यौ मनोरथ-जाल हों।
हौं हूँ बनैं बड़भागिनि 'प्यारे', सोहागिनि में हमहूँ कबौं लाल हों।
द्वार हमारे हू नेकु दया करि, संग हमारे हू फाग को ख्याल हो।
रावरे गाल गुलाल लगाय, हमूँ तो कबौं नँदलाल निहाल हों॥

१७

उड़ि जायगो हाय अबीर सबै, अरु घोरन कोऊ गुलाल ना पैहै।
पिचकारि हू फेंकी फिरैंगी इतै उत, रंग हू ना अजू रंचक ह्वैहै।
यह केसर हू मिल जायगी कीच में, होरी धमार हु ना कोउ गैहै।
जग को ब्योहार है 'प्यारे' यही, यह होरि हू हाय योंहीं जरि जैहै॥

१८

कहे देति हौं बात सफा तुम सों, हमरे ढिग लाज की गारी न गाओ।
ब्रज में सब एक सी नाहिं बसैं, कोउ और के गाल गुलाल लगाओ।
हमैं ऐसी रुचै सपने ना हँसी, हक-नाहक मो पै न मूठ चलाओ।
बस गैल गहो अपने घर की तुम, हाहा 'पियारे' न रार मचाओ॥

१९

छाई गुलाल की लाल घटा, चहुँ लाल ही लाल निरेखि परै।
रंग रँगे दोऊ भीने सनेह सों, एक सो भेख बिरेखि परै।
'प्यारे' दिसा हू दसा बदली, रवि बाल उदै सम देखि परै।
इन्द्रवधू अलि कालिंदी वानी, तमाल पलास सो पेखि परै॥

२०

ह्वै रही रङ्गन ते सरबोर, हिये पै न नेक सकाय रही है।
जोबन के मद में मतवारी, चहूँ दिसि हूँ छबि छाय रही है।
बैठि कबौं भजि आड़े ह्वै रङ्ग ते, आपुन अङ्ग बचाय रही है।
ग्वालन में घँसि कै बलिहारी, गोपाल पै मूठि चलाय रही है॥

२१

या पिचकी भरि कै रँग में, केहुँ भाँति ते 'प्यारे' छिपावन दै।
तू मत जाय कहै उन सों, तब को बदलो तो चुकावन दै।
झोरिन में भरि दै री अबीर, सुगाल गुलाल लगावन दै।
गावन दै री बजावन दै, इतै नन्द के लालहिँ आवन दै॥

२२

तुम देखियो आज की फाग मेरी, हौं झुकावति हौं कि नहीं उनको।
भरि रंग ते लै पिचकी कर में, हौं भिजावति हौं कि नहीं उनको।
मुख रँगि गुलाल ते लाल अरी, हौं नचावति हौं कि नहीं उनको।
चुनरी पहिराय अनोखी तिया, हौं बनावति हौं कि नहीं उनको॥

२३

साँचहू मोहन मोहन हैं, मुख देखत ही सबही सुधि त्यागी।
लाज-समाज निवारि सबै, 'कबि प्यारे' जू स्याम-सनेह सों पागी।
बौरी भई सी जनाति हमैं, यह देखो तो और ही राग में रागी।
लाल के गाल गुलाल लगावत, बाल बेहाल ह्वै अंक मैं लागी॥

२४

अबला है न बोल्यो कछू मुख ते, तुमने जो दई रँगि सारी लला।
तन भींज्यौ कँप्यो कियो पल्लव सों, भजिबे को तऊ न बिचारी लला।
यह बात फबै नहिं 'प्यारे' तुम्हैं, अब आई जे बारी हमारी लला।
भजि कै चले ढेंक ही मूठन में, बलिहारी लला बलिहारी लला॥

कवित्त

[बसन्त]

२५

फूलन पलास-पुंज सूलन बियोगी-हीय, चटक गुलाब गुंज सुखमा समाज को।
भ्रमन भ्रमर-भीर डारन लतान-द्रुम, बौरन रसाल-कुंज कोकिला अवाज को।
सुखद सुपौन परसि अंगन उमंग होन, घटन सुरैन 'प्यारे' दिनन दराज को।
भजन समाज-लाज अवनि-अकास तजि, आगम जनायो श्रीबसंत महाराज को॥

२६

कोकिल-सुकंठ-ध्वनि-पूरित पुहुमि-उर, सोभित अरन्य-मुख नूतन विकास-हास।
उत्पल-प्रफुल्ल मधु-लोलुप मलिन्द-वृन्द, गन्धवह विस्तृत सुगन्ध सुद रास रास।
पल्लवित लतिका रसाल मंजु मंजरित, पुलकित पलास-पुंज अरुन बिलास भास।
सुखमय प्रकृति किन्तु दग्ध रमनीन हृदय, बासर बसन्त मध्य प्रीतम प्रबास बास॥

२७

छाय गई आभा कछु औरे ब्रज-मंडल मैं, अवनि अकास छटा और ही पसरिगो।
पुष्पित पलास-पुंज मंजरित अम्ब निम्ब, गुंजरित भौंरन सों डार-द्रुम भरिगो।
चढ़िगो सु औरे रंग 'प्यारे' जू सँजोगी-अंग, लाज-मरजाद सुधि सबही बिसरिगो।
कौतुक करंत रतिकंत हुलसंत हीय, आवत बसंत बिरहीन धीर हरिगो॥

२८

घेरि-घेरि उठत घनेरो उर माँझ सोक, नाहक पलासन पै हाय नैन परिगो।
सुनि परी कानन सुकीर कोकिलान धुनि, नैन जुग खंजन सुनीर 'प्यारे' भरिगो।
गिरत धरातल पै लोटत अचेत होत, गजब कसाई या कजाकी घाव करिगो।
बिकल रहत निसि-बासर परै ना चैन, आवत बसंत बिरहीन धीर हरिगो॥

२९

मंजु मंजरीन को सु नेसुक नचाय चाय, धाय लतिकान लै अँकोर झकझोरे लेत।
तरनि-तनूजा-तीर तरल तरंगनि सों, बहसि परसि सुख मोटन बटोरे लेत।
'प्यारे' त्यौं प्रसून के परागन ते पूरि-पूरि, भूरि-भूरि भावन भोराए मन मोरे लेत।
आनँद अथोरे लेत चारु चित्त चोरे लेत, सीतल सुगंध मंद हौ-तल हिलोरे लेत॥

३०

तू तो है दयानिधान आन कौन तो समान, मेरी दीन दसा देखि दया दरसायो तू।
तेरे गुन कौन मुख गैयै कहाँ लों खोलि, गाढ़े अति औसर पै आड़े एक आयो तू।
करतो पयान छिन एक में प्रमान प्रान, धन्य-धन्य 'प्यारे' पौन मरत बचायो तू।
मंद-मंद आय तप्त हौ-तल को सीतल कै, प्यारी-मुख-स्वास-सनी सौरभ सुँघायो तू॥

३१

अरुन प्रसूनन सो सुखमा समूहन सों, मंजु मुख लाल दिव-दारा निदरत है।
मोद उमदाय प्रमदान मद काम होय, काम-तरु आगिन गरूरन हरत है।
रतिपति-पुत्र रितुपति के प्रसादन सों, भूरि-भूरि भावननि भुवन भरत है।
देखहु तौ भौंर-भीरवारो ये पलास-वृंद, आज सुरराज हू की तुलना करत है॥

३२

बिहँसत बदन ऐसो बिकसित सुमन लागै, मोहे लेति कली मन उरज उभार-सी।
प्यारी रसबारी या अलीन की गुँजार-धुनि, मत्त किये देति प्रान भूपन झनकारि-सी।
'प्यारे' अंगराग सो पराग की अनूप छबि, आँखिन में देति सुख सुखमा बगारि-सी।
लागि-लागि हौ-तल को सीतल करति अहा, बैहर बसंत की सलोनी सुकुमारि-सी॥

३३

मंद-मंद डोलि गज-गामिनि-गमन ऐसो, आँखिन में देति वही सुखमा बगारि-सी।
कीचक बहाने कलकंठ की सुरीली धुनि, कानन में देति बरजोरिन उतारि-सी।
अंगराग सौरभ प्रसून के पराग सनि, वैसियै 'पियारे' देति चहुँघा पसारि-सी।
अंतर न नेक हिय लागति लगति ठीक, बैहर बसंत की सलोनी सुकुमारि-सी॥

३४

कोकिल कलकंठ सुनि काकली को भ्रम होत, जानि परै जैसे धुनि गान को सुनाति है।
कोमल कमल देखि नैनन की सुधि होति, भ्रमर बिलोकि स्याम आभा सरसाति है।
सुमन समाज बनमाल की दिवावै याद, चलत मराल देखि चाल वा लखाति है।
हाय यह बैरी बसंत माँह बार-बार, साँवरे-सुँदर की सुरति परि जाति है॥

३५

सरसौं सुखद पीत बसन सुरंग धारे, पूरित पराग तन चन्दन सोहात है।
सरसी सुसोभ सरसीरुह सरस नैन, सुमन समाज बनमाल सरसात है।
प्रमदा-प्रमद गौन 'प्यारे' मंद-मंद पौन, स्यामल मलिन्द-वृन्द सुन्दर सुगात है।
कोकिल-कुल कंठ-कल काकली कलित है कै, आज रितुराज ब्रजराज सो जनात है॥

सवैया

३६

जानि परै रितुराज को आगम, औरई सोभा लसै बन पै।
औरई पौन को गौन भयो, चढ़्यौ औरई रंग प्रसूनन पै।
'प्यारे' भयो सब और कै और, छई छबि औरै अलीगन पै।
औरै सँजोगिन के तन पै, कछु औरै बियोगिन के तन पै॥

३७

आगम जान्यौ परै रितुराज को, मंद सुगन्ध समीर बह्यौ चहै।
फैली चहै चटकाहट कुंजन, ठौर कलीन प्रसून लह्यौ चहै।
बोल्यो चहै अब कोकिल 'प्यारे', सुबौर रसाल तमाल फल्यौ चहै।
जात मलिन्द कहा तजि कै, मकरंद अबै अरबिन्द भर्‌यौ चहै॥

३८

कोकिल कूकै लग्यो हरषाय, कोलाहल कै कै सुकुंज-कुटीरे।
बौरै लगे कचनार अनार, बहै लगै पौन सुगंधित धीरे।
'प्यारे' लगे दरसान मलिन्द, मरन्द के लोभी गुलाब के नीरे।
डोलै लगी प्रमदा उमदाय, सुपादप पात परै लगे पीरे॥

३९

सिंचित ह्वै मकरंदन ते, धरनी-तल स्वच्छ सोहाय रह्यौ है।
लोनी लता ते प्रसून गिरै, मग पाँवड़े पौन बिछाय रह्यौ है।
नाचि रहीं कलिका कल कोकिल, मंजुल मंगल गाय रह्यौ है।
पूरी चहूँ दिसि भौंर गुँजार, बसंत अवाई जनाय रह्यौ है॥

४०

भरि जायँगी आए बसंत समीर, सुगंधित कुंजन की गलियाँ।
झुकि जायँगी फूल के बोझन ते, अरुनारी पलासन की डलियाँ।
छबि छायँगी 'प्यारे' प्रसूनन पै, मकरंद-सनी भ्रमरावलियाँ।
लटकैंगी रसाल की मंजरियाँ, चटकैंगी गुलाबन की कलियाँ॥

४१

सारी सजे तन पीत मनोहर, जैसी प्रभा सरसों की रसैं।
आनन कंज पै मोती-लरी, मकरंद को बुन्द मनों बरसैं।
कोकिल बैन, बिलोचन में, कजरा भ्रमरावली-सी सरसैं।
बैठि लतान के मंडप माँहि, बसंत सों बाल औ लाल लसैं॥

४२

छबि ऐसी छई छिति चूम्यो चहैं, झुकि फूली पलासन की डलियाँ।
मदमाते मलिन्दन सो गईं पूरि, सुगंधित कुंजन की गलियाँ।
पिय 'प्यारे' रसाल पै कोकिल कीर, कलोल करैं हरैं बे-कलियाँ।
हरषाय नचैं मृदु मंजरियाँ, मुसुकायँ गुलाबन की कलियाँ॥

४३

नीके कसी अँगिया रहै और हू, जाहिर जामें उरोज-उभार हो।
तापर लाल प्रबाल-मई, हियरा हरे हीलत हीरक-हार हो।
लोनी लटैं लटकी रहैं लंक लौं, ढंग नवीन ते अंग-सिँगार हो।
लाज निवार हो, 'प्यारे' ते प्यार हो, तौही बसंत में पूरी बहार हो॥

४४

खासुहे सौरभ सार सनो मधु, पूरो सुहावनो प्यालो कतार हो।
पास में सुन्दरी होवैं दो-चार, जिन्हें लखि ही में अनंग-उभार हो।
होवै बढ़ी सुमुखी जो सभीन ते, ताके गरे अपनो भुजहार हो।
प्रेम बगार हो, 'प्यारे' पै प्यार हो, तौही बसंत में पूरी बहार हो॥

४५

आए समाज सबै सुख के, चहुँ ओर छबीले छटा छबि छाए।
छाए बिदेस पै 'प्यारे' पिया, किहि काज को हौं सब ये सुख पाए।
पाए न पत्र हूँ एकौ अली, बिरहानल डारत अंग जलाए।
लाए अबीर कहा केहि को कोउ, आए बसंत पै कंत न आए॥

४६

आस लगी लगी होति निरास सी, जो में उछाह नहीं कहा गाइहौं।
धीरज ही न अधीर हियो, दुख में सुख मानि कहा सुख पाइहौं।
बात मैं एक ए पूछती हूँ फिर, पाये जबाब नहीं हठ लाइहौं।
कंत तो छाए बिदेस अरी, केहि के सँग बीर बसंत मनाइहौं॥

कवित्त

[पावस]

४७

विस्मय-जननि कैसी पावसीय सोभा आज, प्राकृत प्रकृति रूप अन्य रूप जाके बल ।
दिवस बिराजित बिभावरी बिभीषिका जा, तम-मय समोहा दिव्य अंसुमाली-मंडल ।
मृत्तिका-रचित 'प्यारे' मरकत-गठित भूमि, चक्रवाल-वेष्ठित जोजनावधि समथल ।
अभ्र सोभा तारा रासि शयित धरित्री उर, चंचल बिद्दार हेम फननि गगन-तल ॥

४८

अस्ताचल-चूड़ासायी अंसुमाली दिनदेव, बिरह मलीन हीन दीन दिग-कामिनी ।
सन्मुख परिसिक्त भूमि निर्ज्जन भयावहा है, हिंस्र-पसु-पुञ्ज-पूर्न वीथी दुर्गामिनी ।
आवृत समस्त नभ भीमाकृति घन-राजि, दर्सित दिव दर्प पतनोन्मुख दामिनी ।
जनपद अमित दूर आसु आगत-प्राय, तारा-पति तारा-सून्य तिमिरान्ध जामिनी ॥

४९

दामिनी दमक जुगनून की चमक, धरा धारन धमक धुरवान को सु धावनो ।
दादुर को सोर चारु रोर तमचूरन को, पवन झकोर जोर अंग सिहरावनो ।
चातक चिकार मुरवान की पुकार 'प्यारे', झिल्ली झनकार मन मैन उपजावनो ।
प्रीतम को आवनो चहूँधा घन छावनो, सु बारि-झर लावनो सो रैन को सुहावनो ॥

५०

घेरे घोर घन कै कुजोधन समाज जुर्‌यौ, केकी कूक देवै कैधौं अन्धसुत गारी है ।
पूरे नद ताल सर मातुल-मनोर्थ कैधौं, पांडु-घनु त्योंही डूब्यो कंज अनुहारी है ।
सुजन सुनैन आँसु बरखा उसाँस पौन, भीम-जानु-पीटन कै गरज डरारी है ।
चपला चमक कैधौं हँसिबो दुसासन को, सावन की रात कैधौं द्रोपदी की सारी है ॥

५१

कोइल कलकंठ मंजु निःसृत मधुर ध्वनि, निबिड़ अरन्य परि गगन गहति है ।
तरनि-तनूजा तुंग तरल तरंग 'प्यारे', सिखर सुमेर चूमि पुलिन परति है ।
पाराक्रान्त प्रबल प्रभंजन प्रभीम बेग, लतिका ललित लचि भूमि परसति है ।
घहरत घमंड कै घमंडित सुघन-राजि, तड़िता बिदारि तम-तोम तड़पति है ॥

५२

बहत बयारि फहरात पट दोउन के, देखि-देखि दोऊ उमदात रस बोरे में।
परत सु बुन्द दोऊ दोउन करत आड़, पीत पट अंचल चुचात से निचोरे में।
बहकि-बहकि दोऊ चहकि-चहकि 'प्यारे', लहकि-लहकि मन भरत अँकोरे में।
जैसे दोऊ झूलैं मनि-जटित हिंडोरे माँहि, तैसे आनि झूलैं मन मंजुल हिंडोरे में॥

५३

झूलत न नेकु हिय हूलत अजौं लों आय, झूलत चखन छबि छाँह सुखदेनी की।
झूलत हिंडोर सखियान सँग लीने वह, गावत मलार वही रूप रस-ऐनी की।
लहरान मनिमाल फहरान अंचल की, कहरान केकी घहरान घन-सेनी की।
बार-बार झोकन ते बल खाय हा हा खात, लचकन लंक पीठ उचटन बेनी की॥

५४

जुरत दुहूँ के दृग खबर हेरानी सबै, तज्यौ लोक-लाज गुरु लोगन सकाइबो।
एक टक दोऊ मुख दोउन के देखि रहे, उतरे धनुष छूट्यौ मंद मुसुकाइबो।
स्वेद-कन छाये 'प्यारे' मंजु मुख दोउन के, सजनी बन्यौ न नेह नेसुक दुराइबो।
डोर गहे हाथन में झुकि के झुकेई रहे, भूलि गयो दोउन को झूलिबो झुलाइबो॥

छप्पै

५५

घोर घटा घहराति, नवल ललना डरपावति।
मानिनि मान छुड़ाय, पिया गर सों लपटावति।
कामी नर उमड़ाय, मैन मद मोद बढ़ावति।
चातक चित हरखाय, मोरगन रोर करावति॥
संजोगिनि है सुखद अति, बिरहिन उर दाहन दहति।
पावस-रितु आगम मनहु, टेरि-टेरि सबसों कहति॥

५६

ललना ललित कपोल, लुरे लट कहुँ हिलावत।
लज्जा-नम्रमुखी मुख, अंचल कहुँ सरकावत।
थकित पथिक स्रम-स्वेद, सुखै कहुँ गैल धरावत।
मंजुल तन कटि खीन, जुवति उपमान बनावत।
नव कुसुमित मंजुल सुमन, रज धरि सुभ सौरभ लहत।
कल कलित कलिन्दी-कूल है, मन्द-मन्द मारुत बहत॥

सवैया

५७

आई सोहाई अरी बरखा, मन भाई मनोभव जोति जगावै।
मानिनी के हठि मान छोड़ावत, 'प्यारे' सु प्रेमिन आस पुरावै।
कैसे बिदेसी बिदेस रहैं, उठि धावैं अरी घर की सुधि आवै।
देखि चहूँ हरियारी छई, हरि-यारी न क्यों अँखियान मैं छावै॥

५८

घोर घटा घहरात चहूँ, सुनि कै हिय माहिं महा डर पाइयै।
साँझ सों ठाढ़ी कदम्ब तरे, पिय 'प्यारे' जू नेकु दया उर लाइयै।
रात अँधेरी न सूझत हाथ, सु जानि परै ना कहाँ कित जाइयै।
साँवरे रावरे पाँय परौं, नँदगाँव को पैंड़ो हमैं बतलाइयै॥

५९

कारी घटान की सौसनी चीर, महा अँग माँहि सोहायो करै।
स्त्रौन तरौना लसै चपला, पग-घूँघुर झींगुर भायो करै।
'प्यारे' जू त्यों मिस मोरन के, मधुरे सुर रागन गायो करै।
पावस सौंहैं सँजोगिन के, है नटी निज नाच दिखायो करै॥

६०

कौन को होत नहीं मन मैन मैं, कौन न ऐसो समै सुख पावै।
हाय न का को हियो उमगै, पिय 'प्यारे' न काहि सु पावस भावै।
कोइल कूकै सु या ही उमंग मैं, भौंर हू याको अरी गुन गावै।
चूनरी पेन्हि हरी अचला, रितु पावस ही की बधाई मनावै॥

६१

कारी घटा को कराल कलेवर, देखत जाके कोलाहल माची।
हाथन में चपला की कृपान लै, इन्द्रबधू सिर सेन्दुर राँची।
हाड़ को माल गरे बग-पाँतिन, खाति इहा बिरहीन को काँचो।
आवति बुन्द के बानन मारति, पावस है न पिसाचिन साँची॥

६२

मोर न नाचैं कहूँ बन मैं, पपिहा की पुकार सुनाय नहीं।
कैलिया कूकन पावै नहीं, चपला कहूँ 'प्यारे' लखाय नहीं।
राखिहैं प्रान कहा बिरही, कोउ झूलि मलारहिं गाय नहीं।
अब तो मन धीर धराय नहीं, घन घोर घटा घहराय नहीं॥

६३

चलु देखु री प्यारी अटा पै छटा, छवि छूट सी लूट चहूँघा मचावै।
थिरता न गहै चख चंचल सी, तड़पै नवला सी हियो उमगावै।
पिय 'प्यारे' जू दौरै दुरै दरसै, छिन लोनी लता सी अहा झुकि आवै।
धुरवान के डोर चढ़ी चपला, सुनटी सी अनेक तमासो दिखावै॥

६४

नेकु निरेखौ उचाय कै नैनन, या समै कौन भला बहरैहै।
कैसी घटा उमड़ी चली आवति, नेकु मैं बूँदन की झर लैहै।
जाहुँगी 'प्यारे' न हौं तजि गेह, सु मेह से भींजत कौन बचैहै।
कामरी कारी की ह्वैहै कहा, पर सारी हमारी लला नसि जैहै॥

६५

झुकि से परौं पेंग बढ़ाइबे में, पटुरी पै परै पग ज्यों बिचला।
लगि डोर ते ढीलो भयो ना रुक्यो, धरनी में गिर्‌यो छिगुनी को छला।
तन की सुधि तैसे ही नाहिं तुम्हें, मन भूल्यो लली के हिंडोल-कला।
गिरि जायँगे हाय अचेत-से है, सँग राधिका के जिन झूलौ लला॥

६६

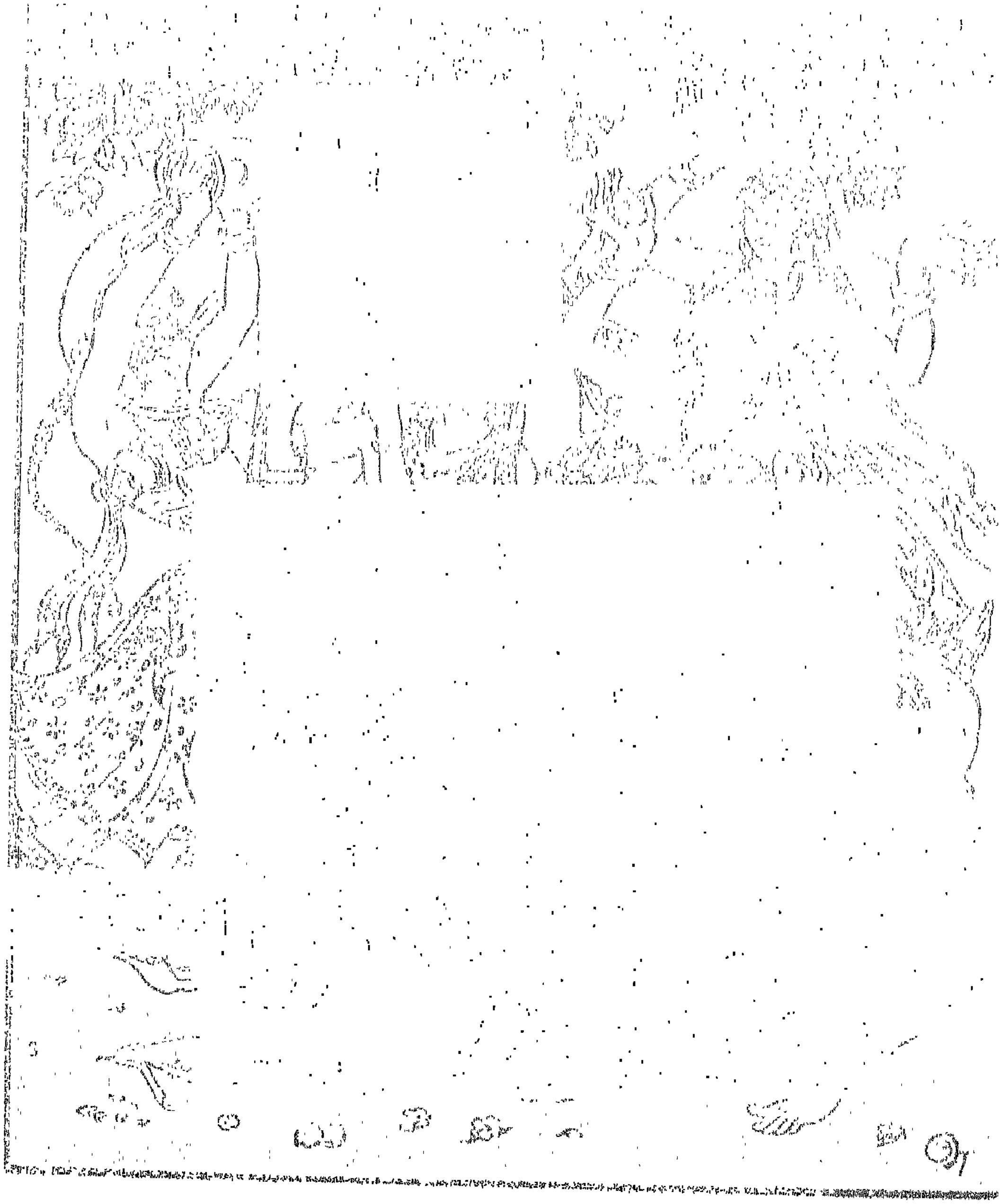
राधिका संग सखीन लिये, सुख झूलैं हिंडोरे कदम्ब की डारे।
चोटी खुली लचकै करिहाँ, मुख बार छुए अति चिक्कन कारे।
ता बिच नैनन की उपमा, मन माँह बिचारि कहै 'कवि प्यारे'।
मानों लतान में जाय छिपे, मृग-छौन द्वै केहरि-भीति के मारे॥

६७

स्याम बने वृषभानुजा झूलत, राधिका स्याम बनी छबि छावै।
छैल छली छल सो हरि खीझत, रीझि तिया बरियाई झुलावै।
नेह नहे करैं कौतुक कोटिन, सो सुखमा ना गिरा कहि पावै।
आज को झूलिबो दोउन को, सजनी बस देखत ही बनि आवै॥

६८

वृषभान-दुलारी सखीन लिये, झुकि झूलै हिंडोर महा सुख पावत।
लखि कै घनस्याम घिरे चहुँधा, उर चोप भरे मधुरे सुर गावत।
अलकैं ढिग नैनन आनि छिपैं, 'कवि प्यारे' लखे उपमा अस आवत।
मृग वाहन आपने पै रिसि कै, सु मनों नृप चन्द चमोटी चलावत॥



भक्ति-भावना

अङ्ग-अङ्ग प्रति रोम में, पूरे तुम गोपाल
दुखी होइहौ आपु ही, देत हमें दुख लाल

कवित्त

१

प्रेमयुत पूजे पद पावन परम चारु, दारिद बिदारि देत सम्पति दिगन्त की।
ध्याये भक्ति-भाव-युत रीझि-रीझि दासन पै, छमता बटोरि देत देव परजन्त की।
दीनता पुकार सुनि दीन की दयार्द्र होय, 'प्यारे' हरखाय देत मति गति सन्त की।
रसना लजाति नहिं बरने बरनि जाति, महिमा अनंत जग-बिदित अनन्त की॥

२

ओस से बिलाइगे मनोरथ कु-अर्थिन के, निश्चर नछत्रन को मुख कुमुदै भयो।
नीति की बयारि लागी चलन सुचारौं ओर, सुनि चक्रवाकन के मन में मुदै भयो।
सूरजमुखी से भये नैन कौसिला के आज, 'प्यारे'-मन आनँद अपार त्यों खुदै भयो।
फैल्यो तेज धर्म को, अधर्म की सिरानी निसा, भानु-कुल-कमल-दिवाकर उदै भयो॥

३

ह्वै कर दयालु बन राघो रिषि-नारि तारि, ताड़िका सँघारि तोरि चाप गहि सीय-पान।
भेजि परसुराम बन जाय मुनिबर्ग भेंटि, बैर खाय नाक काटि हरि कै खरादि प्रान।
सीता हाय खोय खग तारि कपि राज दै कै, सोध पाय सेत बाँधि लंका-दिसि कै पयान।
रावनादि मारि घर आय पाय राज आज, देखु हरि अवध-सिंघासन बिराजमान॥

४

कानन में जानन को पिता-प्रन-पालन को, पूत जो बिचारो तो अनेक दुःख पाइहौ।
ह्वैहौ ना अधीर तुम दुःख हू अनेक पाये, छत्रिन को बीर मरजादा को निबाइहौ।
देखिहौ न सीता-मुख-कंज कुम्हिलान पावै, बारो मेरो लखन सो पहिले खवाइहौ।
भेजिहौ सँदेस 'प्यारे' जोगी जतीन मिस, मेरे लाल सुधि ना हमारी बिसराइहौ॥

५

धाईं देव-दारा सुनि आरती समाज साजि, धाये गंधर्व-वृन्द व्यग्र ह्वै हरख भरे।
धाये बज्र-पानि सुनि वृज को बिमान छाँड़ि, धाये ससि-सेखर न गैल में कहूँ अरे।
सारदा--समेत चतुरानन अचेत धाये, धाये दिगपाल दौरि 'प्यारे' त्यों त्वरा परे।
जैसे जाहि भायो बार रंचक न लायो धायो, सुनि कै गोबिन्द आज गोकुल में औतरे॥

६

जाकी जोति जागति तिहूँ पुर में एक सम, सोई मनि हीरक अमोलक परेखि लै।
जासो मुरझात दनुजातन को कञ्ज-मुख, सोई ये अमन्द चन्द नीके अवरेखि लै।
जासो सदा चित्रित सुमानस मुनीसन को, सोई दिव्य चित्र चित्तपट पै सुरेखि लै।
'प्यारे' प्रेम--रूप सर्वस्व--धन प्रेमिन के, जसुदा की गोद आज नैनन परेखि लै॥

७

चन्द्रचूड़-जटाजूट--भ्रमित सुगङ्ग--धार, जाहि अभिषेकित सु नित-प्रति करत है।
मकरी-कृत स्याम सिर चन्दन प्रस्वेद आर्द्र, जामें लगि सुखमा समूह वितरत है।
बज्रपानि--नैन--सुखदायिनी सची के केस, मंडित--मन्दार पुनि जापै पसरत है।
सोई जगदम्ब--पद--पदुम--पराग पागि, 'प्यारे'-मन-भ्रमर सु भाँवरी भरत है॥

८

झलकत जामें देव-दारन सोहाग-बिन्दु, आभा प्रतिभाति सिर-स्याम मोर-पख की।
इन्दु इन्दु-सेखर को छूटत अनन्ययत्व, ह्वै कै जामें बिम्बित सु 'प्यारे' यों परख की।
मनिन ते जटित सुबर्न-मई कांति-भरी, देखि परै जा महँ किरीट कोटि चख की।
दास के अयान-तम-पुंजन को नास करै, सोई जोति जाहिर सु मातु-पद-नख की॥

९

देव-प्रमदान-पग-सिंजित मधुर ध्वनि, पूरति दिगन्त जहँ उठि आठौ जाम है।
पंडरीक नैन उर सहमि सकात जहाँ, कौस्तुभ-हार हिये लेत न बिराम है।
अवनत सीस ससि-सेखर की ससि-कला, जहाँ परि होति प्रतिबिम्बित ललाम है।
भक्ति-मुक्ति-दानि जगदम्बा सुखखानि सदा, तेरे द्वार-देहरी को कोटिन प्रनाम है॥

१०

मुष्टि में रहति मुक्ति आँगुरीन पंच भूत, नखन नखत ससि आभा बितरत हैं।
करतल ज्वलन्त ज्वाल पोरन त्रिदेव काल, प्रकृति प्रनाली रेखसूत्र अबिरत हैं।
रोमन अखिल लोक 'प्यारे' परिपाटी-बद्ध, रिद्धि-सिद्धि जोग भुज-मूलन भरत हैं।
चारौ बेद चारौ जुग चारौ धाम चारौ काम, तेरे चार भुज ही को आसरा करत हैं॥

११

छूओं नाहिं बेद औ पुरानन को 'प्यारे' हौं तो, प्रेम को बिगारे तासो नातो कबौं जोड़ौं ना।
नास्तिक कुकर्मी औ कुराही जो कहैं तो कहैं, लोक-अपवाद-भीति प्रेम-नेम तोड़ौं ना।
एहो बृजनाथ हीन-दीनन-अनाथ-नाथ, रावरे सरन आय कैहूँ मुख मोड़ौं ना।
खीजिहौ तो छोड़ौं ना, न खीजिहौ तो छोड़ौं ना, रीझिहौ तो छोड़ौं ना, न रीझिहौ तो छोड़ौं ना॥

सवैया

१२

सुत रावरे जन्म लियो सुनि कै, जुरी जाचक-भीर निहाल करीजै।
बलि दीजिये खोलि किवार खजाने को, या जग में जुग में जस लीजै।
केहि लायक कौन है देखिये आज न, 'प्यारे' सबै मुँहमाँगे ही दीजै।
मुकुताहल मानिक लाल प्रबाल, सु लाल पै लै लै निछावर कीजै॥

१३

जौ निरखौं अपनी करनी, डर गैरे हिये में बढ़ै अति भारी।
लाज लगै बिनती करिबे में, सु आवै न ये कहुँ बात उचारी।
पै नहिं लाज से काज चलै, गति ऐसी भई कछु हाय हमारी।
मैया न बाप हितैया कोऊ, बस मैया हमैं इक आस तिहारी॥

१४

लेत नहीं सुधि मेरी हहा, दुख दीनन देखि कहा सुख पाइयै।
चाहत और न हौं तो कछू, बिरुदावलि आपुनि नाथ निभाइयै।
'प्यारे' करै बिनती कर जोरि, बिसेस न दास सों बातैं बनाइयै।
है तो दया करि तारियै मोहि, कै दीन-दयाल न फेर कहाइयै॥

१५

कहो बेद पुरानन झूठी सबै, कि जो चाहै तुम्हें तेहिं को तुम चाहत ।
पुनि जो सरनागत होवे तेरे, करि तापै कृपा सब भाँति निबाहत ।
यहि 'प्यारे' को तेरो ही आस अहै, सुचि प्रेम को पन्थ तेरे अवगाहत ।
कहो कौन सो दोष है नाथ मेरो, जेहिं के बदले नहिं मो पै निगाहत ॥

१६

जात सही न हहा हमते, अब तो यह दास महा दुख पावत ।
ऐसो झकोरन में परि कै, 'कबि प्यारे' जू जीवन हूँ नहिं भावत ।
होय अनाथ पुकारत नाथ मैं, एतो अबार कहाँ धौं लगावत ।
लेत नहीं सुधि दीन की, दीन-दयाल कहावत लाज न आवत ॥

१७

तुम्हैं छाँड़ि न और के जैहौं ढिगै, अब तो तुम्हैं स्वामी बनाय चुके ।
जग में यह बात जनाय गई, बृजराज हमैं अपनाय चुके ।
दुख देव हमैं कै हमैं सुख दो, 'कबि प्यारे' मनोरथ पाय चुके ।
अब लाज हमारी तुम्हीं को अहै, हम रावरे दास कहाय चुके ॥

१८

यामें तो रावरी हानि अहै, दुख 'प्यारे' तो योंही सदैव सहैगो ।
बेदन की मरजाद नसाइहै, कौन पुरान प्रमान लहैगो ।
दास हु को सुन लीजै मतो, जिय में न तो पीछे मरोर रहैगो ।
तारिहौ मोहिं न जो नँदलाल तो, दीन-दयालु न कोऊ कहैगो ॥

१९

नहिं सूझत पुन्य को पन्थ पुनीत, सुसीस पै पाप को गट्ठर भारी ।
कब हूँ ना सुपन्थ मैं पाँव धर्यौं, निसि-द्यौस रह्यौं प्रभु सैं दुरचारी ।
'कबि प्यारे' जू एक छिना हूँ नहीं, कबौं भूलि हुँ कै करी याद तिहारी ।
निसि-द्यौस यही उर सोच महा, गति कौन-सी होयगी नाथ हमारी ॥

२०

जौन सी भूमि के दर्सन को, धनि जानैं मुनीस निमेखन को।
रास-बिलास कियो जहँ साँवरे, गोपिका-संग अलेखन को॥
कालिँदी-कूल कदम्ब बनो, सुकरील के पुंज बिसेखन को।
देखिये च्यास पुजैये कबै, बड़ी लालसा है बृज देखन को॥

२१

बृज-भूमि सी कौन सी भूमि अहै, जहँ रास कियो हरि आनँद मानी।
तरसैं जेहिं के सदा दर्सन को, 'कबि प्यारे' जू जोगी जतीतपी ग्यानी।
जमुना की उमंग तरंग तहाँ, रस-रंग की चारु छटा छहरानी।
जम हूँ की न ब्यापत संक कछू, जहाँ मोहन राजा औ राधिका रानी॥

२२

नैन बसै वही माधुरी मूरति, साँवरे-रंग में अंग रँगै।
और को ध्यान न चित्त चढ़ै, वही साँवरो छैल हियो उमगै।
कान सुनै वही नाम, उन्हीं पद-पंकज-प्रीति में चित्त पगै।
प्रान जो 'प्यारे' पयान करैं, ब्रज-माटी मैं जाय के माटी लगै॥

भजन

२३

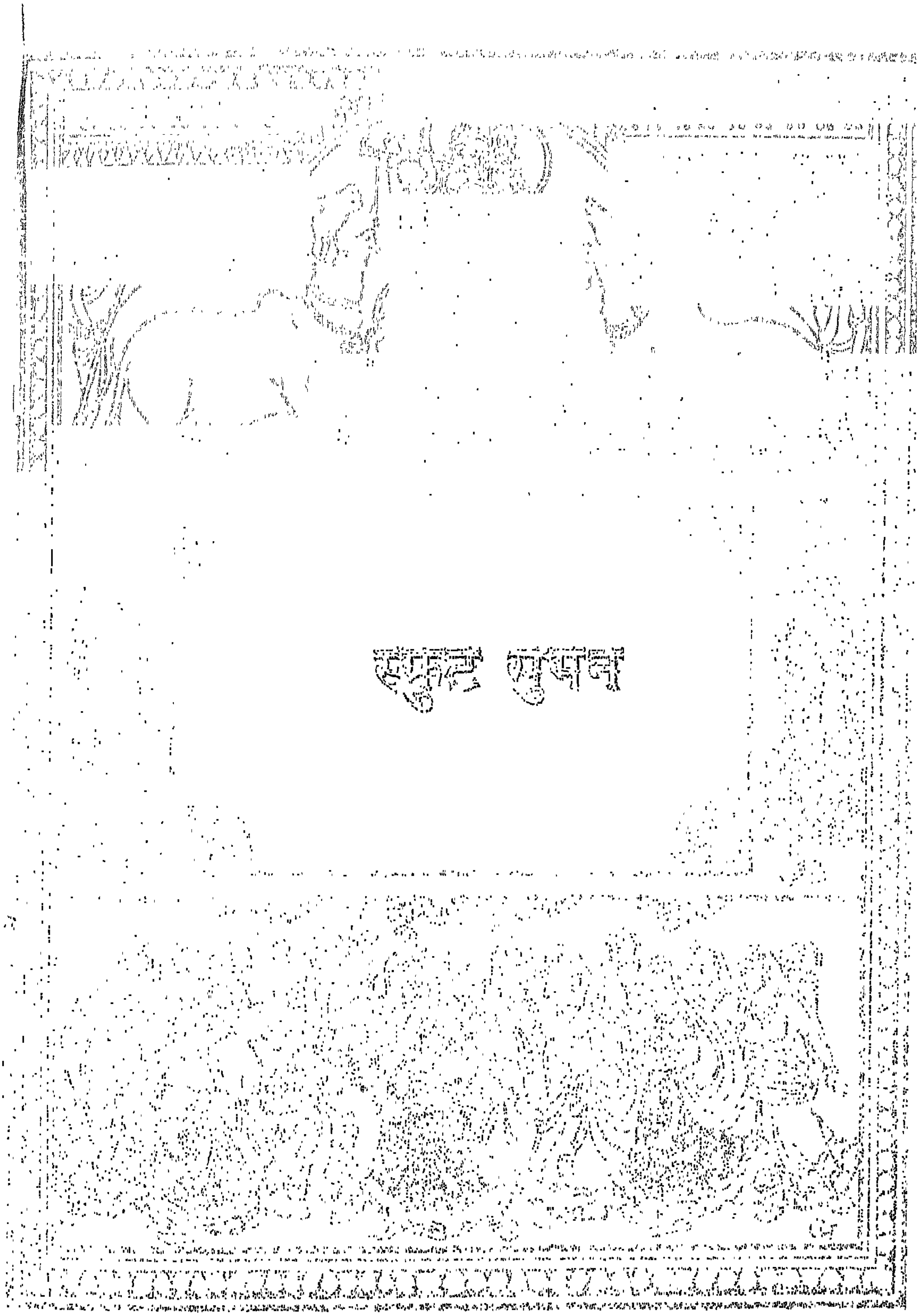
कहो अब कैसे बनिहै नाथ।
आनि परी टेढ़ी अति कैसे दोऊ निबैहौ साथ॥
तुम तो न्यायसील जग जानत होत जासु जस कर्म।
पापिन दंड धारमिक सुरपुर देत निबाहत धर्म॥
पै तुम नाथ पतित-पावन औ दयासिन्धु कहलाते।
हौं मनि-सीस-मुकुट पापिन को ग्यान-हीन अघ-राते॥
जौ तुम नाथ तारिहौ मो को दुखी दीन अति जानि।
निहचै न्याय-धर्म बिनसैहौ दया-धर्म के खानि॥

पुनि जौ जानि मोहि खल पापी दंड नाथ मोहिं दैहौ ।
फिर ना कबौं दयानिधि औरौ पावन-पतित कहैहौ ॥
कौन जुगुति 'प्यारे' के बारी करिहौ नाथ मुरारि ।
बड़ो पेच को अवसर आयो आपुहि करौ बिचार ॥

२४

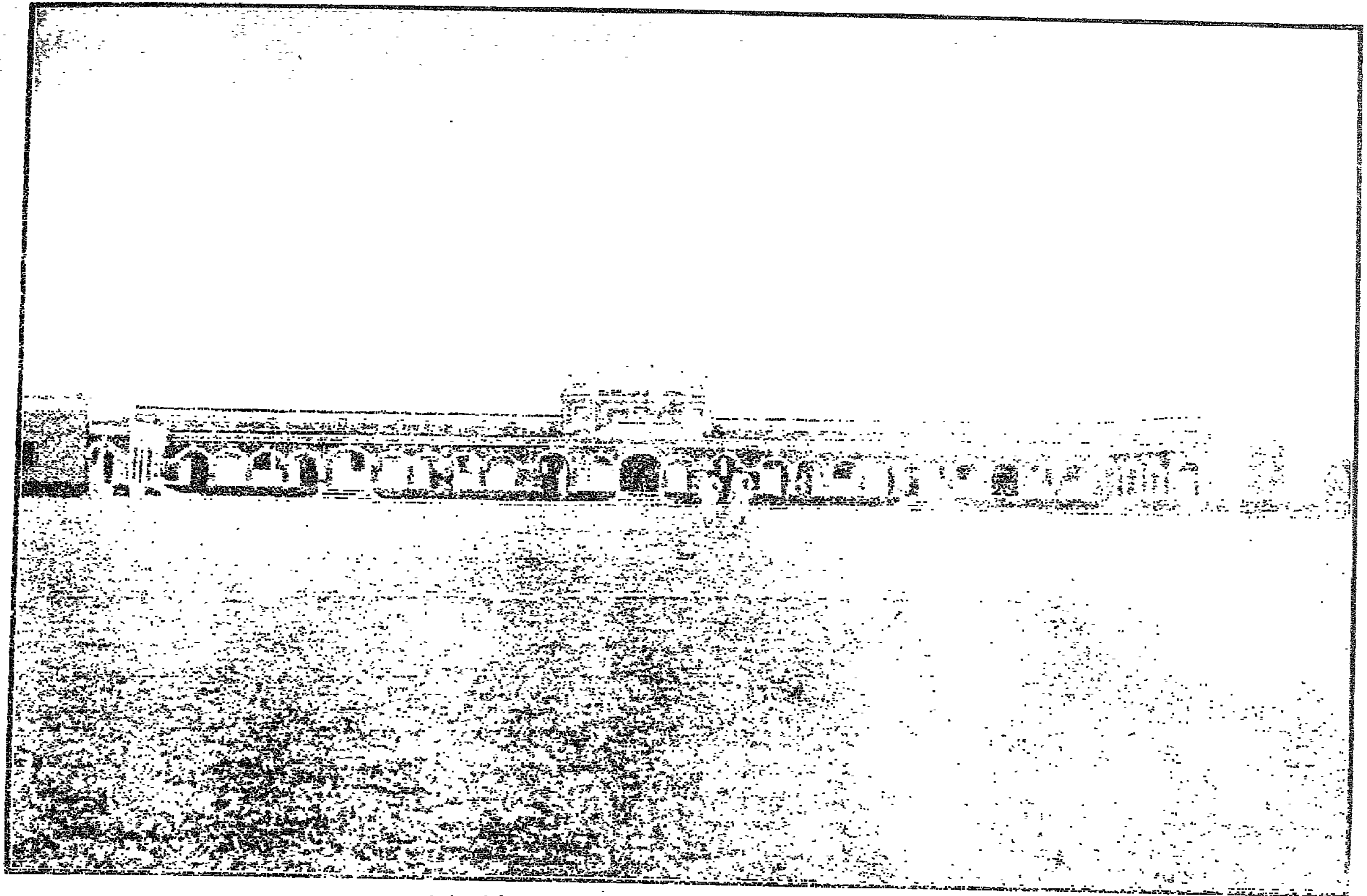
प्रभु मैं याही सोच मरौं ।
गुनि-गुनि निज पूरब करनी को हिये न धीर धरौं ॥
जा मुख सों सत-मारग तजि कै झूठहिं भजत रहौं ।
ता मुख होय ससंक लाज गहि किमि गुन-कथन कहौं ॥
जो कर रह्यौ लपटि कामिनि-गर सदा धुमायो मोहिं ।
ता कर कहियै नाथ दयानिधि कैसे प्रनवौं तोहिं ॥
जिन नैनन पर-तीयन की छबि देखत सदा बितायो ।
सो नैना कैहूँ बिधि तुमको बनत न नाथ दिखायो ॥
जो मन सदा बिषय-रस डूबे तिय-सुत-मोह फँसे ।
सो मन तेरे पद-पंकज में कैसे नाथ बसे ॥
डूबत इन्हीं सोच-सागर में कृपा नाथ उर धारौ ।
जानि आपुनो 'प्यारे' दीनहिं बाँहन पकरि उबारौ ॥





[illegible]





कवित्त

१

बैठि रही वा जो मन बैठि जात मेरो कहा, आवत झुकी वो मेरी स्वास झुका जाती है।
वाके उर रोस मेरे उर में जलन काहे, वा सों खिंची मेरी आस टूटी क्यों लखाती है।
बात न जनात कछु भेद नहिं पायो जात, सोचि-सोचि मेरी मति 'प्यारे' अकुलाती है।
मेंहदी लगी है पग वाके पर मेरे हाय, नैनन में काहे धौं ललाई दरसाती है॥

२

बोलत न कोकिल, कलोलत न कीर-कुल, डोलत न बात नहीं पात खरखरात है।
भ्रमत न भौंर-भीर थिर सों जमुन-नीर, बिटप-समाज ठाढ़ो ठगो सो लखात है।
नीरव अवनि जड़ गोपिन-जमाति 'प्यारे', चंचल न चन्द्रथ निश्चल जनात है।
बंसीधर मोहन पिया की बाँसुरी को एक, सुन्दर रसीलो सुर सरस सुनात है॥

सवैया

३

जाके सुने चित होत अचेत, रहै मन बौरो बहै दृग आँसु री।
बान-सी तान लगै हिय आन के, जीवन की ना रहै कछु आसु री।
होय हिये में कहा को कहा, मन 'प्यारे' मनोज करै सु निवासु री।
झूठी अमी-मई लोग कहैं, सखि या तो अहै विष ही भरी बाँसुरी॥

४

पाय के संग बुरे सुधरैं पै, न अंतर यामें कछू दरसै।
छूटी न याकी कुचाल अजौं, वही रीति अनीति की हा सरसै।
कौतुक 'प्यारे' अनूप लखो, रह्यौ लोह ही पारस के परसै।
पीवे पिया-अधरा को सुधा, पै तऊ विष ही बँसुरी बरसै॥

५

लाज नहीं है बड़े कुल की, बल पाय न हाय दया करते।
चाहिये विप्र को 'प्यारे' दया, तुम ऊधम औरै सदा करते।
पूजित ह्वै भले बामन ते, अजहूँ नहिं भूलि छमा करते।
एक पै मोहि छुड़ायो पियै, जु पै होते दोऊ तो कहा करते॥

६

नहिं जानत एरी लबेद कहा, सखि दासी लों प्रीति किये पुन है।
पुनि लाँगरी लूली सु आँधरी सो, करै नेह सु नायक को गुन है।
'कवि प्यारे' जु तो सो कहाँ लों कहैं, एक औरहु यामैं अरी धुन है।
अपनी करनीन को देखि भटू, उपदेस करै जो सोई मुन है॥

७

चोटी खुली बिथुरे सब बार, कपोलन पै लटके लट कारे।
नैन दोऊ मधु छाक छके, अलसान पगे झलकैं रतनारे।
'प्यारे' जू कंचुकी-बंद खुले, बिनसे सुमजे जन माँग सितारे।
साँझ समै दुति याकी बिलोकि, सखी हँसि चौथ को चंद निहारे॥

८

छूटै सुधाई को सूधो सो पन्थ न, होय न काहू को चित्त दुखारो।
टेढ़ करेहू न रोस हो चित्त मैं, होय भलै नहिं लोक मँझारो।
ताब कहूँ अफताब हू की, उड़ि जाय न द्योस मैं होय अँध्यारो।
ऐसे सुकष्ट से खेल गँजीफा, सु सर्ब्ब हरैं सब दुःख तिहारो॥

बरवै

९

हाथन थाभि केवरिया, ठाढ़ी बाल।
झाँकि-झाँकि पिय देखति, होति निहाल।
ढुलकी लै कथकनिया, अंग सँवार।
मधुर-मधुर सुर गावति, मधुर मलार।

भलो भयो नहिं बाज्यो, आज सितार।
बिधना ही पत राखी, टूटे तार॥

१०

सुन्दर सुभग डोमिनिया, बरनि न जाय।
तुरकहिं नाच नचायो, नैन नचाय।
भीजे बसन पसिनवा, पिछुरे बार।
बठो नेकु 'पियरवा', करौं बयार॥

११

जनिया नई जुवतिया, जोबन जोर।
काहे पाप बटोरति, भौंह मरोर।
चोखे चपल नयनवा, मन हर लीन।
पलकन मूँदि केवरिया, फिर नहिं दीन।
बठी बदन दुराये, करि पट-ओट।
लागत सऊ करेजवा, चितवन-चोट॥

१२

एहो नंद-दुलारे, बलि-बलि जाउँ।
थामहु नेकु गगरिया, लट सुरझाउँ।
फैली सरद जुन्हैया, आँगन माँहिं।
सीतल होत न जियरा, पिय घर नाहिं।
देखि-देखि पनिहारिनि, अपनो यार।
झमकि-झमकि जल खैंचति, बिथुरे बार॥

कवित्त

[श्रीकविराज सन्तजी की प्रशंसा]

१३

तेरी सत महिमा को अंत नहिं पाइयतु, गाइयतु कैसे जहँ बुद्धि हारि मान्यो है।
प्रकृति असेस छन्द बन्धन प्रबन्ध बेस, रचना बिचित्र चतुरानन सकान्यो है।

फैल्यौ तिहुँ लोकन अलौकिक तिहारो गुन, देख्यौ सुन्यौ जौन तौन भ्रम उर आन्यो है ।
नाग सेस जाने अरु मानव गनेस जाने, रिषि जाने व्यास देव देवगुरु जान्यो है ॥

१४

चेति कै कबित्त चतुरानन चकित चित्त, सोधन सुबेदन की आसरा करे रहैं ।
सीस धुनैं सेस गुन उकुति असेस लखि, छिपि कै पतालहू में लाजन गरे रहैं ।
मुजरा न पावैं 'प्यारे' अरज सुनावैं कहा, देवगुरू दूर दुरि द्वार पै खरे रहैं ।
कवि-कुल-मुकुट—मानिक्य गुरु संत तेरे, गिरिजा-सुअन पौरि पायन परे रहैं ॥

१५

कलम उठावत ही जोरि कर हाजिर ह्वै, भूरि-भूरि भाव सुभ सौंहन खरे रहैं ।
रीति गुन भूषन सुव्यंग ध्वनि व्यग्र ह्वैकै, रचना निमित्त कहि प्रस्तुत अरे रहैं ।
सब्द-बिन्यास अनायास अनुप्रास-युत, 'प्यारे' रस होय बस पायन परे रहैं ।
सारदा समेत चतुरानन निकेत तजि, गुरु के प्रसाद छाँह सीस पै करे रहैं ॥

सवैया

१६

बुधि-आगर नागर लोक-उजागर, वारन के मिस कीरति छाई ।
रस-व्यंजन छंद-प्रबन्धन के, हर हार मनों हिय में पहराई ।
कर जोरि कै पूछत 'प्यारे' कहो, गुरु संत सुसिष्यन पै हरषाई ।
भ्रम काटत ही को न बार लगै, तरवार की काट या कौन सिखाई ॥

१७

['घन-आनन्द' के काव्य की प्रशंसा]

मनि-मानिक हीरक लाल प्रबाल, पखान हैं 'प्यारे' उचारौं कहा ।
तन है मृतिकादिक ही सो बनो, तेहि ते मरजाद बिगारौं कहा ।
मन हू व्यभिचारी हमारो अहै, तेहिं के दिसि हाय निहारौं कहा ।
तुमही 'घन-आनँद' मीत कहो, तुमरी कवितान पै वारौं कहा ॥

१८

[कवि अम्बिका की प्रशंसा]

जोरे रहैं कर मोहि गजानन, ता दिसि नेकु नहीं चितईं।
सेईं सुबानि हूँ मोहि सदा, नहिं ताहु पै रंच हु डीठि दईं।
'प्यारे' जु बिद्या बखान करै, जग को नहिं तो पग आस लईं।
देखि अलौकिक बुद्धि महा, 'कबि अम्बिका' तेरी मैं दासी भईं॥

कवित्त

[समस्या-पूर्त्तियाँ]

१९

भूलि गये चौकड़ी कुरंग लखि तेरे नैन, कटि देखि तेरी कियो केहरी बनै पयान।
देखि पद तेरे बारिजात बारि जाय छिपे, दंत लखि दामिनि लियो री घन-पट तान।
घूँघट उठत मुख-मंडल दमक द्योत, अवनि अकास माँहि 'प्यारे' भयो दीप्ति आन।
पीरी परी प्रबल प्रभाकर की प्रभा, भई "कलित कलाधर मैं कालिमा प्रकाससमान"॥

२०

गालन गुलाब फूल कहत सुमति भूल, वामें हिय मैन हूल पाखे रहे मुरझान।
कुच तो कहत चक्रवाक सब कबिजन, वामें तो बियोग औ सँजोग यामें सदा जान।
नैनन की तुलना कुरंगन की देत 'प्यारे', वे तो देखि भाजत ये फाँसत जगत प्रान।
आनन लखाने चन्द लाज त्याज अतिमंद, "कलित कलाधर मैं कालिमा प्रकाससमान"॥

२१

बौड़ो सो फिरत बिड़रानो भुव-मंडल मैं, एरे पापी पौन निज पापन अजौं प्रमान।
कौन कलपाय कल पायहैं जगत बीच, चाहिये न कल पाय दीनन बिचारै हान।
एक तो बिरह-ज्वाल बढ़ो हिय माँहि आय, देत भड़काय ताको घृत-परिपाटी ठान।
नेकहूँ सकात नाहिं देख याही कारन के, "कलित कलाधर मैं कालिमा प्रकाससमान"॥

२२

भूषनन साजि अंग हीरन जवाहिर के, चम्पई बसन चारु गोरे गात लहरै।
कुचन पै कंचुकी अनेक रंग बूटेदार, माधुरी हँसन मुख मंगलीक ठहरै।

रसिया रसीले 'प्यारे' मंडित गरे के हार, हरि हिय हारे को न बाढ़े बिथा कहरै ।
मन्द-मन्द जाति चली चाँदनी में प्यारी कैसी, गज-मुकुता की मन बीच चाह "फहरै" ॥

२३

पुन्य तिथि ऐसी और दूजी ना सुनो री सखी, पूरन परम ब्रह्म जायो जसुदा के घर ।
परम प्रमोद भरे सब ब्रज-मंडल के, नारी नर पूजैं जाहि अम्बिका-भवानी-बर ।
दीन ह्वै-ह्वै भूमि परि चरन जुगल तासु, माँगैं बर देहु मातु भक्ति राम-कृष्ण कर ।
त्रिभुवन महारानी लेरो धारि ध्यान उर बीच, खड़े आय जोरि सौंहैं "कमला कमल कर" ॥

२४

चली देवकन्या सबै पूजन भवानी जू पै, करिके सिंगार सबै अंगन सुचारु बर ।
कंचन के थारन में फूलन के माल गूँथ, अच्छत कपूर अरु सेंदुर सोहाग धर ।
नाचत बजावत हँसत ताली दै दै 'प्यारे', प्रेमयुत ह्वै-ह्वै गीत गावैं अनुराग भर ।
करिकै उर ध्यान धरि पूरन मनोर्थ हित, सौंहैं आय खरी जोरि "कमला कमल कर" ।

२५

निसु दिन अँदेस में अधीर ह्वै सँदेस बिनु, सोचि-सोचि मन माँहिं काहे अकुलाती मैं ।
काहे को उदास छिन-छिन ही निरास ह्वै-ह्वै, नैनन सों नीर-धार अविधि बहाती मैं ।
'प्यारे' किमि होती यों छपाकर-कला सी छीन, रैन-सैन छूटतो क्यों पीरी परि जाती मैं ।
काहे को इतेक दुख पाती हाय हाय जो पै, प्रेम-पगी पाती प्रान-प्रीतम को "पाती मैं" ॥

२६

छाइ रही घन से चिकुर-राजि आनन पै, छीनि रही बिज्जु छबि भूषन अथोरे की ।
बोलैं पिक सिञ्जित मयूर मन नाच रह्यौ, हिलत हुमेल सोभा सलिल हलोरे की ।
मैन को झकोर पौन सारी स्याम कारी निसि, उमग तरंग तुंग सुखमा बटोरे की ।
खंभ भुज नेह गुन गहि पट जानु बैठि, हवस मिटा लो 'प्यारे' झूलन "हिंडोरे की" ॥

२७

उदित मयंक मुख निरखि कलिन्दी नीर, लौटी सुख लूटि निसि बीती जब द्वै घरी ।
छाया सम छिपे-छिपे छैल रह्यो पीछे-पीछे, औचक गह्यो बढ़ि कै भौंचक सी ह्वै परी ।

छाती गहि चूमि मुख गालन गुलाल लाय, कीन्हीं मनभाई 'प्यारे' कसर नहीं धरी।
चित्र लिखी पूतरी सी ठौर ही ठगी सी रही, साँकरी गली में प्यारी "हाँ करी न ना करी"॥

२८

नेकु नहिं भूलत भुलाये मन मेरो हाय, फहरे फहर प्यारी पीत पट छोरदार।
फाँसे मन फाँस कैसी कारी री तिहारी लटैं, कसकैं कटीली हिये भौंहैं ये मरोरदार।
बिलपौं बिकल ह्वै-ह्वै 'प्यारे' जू तिहारे बिना, दाहत सुअंग मेरो मनमथ जोरदार।
मुरछि परत जब आवै सुधि कंज-मुख, "करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार"॥

सवैया

२९

रूप अनूपम देखि के लालहिं, लाय गरे हिय हू न समेट्यो।
वा अधरामृत चाखन में, यहि लाज निगोड़ी ने आय चपेट्यो।
'प्यारे' के लै सुख लूटी न आजहूँ, ताप न काम मेरो जिय मेट्यो।
रात दिना जिय सोचत बीतत, हाय भुजा भरि स्याम न "भेंट्यो"॥

३०

ठाढ़ि ह्वौ का भजि जाहु अबै, सखि ह्वो न हहा इतनी मतिहीना।
मानो मेरो सिख मेरी भटू, नहीं ह्वैहै कठोर तुम्हें सुख जीना।
बावरी होय के डोलो फिरोगी, धरो हिय जो कहै 'प्यारे' प्रबीना।
जाहुगी बेधि अनंग के बानन, "आवत स्याम बजावत बीना"॥

३१

आये ह्वौ फाग तो खेलो भले, पै इतै ना तको बुरो हाल ही ह्वैहै।
गारी दो गाँव में चाहो जिन्हें, पै इन्हें ना कहो कुछ काल ही ह्वैहै।
ये वृषभान की लाड़िली हैं, सुनो 'प्यारे' इतै दुख साल ही ह्वैहै।
एक कुबोल कढ़ी मुख तें, तो तुम्हें नँदलाल "जबाल ही ह्वैहै"॥

३२

हिय लेती लगाय सु धीरज को, करि देती बिना दुख की छतिया।
बिकसाती कली मन की मुकुली, रसती रसना रस की बतिया।

तन पीरो परो करि देती हरो, जगती ना बिताती सबै रतिया।
हियरे को हरा हँसि देती अभी, सखि पाती जु पै हरि की "पतिया" ॥

३३

जिनके हित गोकुल गाँव तज्यो, तिन को जरा जोग सिखाइये तो।
तब जान परैगी अजोग की नाहीं, हमारी कही अजमाइये तो।
हम छोटी हैं छोटि हू बुद्धि अहै, इत आइ कै रीति बताइये तो।
बनि कै पिय जो नहिं आइ सको, गुरु ही बनि कै "मिलि जाइये तो"॥

३४

घर ही में रहो बड़े बाँके बने क्यों, अखाड़ हु पै बतराइये तो।
केहि भाँति हैं आपके पेंच रवाँ, हमहूँ को जरा दिखराइये तो।
डँड पेलि कै फूले अनाहक ही, जरा जोर कबौं अजमाइये तो।
यह सेखी न रैहै न रैहै लला, बदि कै हमसों "मिलि जाइये तो" ॥

३५

बिछुरे दुख कैसे सनेही सहैं, ये कछू अपने उर लाइये तो।
मन कैसो करै केहिँ भाँति रहैं, पिय 'प्यारे' दया कै बताइये तो।
इन पातिन सो भला लाभ कहाँ, मुखचंद कबौं दिखराइये तो।
नहिं आपसों सौतुख में जो बने, सपने हूँ भला "मिलि जाइये तो" ॥

३६

भई रावरे काज बुरी जो जहान ते, ताकी दसा उर लाइये तो।
धरै धीर न नेकु जो देखे बिना, तेहिं को छन धीर धराइये तो।
बिरहानल ते खरी जाति जरी, तेहिं की जरा आगि बुझाइये तो।
केहुँ भाँतिन ते पिय 'प्यारे' हहा, छिनहूँ भर को "मिलि जाइये तो" ॥

३७

तुतराहो कोऊ कहूँ ते ह्वै गयो, घर आपने जो कछु रात गई।
बरनी को बिलोकि रिसानी महा, अनखानी हिये गुरु मान ठई।

गिरि पाँय पै काँपत बोल्यो हहा, म म मोते कहा क कसूर भई।
क क कौन लिए प प प्यारी कहो, ति तिरीछी कहा "भ भ भौंहैं भई" ॥

३८

प्रीत के पंथ न डोलिये 'प्यारे', सुबात हमारियै साँच पतीजै।
जानि के होत अजान भटू, मन बावरे को अब धीरज दीजै।
झूठहिं जीव सतावनो है, परि फन्द में और के नाहक छीजै।
खींच के रेख मैं साँची कहौं, "दिलदार नहीं दिल कौन को दीजै" ॥

३९

कीजिये जो चित चाहिये आप, हौं राजी हौं रावरी जामें रजा है।
रूप-धनीन को जोग सबै, जो कहैं जो करैं सब भाँति बजा है।
घूँघट में मुख ढाँपिय नाहिंन, देखिये या तो अजोग सजा है।
हा हा बिलोकिये वैसहिं फेरहूँ, "चोट पै चोट लगै तौ मजा है" ॥

४०

कुलटा हैं कलंकिनी पापिनी हैं, सबही ते बुरी भई मानि चुकी।
यहिं गाँव के लोग चवाई महा, तिनहूँ को सखी पहिचानि चुकी।
ननदी औ जिठानी रिसानी सबै, पिय 'प्यारे' सोऊ भले जानि चुकी।
मन आवै तिहारो तुहूँ सो करो, हम "प्रेम की बारुनी छानि चुकी" ॥

४१

लाल चलो वा निकुंज में आज, तो कैसी मनोहरनी छबि छाजै।
कंज पै सोहत चंद की पाँति, सु तापर केदलि-खंभ बिराजै।
केदलि-खंभ पै 'प्यारे' रसोदधि, जाके कहे कबि की मति लाजै।
"सूई के नोक पै कूप-समूह, सु तापर गंग की धार बिराजै" ॥

४२

सोई हुती पलिका पर रात, उन्हीं के चरित्रन पै चित लाये।
नैन लगे तो लखी उनको, ढिग आय हमें हियरा ते लगाये।

जावक लाल के भाल विलोकि, बढ़ो उर रोष दुर्यौ न दुरायो ।
आँखैं खुली बजमारी दई, जो कही तुम लाल "भले बनि आये" ॥

४३

प्रान पर्यो फिर प्रान के पीर, सजीव सो ह्वै दुख फेर सतावै ।
चेतना जा मिली वेदना में, मन अंजना नूतन जन्म सो पावै ।
चिन्तना को तो मिल्यो नव जीवन, सौंहैं अतीव उठी चली आवै ।
जी उठी बात मरी मरिबे की, "सुधाधर आज सुधा बरसावै" ॥

दोहा

४४

सँग लागे-लागे फिरत, बाल जात जेहि ओर ।
चन्दकला जिमि वदन लखि, सुन्दर स्याम चकोर ॥

४५

दरपन लै दरपन-मुखी दीखे दरपन माँहि ।
दरपन-झाईं तिय-बदन, तिय-मुख दरपन आँहि ।

४६

'प्यारे' हाय कहा करौं, जब आवत प्रानेस ।
मोहिं लखि कै भौंचक रहैं, आनँद बदलत भेस ॥

४७

प्यारी बैन सुधा-मई, उलटो फल मोहिं देत ।
करि अचेत बिसराय सुधि, हिय हमरो हरि लेत ॥

४८

इन नैनन मोहिं दुख दियो, इन सम रिपु कोउ है न ।
तन मन धन सर्बस हरैं, तउ संतोष करै न ॥

४९

प्रेमऽरु दुष्ट दिनाय को, एकहि सों कह देत ।
पहिले दोउ नीके लगैं, पीछे दोउ दुख देत ॥

५०

कंचुकि बूटेदार में, कुच यों परत जनाय।
मानों हर कोउ जानि कै, पूज्यो सुमन चढ़ाय॥

५१

स्याम कंचुकी गौर कुच, यों जग कहत सुनाय।
या अमृत-फल खाय सो, प्रथम हलाहल खाय॥

५२

यह नव बाला सहि सकै, किमि फूलन को हार।
जाको सीस सुदबि गयो, पिय-चितवनि के भार॥

५३

झूलन-झोंका सहि सकै, किमि ऐसो सुकुमारि।
जाकी कटि दोहरी भई, जुग जोबन के भार॥

५४

यह को नवला ब्रजबधू, चली कुंज यों जाति।
सूधे पग इक नहिं परत, सकुचति डरति लजाति॥

५५

उकुरू ह्वै बैठी तिया, झूलति रतिहूँ जीति।
पावस परम प्रवीन सों, सीखति रति बिपरीति॥

५६

सखि जब देखौं आरसी, मेरो जिय अकुलाय।
प्रेम निगोड़ो अस कियो, पर्‌यौ न आप चिन्हाय॥

५७

कुच कठोर तेरे तिया, तो अस परत जनाय।
मनबांछित बध काम मनु, पाथर धर्‌यो गु लाय॥

५८

कानन लौं अलकैं छुटी, परी कपोलन आय।
मानों पन्नग-बिबर कढ़ि, रसिकन लखि बल खाय॥

५९

तेरे खंजन नयन ये, मोहिं सु बाज जनात ।
रसिक नयन पंछिन सदा, करत हाय ये घात ॥

६०

दरपन लै जाओ उतै, हौं मुख देखौं नाहिं ।
लाल दिखाई एक दिन, परी कपोलन छाँहिं ॥

६१

पिय-आगम सुनि बाल-चित, छाई महा उछाह ।
अब मेरी गुड़ियान को, ह्वैहै भले बिवाह ॥

६२

पिय-आगम सुनि साँझ लों, गई बाल हरखाय ।
पै ओठन ही लाज-बस, राखी हँसी दुराय ॥

६३

कर कंकन ह्वै कर लगो, चंपाकली उरोज ।
मधु-उन्मत्त मलिन्द ज्यों, बसो सुनैन-सरोज ॥

६४

कहत जगत बौरी भई, तजि दीनी कुल-कान ।
हौं 'प्यारे' बौरी नहीं, पर जगतहि बौरान ॥

६५

दीखत मुकुता सो लसै, परसत नाहिं जनाय ।
लाल अनूपम माल ये, कौन दई पहनाय ॥

६६

आजहिं लों दासी हुती, कछु चित नेक बिबेक ।
अब तो तू रानी भई, लाल करी अभिषेक ॥

६७

राधे हरि सों घात में, तनिक भई रस-रीस ।
पहले तो तिरसठ रहे, पीछे बने छतीस ॥

६८

कटि-केहरि कुच-घन दुरत, मृग लौं करि उर भीत।
मृग-दृग दपटत सिंह लौं, दई नई यह रीत ॥

६९

चकाचौंध-सी चारु चख, लागि जात इक साथ।
लखियतु दीपति दीपि मुख, करि पतंग पख हाथ ॥

७०

झलकि परत गोरे गरे, झीने पट ज्यों गात।
मुख लौं आवत जात मैं, बात सु जानी जात ॥

७१

छैल छली छतियान में, लाई कैसी लाइ।
ज्यों-ज्यों बुझवत नीर-दृग, त्यों-त्यों या अधिकाइ ॥

७२

पिय को सुनि कै आगमन, गई महा हरखाय।
दिन बूड़त लखि बाल-उर, मिलन-चाह अधिकाय ॥

७३

पिय आये सुनि साँझ लौं, हिय हुलसत हरषाति।
पावस-नदी-प्रवाह लौं, मिलन-चाह अधिकाति ॥

७४

दिन बूड़त सुनि आइहैं, 'प्यारे' आनँद-कंद।
हाथ जोरि बिनवति खरी, दरस दिखाओ चन्द ॥

७५

तिय बय पूनो निकट अति, चित बिदेस केहिं हेत।
सुक्ल पच्छ को साँवरो, निज पच्छ क्यों करि देत ॥

७६

तेरी गति देखत भटू, होत सु अस अनुमान।
मनि-मूरति रचि के रुचिर, दई दई जनु जान ॥

७७

कहा दिखावति आरसी, लगै न हाथ खरोट।
टूक-टूक दरपन भयो, ईछन तीछन चोट॥

७८

सखी दिखावति आरसी, करति तिया पट-ओट।
कोमल मुख सहि ना सकत, सौंहैं सम की चोट॥

७९

छुटे न दृग-सायक अजौं, उठी न भ्रू-तरवार।
अहा कहा अजगुत भयो, मन मन भयो सिकार॥

८०

खैंचत भृकुटी-धनु कहा, मारत कहँ दृग-बान।
'प्यारे' जानत हाय नहिं, द्वै सरीर इक प्रान॥

८१

खेलति चोर-मिहीचनी, चोर सु राधे होति।
छुई जाति छिपि ना सकति, निज मुख-चंद उदोति॥

८२

दुरति न राधे संग आलि, मानि हिये में संक।
जगर-मगर जगरत चहूँ, आनन-ओप मयंक॥

८३

पलटि—पलटि आवत अली, निपट निकट ह्वै जाय।
रही दुरी घनस्याम तन, दामिनि सी लपटाय॥

८४

सतर करति भौंहैं तऊ, नैन-नेह दरसात।
मुख मोरत मन मुरत नहिं, रिस में रस सरसात॥

चौपाई

८५

मनमोहनि सुन्दरि सुकुमारी। मम प्रानहु ते बढ़ि कै प्यारी॥

८६

मो हिय-गगन चन्द सुखमाकर । मो नैनन परकास उजागर ॥

८७

मो हिय मोद बढ़ावनहारी । दिल की कली खिलावनहारी ॥

८८

सुखमा सुमुखि सलोनी स्यामा । कामिनि भामिनि बामा भामा ॥

८९

लज्जावती परम रमनीया । कोमल अंग कान्ति कमनीया ॥

९०

रमनी-रतन रूपगुन-आगारि । सुभगा प्रमदा नवला नागरि ॥

९१

प्रानेस्वरि मम हृदय-निवासिनि । रूपवती रसरासि सुहासिनि ॥

९२

पावन प्रीति-रीति की पालिनि । लाजसील सुभ सोभा-सालिनि ॥

९३

रूप अनूप जगत के ऊपर । रहत टकटकी लागि लखे पर ॥

९४

प्रेयसि प्रिये प्रानधन प्यारी । जीवन को सर्वस्व हमारी ॥

९५

मो निधनी को धन तू ही है । सत्य कहत जीवन तू ही है ॥

९६

तोही को तन-मन ते चाहत । तोही को एक प्रिये सराहत ॥

९७

तोही पै एक आस लगाए । रहत सदा दुनिया बिसराए ॥

९८

तेरोइ एक प्रेम मदमातो । भूल्यो रहत हियो दिन रातो ॥

[राग-मलार]

९९

सखी चलु देखैं नन्दकुमार।
सुन्यौ आजु जसुदा-घर लीन्हों, आपुहि हरि अवतार॥
इनही सों दुख-दरद मिटेगो, इनही सों भव-भार।
एही हैं गोपिन मनरंजन, श्रीराधे-गर-हार॥
हम हूँ सफल जनम निज करि लें, लखि मोहन सुकुमार।
पिय 'प्यारे' पै सखी निछावर, ह्वै-ह्वै बारम्बार॥

१००

सखी ये कौतुक नयो लखात।
झूलत उदय हिंडोरे दोऊ, देखु हँसत मुसुकात॥
राधे बरबस हरिहिं चढ़ावति, हरि कत हा हा खात।
नाहीं-नाहीं कहते परि पग, मुरि-मुरि पछरा खात॥
भरति अंक राधे बरजोरी, स्याम मरूँ करि जात।
उतरत चढ़त लचति लोनी कटि, तिय उर मद उमदात।
डरत लजत पिय 'प्यारे' काहे, कछु नहिं जान्यौ जात॥

१०१

आजु सखि कौतुक देख अनूप।
कलित कलिन्दी-कूल कुंज-बन, राधे सँग ब्रजभूप॥
हिलिमिलि हँसत करत रस-बतियाँ, ठोढ़ी गहि-गहि दोय।
उर लावत भुज भरत नेह-बस, लपटत लाजहु खोय॥
स्यामा कहति स्याम पिय झूलौ, स्याम जात अनखाय।
रीझति रस खीझन पै प्यारी, ललकि लेति उर लाय॥
पुनि-पुनि बाँह पकरि तिय खैंचति, झझकि-झझकि पिय जात।
नाहीं कहि कर कर झकझोरत, 'प्यारे' कहा लजात॥

[राग-विहाग]

१०२

तुम मोहन ऐसे नहिं मनिहौ, मेरे जी के जुड़ावनहारे।
डगमग चाल चलत झुकि झूमत, आलस मद मतवारे॥
पीक लीक पलकन पर लाये, ओठ किये कजरारे।
सखी आज आरती उतारैं, भले बने पिय 'प्यारे'॥

१०३

बिनहिं मनाये छूट्यो मान॥
हेरत ही हरि को हिय हुलस्यो, भई आन की आन।
कीन्हें प्रगट और रस दृग द्वै, छई अधर मुसुकान॥
रह्यो न रोस लेस उर अन्तर, उतरी भौंह-कमान।
उमग्यो प्रेम लगी 'प्यारे' पर, बार-बार बलि जान॥

१०४

करौ जिन काहू सो कोउ नेह॥
या में सुख सपने हूँ नाहिन, सहत सदा दुख देह।
आवत छिनक नींद नहिं 'प्यारे', बरसत अँखियन मेह॥

१०५

रैन-दिन दोउ न एक समान॥
सदा मगन तन-मन सुधि भूले, दोउ दोउन के ध्यान॥
भोर भयो कब साँझ भई कब, नेको परत न जान।
बिलगत छिनक न 'प्यारे' प्यारी, जनु सरीर अरु प्रान॥

१०६

रैन-दिन दोउ न एक समान॥
उदय भये अथए रवि ससि कब, परत न नेकौ जान।
मगन प्रेम निरखत मुख चूमत, करत अधर-मधुपान॥
बिहँसि-बिहँसि बिलसत सुख लूटत, थकत न एकौ आन।
'प्यारे' दोऊ प्रेम-रस छाके, श्रीराधे घनस्याम॥

१०७

पिया-मुख देखत नींद हिरानी ॥

आलस अंग-अंग तजि भाजी, मदन-जोति सरसानी ।

पुलक्यौ गात स्वेद मुख छायो, भरि आयो दृग पानी ॥

कंचुकि-बन्द चटाचट चटके, अरु छतिया सियरानी ।

प्रेम-बिबस 'प्यारे'-छबि छाकी, धाइ हिये लपटानी ॥

१०८

सकी नहिं हिय में प्रीति सँभारि ।

उघरि पड़ी नहिं रुकी सु रोके हूँ, बौरिन मति अनुहारि ॥

दीनी लाज छाँड़ि सब जग की, गुरुजन को डर डारि ।

धाय प्रेम-बस 'प्यारे' के गर, लपटानी सुकुमारि ॥

१०९

[राग-भैरवी]

मैया तेरो कैसो हृदय कठोर ।

देखत सुत ज्वर-ग्रसित आपनो, अरु बैठी दृग मोर ॥

हाय-हाय यह करति कहा तू, लेति नहीं सुधि धाय ।

अति दुर्बल सुत को अपने हिय, क्यों नहिं लेति लगाय ॥

चूमि-चाटि मुख हेरि नेकु तो, पोंछि नयन-जल-धार ।

पुनि अपने हु दृग सोंचि प्रेम-जल, करति क्यों न ज्वर छार ॥

सुने कुपूत पूत बहुतेरे, पै नहिं सुनी कुमातु ।

दया छमा है सहज मातु-गुन, जगत-बिदित यह बातु ॥

अब तो दुख सहि जात हाय नहिं, भई निबल अति देह ।

'प्यारे' को दुख दूरि करो अब, अपने सहज सनेह ॥

११०

अरी सुन कोमल कमल-कली ।

दृग उनमीलु प्रभात भयो लखु, अब नहिं नींद भली ॥

देखु-देखु सन्मुख ही तेरे, कोटिन कर पसराये।
तव प्रणयार्त्त अतिथि तेरो रबि, लखत खरो टक लाये॥
सुनि प्रभात-गाथा मम भंजित निद्रा घोरावेश।
उत्थित जगत निरालस, लहि नव जीवन नूतन वेश॥
तुम न जगी नहिं जगिहौं का मैं, तुम्हरोइ कबि हूँ प्रान।
सुन मेरी कविता नीरव रव, भव नवजीवन गान॥
जलद प्रभात प्रभात समीरन, प्रभात बिहंग निचय।
सिसिर प्रभात प्रभात जलधि-जल, जैहैं मिलि समुदय॥
नित प्रति ही तो आऊँ यौं ही, बिहँसूँ यौं ही गाऊँ।
नित प्रति ही तोहिं सरसी सुन्दरि, प्रेम-सँगीत सुनाऊँ॥
बहु दिवसन ते आस लगी है, अब तो साध पुरावो।
बीति गई रजनी उठि देखो, अबौ निरखि मुसकावो॥
मज्जित करि मुख सिसिर निकर तें, अरुन बसन तन धारौ।
निर्म्मल सरसी-दर्पन में मुख, सुन्दर अतुल निहारौ॥
'प्यारे' झुकि उझकन में आधोइ, मुख छबि अपनो लखि कै।
बिहँसि परो वो सहसा आपुहि, ये अनुपम रस चखि कै॥

१११

बसो इन नैनन में वह रूप।

सुन्दर सुभग सलोनो स्यामल, सोभा भई अनूप॥
मनसिज-ऐन नैन कजरारे, अनियारे रतनार।
अलसौंहैं झपकौंहैं सोहैं, राधे-प्रेम खुमार॥
लटकि-लटकि बल खाति कपोलन, लटुरी लट दोउ ओर।
प्यारी चुम्बन चोप सरस है, भूमति रस सरबोर॥
अधर मधुर मुसुकानि अलंकृत, अंकित अंजन-रेख।
संकित नेह दुराव सम्पुटित, रद-छद चिन्ह बिसेख॥

सुंडादंड कामतरु-साखा, भूषन-भूषित सोहैं ।
ब्रजरानी-गल-हार होन हित, सदा रहत ललचौहैं ॥
हंसक सह हंसन मद-गंजन, मन-रंजन मन पाय ।
दुख-भंजन मंजुल पंकज पद, 'प्यारे' बलि-बलि जाय ॥

[राग-देश]

११२

लगी सखि काहू सों जिन नैन ।
जेहि लागत सोई जानै कोउ दूजो जानत है न ॥
भूलत सब अपबाद लाज जग, हूलत हिय में मैन ।
'प्यारे' प्यारे रटत फिरत चहुँ, दूजो कहत न बैन ॥

११३

लगन मोरी वासों लागी जाय ॥
जो निर्मोहिन-सीस-मुकुट-मनि, जो कपटिन को राय ।
पाहन सो हिय कठिन जौन को, द्रवत न कोटि उपाय ॥
छल को रूप, दया नहिं जाके, दुख सुनि जो हरषाय ।
अचरज यह बिचरत सोइ जग में 'प्यारे' लाल कहाय ॥

११४

मान करौं तब प्रान बचै ।
भृकुटी बङ्क किये बिन मोहन, अपनोइ रङ्ग रचै ॥
पाय परेहू छोड़त नाहिन, चाहे कमर लचै ।
कर जोरे हँसि लेत लाय उर, 'प्यारे' नैन नचै ॥

११५

लाल चढ़ावो न मोहिं हिंडोरे ॥
लखि औरन हो को सु झूलिबो, गात कँपै लतिका जिमि पौन झकोरे ।
थहरै जुग जानु औ सीस घुमै, मुख बोल कढ़ै नहिं कोटि निहोरे ॥

११६

आजु यह झूलनि देखु नई ।।

डोर छोर पटुरी पै बैठी, राधे निडर भई ।

दीखत मुख मंजुल 'प्यारे' को, काहे भीतमई ।।

११७

निरखत नैन नीर भरि आयो ।।

दधि-आछत-युत भाल-तिलक लखि, मन ते धीर नसायो ।

बाढ़ी दुसह बेदना 'प्यारे', मुख मंजुल मुरझायो ।।

[राग-कलांगड़ा]

११८

नैन ये स्याम-रंग में राँगे ।

लहे अमित सुख जा छवि लहि कै, तासो कहा बिरागे ।।

ग्यान-ध्यान जप-जोग नेम-ब्रत, एकौ कछू न करिहौं ।

केवल वही कृष्ण की मूरति, अपने हिय मैं धरिहौं ।।

नभ छायो घनस्याम घने लखि, मोरन जिमि उतसाहैं ।

सुक्ल-पच्छ-रिपु घोर चोर जिमि, कृष्ण-पच्छ ही चाहैं ।।

११९

दोऊ मद पीवत मोद-भरे ।

बैठे निपट निकट सटि हिय में, दोउ भुज डारि गरे ।।

हा हा खात इतै सौंहन पिय, ठोढ़ी गहत अरे ।

मनवत पाँय परत कर जोरत, प्यालो पानि धरे ।।

नहीं-नहीं प्यारी झझकारति, झझकति पट फहरे ।

रीझत रस खीझन पर 'प्यारे', तन की सुधि बिसरे ।।

[राग-पिल्लू]

१२०

मेरे भौंरे को किन भरमाया रे लुभाया ।

दिल की कली जाति मुरझानी, काँटा कौन चुभाया रे ।।

सूख्यो बदन हाय पियरान्यो, किन यह रोग लगाया रे ।
बिरहा-कीट करेजहिं काढ़त, किन 'प्यारा' बिछुड़ाया रे ॥

१२१

आकर्ण विस्फारित नयन, सम्पन्न-श्री वदनेन्दिवर ।
दाड़िम-सुदुति-युत अमिय-मय, ऋजुहास्य-भूषित मृदु अधर ॥
आगुल्फ लम्बित कच कलित, मृदु आन्दोलित मत्तवत् ।
आकार अर्द्ध-मृगाङ्क सम, मृगमद-तिलक अलकोल्लसत ॥
रक्तल कपोल अमोल युग बिम्बित-सुश्रुति-ताटंक-द्युति ।
बंकिम बिलोकनि मन-हरनि निदरनि सुमनसिज-सुमन-सर ॥

१२२

[श्यामकल्याण]

बिहरत दोऊ जमुना-तीर ।
बिहँसत अंक भरत मुख चूमत, पेन्हि सुरँग रँग चीर ॥
निपट कूल सो सटे सलोने, तरु तमाल बहु छाये ।
छोटे बड़े झुके सीधे घन, फूले फले सुहाये ॥
लोनी लतिका लदी फूल सो, झुकी परति लहि भार ।
हरी-भरी डलही दुलही सी, देखत मोद अपार ॥
सुन्दर तरु सो लगि लपटानी, कहा कहौं जिमि सोहै ।
अंक लगी सुखदा प्रमदा सी, रसिकन को मन मोहै ॥
कोमल अमल कमल-दल बिकसित, हिलत तरंग-हिलोर ।
जोबन-मद उमदी जुवती के, जैसे चपल चितचोर ॥
तिनपै बैठि बिहंगम बहु बिधि, उड़ि-उड़ि करत कलोल ।
निरखि-निरखि सोभा बौरे से, बोलत मीठे बोल ॥
सीतल करत आय लगि हीतल, कुसुम सौरभित पौन ।
तनिक जोर सो छिनक मंद छिन, निपट अनोखो गौन ॥

निरखत सोभा रहे भुलाने, कोमल कर गर मेलि ।
'प्यारे' फिरे प्रिया सँग लीने, कै गोधूली-केलि ॥

१२३

[राग-सोहनी]

चुकी नहिं अजहूँ प्रेम-कहानी ॥
बीती निसा निसापति अथये, रवि-किरनैं छहरानी ।
आय द्वार सखियन सँग लीने, बिहँसति खरी जिठानी ॥
झुकि-झुकि ननद दरारन झाँकति, थपकति पट देवरानी ।
प्रेम-मगन मीठी बतियन में, उन 'प्यारे' नहिं जानी ॥

[राग-सेंदूरा]

१२४

तरसों चरन-कमल कब परसों ।
तड़पत हौं जलहीन मीन ज्यों मुख देखन को अरसों ॥
मों सों कीन्ह प्रतिज्ञा मिथ्या धरि कर कर पर कर सों ।
बीती अवधि स्याम नहिं आये परसों को भयो बरसों ॥
कौन घड़ी ह्वैहैं वे सजनी भाय लगूँ पिय-गर सों ।
हाय प्रान-'प्यारे' कब ऐहैं तजि कुबरी के घर सों ॥

[राग-परज]

१२५

पियारी लाजन जाति गड़ी ।
पिय सौंहन हूँ करति न सौंहैं, अँखियाँ सलज बड़ी ॥
ठोड़ी गहि-गहि मुख तोलत पिय, कहत आँख तो खोलो ।
ऐसिहुँ लाज निगोड़ी कैसी, प्रिये कछु मुख बोलो ॥
सहज लजीली लजति और हूँ, ज्यों-ज्यों पिय बतराय ।
हरखि रीझि मुख चूमि 'पियारे', लीन्हीं कंठ लगाय ॥

[होली—राग-पिल्लू]

१२६

कौन लगाई गुलाल लाल तेरे गालन ।
अधर अधर पर कजरा कैसो, क्यों लपटत पग चालन ॥
सोहत तुम्हरो ही-लल कैसो, बिना गुनन के मालन ।
खेलत फाग नग्रन क्यों बोलो, मेरे 'प्यारे' लालन ॥

[होली—गत की]

१२७

मोसे ना खेलो जी ना खेलो होरी, चूँदरि नसैहैं मोसे ना खेलो ।
मेरे आँखिन परिगो गुलाल, लाल तुम मानत नाहीं ॥
कंचुकि के बँद तोरि के मोहन, दई मरोर मेरी बाँहीं ।
फोर दई मटुकी मेरी 'प्यारे' ऊधम करत बृज माहीं ॥

डफ की होली

१२८

होरिहारे बिगरैल दईमारे ।
गोल बाँध गलियन में डोलत, भरि-भरि कर पिचुकी धारे ॥
गारी गावत अबिर उड़ावत, झुकि-झुकि चूमत मतवारे ।
धाय-धाय जुबतिन धरि मीड़त, गाल गुलाल पिया 'प्यारे' ॥

१२९

हमारे गरे लगि जा पिय प्यारी ॥
छतिया दहति मैन के दाहन, नेकु दया उर ला री ।
दूरहि ते ललचाय रही क्यों, पिय 'प्यारे' बलिहारी ॥

१३०

गोरी छाती छोटी छिपाइ रही ॥
अंचल सो मुख ढाँपि-ढाँपि कै, मुरि-मुरि कै मुसुकाय रही ।
नीचे नैन हेरि 'प्यारे' दिषि, मन ही मन सकुचाय रही ॥

१३१

गोरी तेरे नैनन की बलिहारी ॥

रंचक तिरछे चितवत जाने, दुनिया कतल करि डारी ।

भूलि गई जेहि को लखि सेखी, पिय 'प्यारे' की सारी ॥

१३२

अब ना हमैं हैरान करो ।

बहुत भई दो देह सम्हारन, नेसुक मंद परो ॥

चूमत-चूमत दुखे हाय ये, अधर न अधर धरो ।

मसकी चहति कंचुकी 'प्यारे', अब जनि अंक भरो ॥

१३३

नहिं आये कहाँ आज छैल छाये ॥

राग-रंग मन लगत नेकु नहिं, बलमु कहाँ सखि बिलमाये ।

मन अकुलात बुझात हेत नाहिं, क्यों 'प्यारे' मोहिं बिसराये ॥

१३४

भुज भरौ जनि यार तनी तरकी ।

लचक्यो लंक हचक सो हिय गो, मोतियन माल लरी लरकी ॥

चोटी खुली बार मुख बिथुरे, सर पर की सारी सरकी ।

पाँव परौं 'प्यारे' मोहिं छोड़ो, कर की हाय कलाई करकी ॥

होरी

१३५

चसके छैल रँग रस के, अरी कैसे लाज रहै ब्रज बस के ।

संग लिये भरि रंग कमोरिन, पिचकी पानि अबिर कटि झोरिन ॥

करत चहूँ दिसि ऊधम हँस के, जुव-जन एक बयस के ।

देखि जुवति-जन गारी गावत, अबिर उड़ावत धूम मचावत ॥

मलत गुलाल गाल बरबस के, बिगरि गये अब अस के ।

कोऊ जो छल-बल करि भागत, छाया सों येहू सँग लागत ॥

धरि-धरि धाय घरहुँ में धँसि के, परसत उरज हरस के।
पिय 'प्यारे' अति ही उतपाती, चूमत गाल लगावत छाती ॥
रस लूटत सरबस बेबस कै, बाँधि भुजन में कस के।

१३६

छैल तोरे होरिहारे की छबि मेरे जी को भावै।
स्याम बदन गुलाल-बिभूषित, मन अनुराग बढ़ावै ॥
सराबोर अँग-अंग रंग में, सखन संग जब आवै।
भींजि जात दरसन ही ते मन, तन पुलकित ह्वै जावै ॥
जब तू छैल गोपिका-गन पै, पिचकी ताकि चलावै।
बाढ़त रंग जंग में मेरे, कुल की कानि बहावै ॥

१३७

जियरा ना मानै रे मोहे, लो अब गरवा लगाय।
कब लौं यों हँसि-हँसि कै रहिहौ, दूरहि ते ललचाय ॥
आओ उर लगि दो अधरन रस, भुज भरि-भरि मुसुकाय।
फागुन में तो आस पुरावो, पिय 'प्यारे' बलि जाय ॥

१३८

फेरि हरि लावो गाल गुलाल ॥
वैसहिं हँसत भुजन गाढ़े गहि, करत प्रेम के ख्याल।
वैसहिं चंचल चखन नचावत, चूमो दोऊ गाल ॥
पुलकि पसीजि हाय फिर वैसहिं, बाँधि भुजान मृनाल।
जी की आस पुरावो 'प्यारे', खेलो होरी लाल ॥

१३९

होरी को दिन आयो सखी अब तजि दे मान।
नहिं यह दोस रूठिबे लायक, कितनो करत गुमान।
धाय गरे लगि जा 'प्यारे' के, मेरो सिखावन मान ॥

१४०

तुम मलत अबीर गुलाल गाल, झुकि झूमि चूमि मुख लेत लाल।
किमि खेलै फाग कोउ तुमसों बाल, तुम निपट नटखटे नन्दलाल।
हौं फँसिहौं नाहिं छलछन्द-जाल, जानति 'प्यारे' हम तुम्हरी चाल॥

१४१

लगा गो मेरे गाल गुलाल॥
वह छोरो कारो जसुमति को, जाको नाम गोपाल।
आवत ही रँग मौंह भिजोयो, कियो चूनरी लाल॥
भुज भरि-भरि अँगिया मसकायो, तोर्‌यो मुक्तामाल।
मुख चूम्यो कुच परस्यो 'प्यारे', बाँधि भुजान-मृनाल॥

कजरी

१४२

बँहियाँ छाँड़ दे सँवलिया मोहे भावे ना हँसी।
ब्रज-बनिता मोहे जानि समुझ जिन औरन-सी बिनसी।
अब झकझोर मोहिं जिन 'प्यारे' सारी जात खसी॥

१४३

हमैं तरसावै रे बालमुआँ।
दूरहिं दूर फिरे बनि-ठनि के, निकट नहिं आवै रे बालमुआँ॥
अरज-गरज मोरी एकौ न मानै, दया नहिं लावै रे बालमुआँ।
'प्यारे' कबौ अंक नहिं लागै, सदा ललचावै रे बालमुआँ॥

१४४

हमैं गर लावै रे साँवलिया।
बरबस भुज भरि-भरि मुख चूमै, उरज मसकावै रे साँवलिया॥
उर हुचकत लचकत करिहैयाँ, निरखि सुख पावै रे साँवलिया।
जो रिसि कै चितवौं तो 'प्यारे', बिहँसि बहलावै रे साँवलिया॥

१४५

मेरे चित के हैं चोर बृजराज ललना॥
हैं जे सखियन के सिरताज ललना ॥
अब काहू सों नहीं है मोहिं काज ललना ।
मेरे 'प्यारे' ही हैं सरबस आज ललना ॥

१४६

मेरी वासों नेहिया लागि गई हाय ॥
जो निरमोही-गन को राजा, जो छलियन को राय ।
प्यार करत नहिं, प्रीत करत नहिं, जो 'प्यारे' कहलाय ॥

१४७

अँगिया पेन्है रे कुँजरिनियाँ, खोरिया फटि-फटि जाय ।
टाँका देत-देत कर हारे, रंचक नहिं ठहराय ॥
छोटी अँगिया उरज ऊँचो हैं, अँटैं न कोटि उपाय ।
करि-करि जतन 'पियारे' हारी, रही बाल मुसुकाय ॥

[भोजपुरी भाषा की कजरी]

१४८

तोहरा छतिया पै केथी के है छाप ललना ।
कह काहे भइल्ह अब चुपचाप ललना ॥
तोहरा कहला के किछु नाहीं थाप ललना ।
रात भइल पिया 'प्यारे' से मिलाप ललना ॥

१४९

इहे मोरे मनवाँ चोराय लेलन दैया रे ॥
गौवा चरावत बंसी बजावत, मोहे दिसि हेरि मुसुकाय लेलन दैया रे ।
अब 'प्यारे' बिन चैन कहाँ मोहिं, तन-मन सबहिं लुभाय लेलन दैया रे ॥

१५०

उहे पतरी कमरियावाली मनवाँ लिये जाय ॥
तिरछी चितवन कै कै मृदु मुसुकाय ।

भौंहैं चढ़ाय मो पै जादू किये जाय ॥
चाल मस्तानी चले लंक लचकाय।
हाय हमरे करेजवा में दाग दिये जाय ॥

[कजली-झूलन]

१५१

तेरे संग हिंडोले लाल को झूले ॥
जब झोंकन में जात दोऊ झुकि झूमि चूमि मुख तू ले।
जानि कला तेरी पिय 'प्यारे', कौन बाल अब भूले ॥

[कजली—पदयुक्त]

१५२

झरोखे गाल पै हथेली दिये कौन है अरी।
भूली माला के गूँथन, हार गोद में गिरी ॥
वहि पै हरि न जाने काह कही।
आधी सोई आधी बैठी जाते सोचि रही ॥
हँसी अधर के कोने मुख आधो छिपो।
देखै केलि-कुंज-वन दृग आधो झिपो ॥
जैसे सपन दूर को दृग में आय छयो।
गाढ़ी नींद स्वभाव हाय हिय जागि गयो ॥
बड़ी आँखों ही के सौंह घटा अति छाय रही।
कुहकुहाति कोइलिया चढ़ी सु जाय रही ॥
नव कोमल कुसुमन की नई सुमंजु कली।
हरी भूमि पर परी हाय अब जाति दली ॥
आलस मधुर मधुर वा भाव।
मधुर अधर मंद हँसी को बनाव ॥
स्वप्न की दसा सी दसा आँखिन में छाय।
'प्यारे' हिय माहिं उठै बाँसुरी बजाय ॥

[कजली—दोहा-युक्त]

१५३

नहिं आये रे सँवलिया एरी अरुझे कौने बात ॥
उमड़ि-घुमड़ि कारी घटा, छाय रही चहुँ ओर ।
छिन-छिन चमके बीजुरी, बढ़त पवन को जोर ॥
हियरा बाढ़े रे अँदेसवा गोरा जियरा अकुलात ॥
बार-बार गरजे जलद, अवनि अकास कँपात ।
होत गाढ़-तर तोम-तम, अपनो कर न लखात ॥
धड़-धड़ धड़के रे करेजवा धीरज नाहीं नेकु धरात ॥
कहि 'प्यारे' कुंजन गये, ऐहौं आज सबेर ।
ताही बदले में दई, भई अबेर सबेर ॥
बरसै लागी री बदरिया, बीति गई अब आधी रात ॥

दादरा

१५४

हमारी प्यारी आव, हिये लगि जाव, हा-हा अब न लजाव ।
जोबन-धन-मन-रतन सु दै कै, काहे करति दुराव ॥
अन्तर सो अन्तर को जब मिलि, एकहि भयो बनाव ।
तब क्यों हाय लजति ऊपर तें, 'प्यारे' गर लपटाव ॥

ठुमरी

१५५

नैन का मारा कैसे चैन पावै हाय ।
घाव न दीसै पै उर छिन-छिन पीर होय ।
जो ना कहो ना सही जाय ॥

१५६

जा छैल अब ना पहँ, जा सों लागी है नेहिया नई तेरी ।
रजनी बितई जहँ सारी तू, जा रे वहीं जा वहीं जा रे ॥

१५७

पिय प्यारी बनवारी व्याकुल तुव विनु ।
कूल-कालिन्दी केलि-कुंज-बन में मग जोहै ।
तू चलु उठु करु नाहिं देर री ॥

१५८

खुल-खुल छूट-छूट लट दोऊ गाल डोले कारी ॥
पी-उर लागि-लागि मुख चूमि-चूमि झूमै प्यारी ।
ये छवि हेरि-हेरि रस पागि-पागि के जा पिय 'प्यारे' वारी ॥

खेमटा

१५९

कहँ गयो हरि हमरो हिय हरिकै ।
रूप ठगो री लाय फाग में, चेटक सो कछु करिकै ॥
गाल गुलाल लगाय चूमि मुख, गाढ़े भुज जुग भरिकै ।
पिय 'प्यारे' को आनि मिलाओ, बिनवौं पाँयन परिकै ॥

[खेमटा—पूर्वी]

१६०

मनमोहना पैयाँ परूँ, मोहें तिरछी नजरिया न हेर ।
तेरे देखत मोहिं जग देखतु हैं, तेरे नजरिया के फेर ।
जित देखौं उत कोउ नहिं अपनो, 'प्यारे' सौति के चेर ॥

[बँगला खेमटा—भैरवी]

१६१

आमार कोमलकमल दाम प्रतिनिश्वासे रि दोए गाते होइचे अविराम ।
दग्धप्राय विरहानले होय न शिक्तोनयन जले केलन 'प्यारे' लग्न गले अई की करिलाम ॥

[राग यथारुचि]

१६२

न लाये काहू सों कोउ नेह ॥
'प्यारे' वा के पास न जाय, वासों रहै बचाय रे बचाय ॥

१६३

होय पूतरी आँखिन मेरो निबसो 'प्यारे' ॥
आय गर में छबि छावो, हीर-हरा है के छतिया में लागो।
होय कंचुकी रहो सदा ही, प्रान होय हिय माँह हमारे ॥

ग़ज़ल

१६४

ज़ुल्फ़ शबगूँ ने फँसाया दिल को, क्या बुरा रोग लगाया दिल को।
किसी करवट किसी पहलू किसी दम, फ़िक्र में चैन न आया दिल को ॥
मान लेना था पै न माना साहब, मैंने क्या-क्या न मनाया दिल को।
या इलाही कोई आया न गया, कौन था वह जो चुराया दिल को ॥
दीद-दानिश्त इन्हीं आँखों ने, क़ैदिये ज़ुल्फ़ बनाया दिल को।
ले गईं शोख़ निगाहें ज़ालिम, मैंने हरचन्द बचाया दिल को ॥
छीनकर पाँवों से तोड़ा मसला, आपने खेल बनाया दिल को।
कर दिया तेरी निगह ने ज़ख़्मी, न बचा लाख बचाया दिल को ॥
रात-दिन चैन नहीं ऐ 'प्यारे', किस सितमगर ने दुखाया दिल को ॥

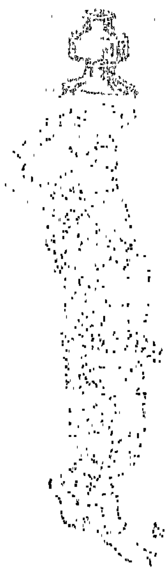
१६५

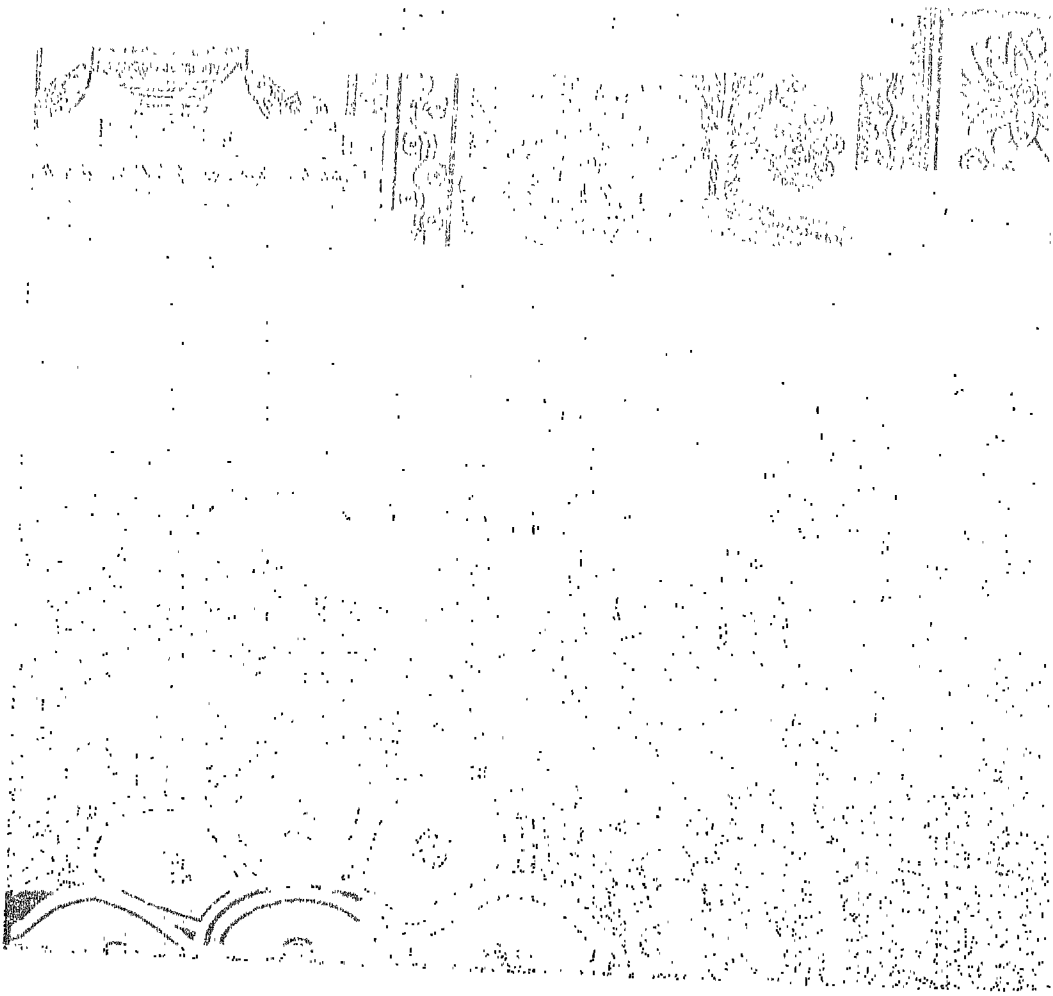
मुँह प' इन बातों का लाना कैसा।
गालियों का भला गाना कैसा ॥
मुझको भाती नहीं ऐसी होली।
हाँ हाँ सीने से लगाना कैसा ॥
भर के मुझको भी कोई दो पिचकी।
आप ही आप चलाना कैसा ॥
आप ही गाल गुलाबी हैं मेरे।
फिर गुलाल अब य' लगाना कैसा ॥
चार आँखें करो घूँघट खोलो।
आज होली में लजाना कैसा ॥

बोसा देने में य' हुज्जत कैसी।
दिल के लेने में बहाना कैसा ॥
हूँ मेरे 'प्यारे' तुझी पर शैदा।
ग़ैर से दिल का लगाना कैसा ॥

१६६

हमें तुम तज के जाते हो, कहो कैसे रहूँ 'प्यारे'।
दुसह दुख सह नहीं जाता, कहो कैसे सहूँ प्यारे ॥
अतन तन में किया है आयतन तू आयतन त्यागत।
नसेगा हाय तन, धीरज कहो कैसे गहूँ प्यारे ॥
विरह-झोंके का टेढ़ा घाव, घातक-प्रान होता है।
हूँ मैं तेरे बिना कातर, कहो कैसे रहूँ प्यारे ॥
तेरे बिछुड़े जो होगी गति, मेरी सुन लीजियो पीछे।
तेरे प्रस्थान के समये, कहो कैसे कहूँ प्यारे ॥
तू है घनस्याम मैं पपिहा, मिलन तेरा है स्वाती-जल।
तू जीवन-प्रान-धन मेरा, कहो कैसे लहूँ 'प्यारे' ॥





संगीत-लेखन-प्रणाली

[स्वर-लिपि-चिह्न]

शुद्ध स्वर—सा रे ग म प ध नी

तीव्र (Sharp) स्वर—म॑—जिसके ऊपर खड़ी रेखा हो, वह तीव्र मध्यम है।

कोमल (Flat) स्वर—रे॒ ग॒ ध॒ नी॒—जिसके नीचे पड़ी रेखा हो, वह कोमल स्वर है।

सप्तक के चिह्न

मन्द्र या पहला सप्तक—सा॒ रे॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नी॒—जिसके नीचे बिन्दु हो, वह मन्द्र सप्तक का स्वर है।

मध्य या बिचला सप्तक—सा रे ग म प ध नी—जिसमें कोई निशान न हो, वह मध्य सप्तक का स्वर है।

तार या टीप का सप्तक—सां रें गं मं पं धं नीं—जिसके ऊपर बिन्दु हो, वह तार सप्तक का स्वर है।

स्पर्श के चिह्न (Touch)

स्पर्श (Touch)—गाने-बजाने में किसी स्वर को पूरा न गा-बजाकर उसपर आवाज़ या उँगली को सिर्फ छू देने से स्पर्श होता है। लिपि में स्पर्श जताने के लिए मुख्यतः उस स्वर के नीचे 'हल्' का चिह्न (्) देते हैं। यथा—स् म् प् गस् धस् मप्

सम, भरी, और ख़ाली ताल के चिह्न

सम ················ ×

भरी ताल ··········· १, २, ३, ४

ख़ाली ·············· ०

लय की लिपि

पूर्ण मात्रा या ठहराव--- । स । स । स ।

अर्द्ध मात्रा या ठहराव--- । स स । स स । स स ।

एक-तिहाई मात्रा या तिगुन--- । स स स । स स स । स स स ।

एक-चौथाई मात्रा या चौगुन--- । स स स स । स स स स । स स स स ।

पूरा बोल या ठहराव इत्यादि

स	स	स
स	अ	अ
स	ऽ	ऽ

इसका अर्थ यह है कि 'स' स्वर का तीन बार, बराबर-बराबर मात्रा का, उच्चारण किया जायगा।

ऐसा लिखा रहने से 'स' एक बार कहकर उसके बाद दो बार 'अ, अ' पृथक्-पृथक्---आवाज तोड़-तोड़कर---बराबर की मात्रा में कहा जायगा।

ऐसा लिखा रहने से 'स' स्वर का उच्चारण करके आवाज को उतनी देर तक ठहराये रखना होता है, जितने में 'स अ अ' का उच्चारण हो; किन्तु आवाज न टूटे; और यदि हारमोनियम में निकाला जाय तो उँगली उसी पटरी पर रखे रहें, उठा-उठाकर तीन बार न रखें। इसका अर्थ यह है कि एक ही 'स' तीन मात्रा के ठहराव (duration) का है।

मात्रा

जितने लय हैं, सब मात्राओं द्वारा नियमित हैं। पुराने ग्रन्थों में लिखा है कि जितने समय में एक स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी एक बार चले, उतना ही एक मात्रा का ठहराव लेना चाहिये। इसका परिमाण घड़ी के एक सेकेंड के बराबर है। इन गीतों में एक-एक खाने में एक-एक मात्रा है। जिस खाने में दो अक्षर एक ही साथ हैं, वहाँ दोनों का उच्चारण एक ही मात्रा के समय में होना चाहिये। और, जहाँ एक अक्षर के बाद उसी खाने में छोटी पड़ी रेखा है, वहाँ उस अक्षर का परिमाण आधा मात्रा का है और उसके बाद आधा मात्रा के बराबर ठहरना होता है।

तिताले का बोल—मात्रा व सरगम साथ

तिताला २

ताल—	सम १ ×				पिछला ताल २				ख़ाली ताल ०				पहला ताल ३			
सरिगम	सा	रे	ग	म	प	ध	नी	सां	सां	नी	ध	प	म	ग	रे	सा
ठेका—	ना	धी	धी	ना	ना	धी	धी	ना	ता	ती	ती	ना	ना	धी	धी	ना
मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

आकार-सहित ठहराव

सा	आ	रे	ए	ग	अ	म	अ	प	अ	ध	अ	नी	ई	सा	आ

ठहराव

स	ऽ	रे	ऽ	ग	ऽ	म	ऽ	प	ऽ	ध	ऽ	नी	ऽ		ऽ

विशेष—सितार के गीत में पहले गत तब जोड़ होता है। गत के स्वर '२[......]२' ऐसा करके बाँधे गये हैं। इसका अर्थ यह है कि गत को कम-से-कम दो बार गाकर तब जोड़ गाना चाहिये।

राग सिन्ध—तिताला

मात्रा १६

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-गीत

गीत

नैन का मारा कैसे वे चैन पावें ।
घाव ना दीसै पै उर छिन-छिन पीर है
जो ना सह्यो ना कह्यो जा·········

गत	१ ✕				२				०				३			
१										सा डा न	ऽ आ एन	सा डा का	ग डा मा	म ड़ा रा	प डा कै	म ड़ा से
२	प डा वे	ऽ आ ए	ऽ आ ए	ग डा च	ऽ आ ए	म डा न	प ड़ा पा	म आ आ	ग डा वें							
जोड़	१ ✕				२				०				३			
										ग डा न	रे आ एन	ग डा का	ग डा मा	म ड़ा रा	प डा कै	म ड़ा से
	प डा वे ना	ऽ आ ए स	ऽ आ ए हो	ग डा घा ना	ऽ आ व आँ	म डा ना क	नी ड़ा दी हो	ध डा सै यो	ध ड़ा पै जा	नीनी दिदि उर	धध दिदि छिन	सांसां दिदि छिन	नी डा पी	ध आ र	ध डा है	प ड़ा जो

राग सैंदूरा-तिताला

मात्रा १६

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-गीत

गीत

जा छैल अब वा पहँ, जासों लगी है नेहिया नई तेरी

रजनी बितई जहँ सारी तू, जा रे वहीं जा वहीं जा रे

गत	१ ×				२				०				३				
२ {	सां	-रें	सांनी	धनी	ध	मम	प	ध	नी	ध	म	पप	म	गरे	सानी	सा	} २
	डा	-ड	डाड़ा	डिडि	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	ड़ा	ड़ा	डिडि	डा	डिड़ि	डाडा	ड़ा	
	जा	-छै	पल	अब	वा	पहँ	जा	सों	ला	गी	है	नेहि	या	नई	तेए	री	
जोड़	१ ×				२				०				३				
	सां	-रें	सांनी	धनी	ध	मम	प	ध	नी	ध	म	पप	म	गरे	सानी	सा	
	डा	-ड	डाडा	डिडि	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	ड़ा	ड़ा	डिड़ि	डा	डिड़ि	डाडा	ड़ा	
	जा	-छै	पल	अब	वा	पहँ	जा	सों	ला	गी	है	नेहि	या	नई	तेए	री	
	ऽ	गग	म	गरे	सा	मम	प	ध	नी	ध	म	पप	म	गरे	सानी	सा	
	ऽ	डिड़ि	डा	डिड़ि	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	ड़ा	ड़ा	ड़ा	डिड़ि	डा	डिड़ि	डाडा	ड़ा	
	ऽ	रज	नी	बित	ई	जहँ	सा	री	तू	जा	रे	वहीं	जा	वहीं	जाआ	रे	

राग झँझौटी—तिताला

मात्रा १६

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-गीत

गीत

पिय प्यारी बनवारी ।
व्याकुल तुव बिन कूल-कालिन्दी-
केलि-कुञ्ज-बन में मग जोहे ।
तू चलु उठु, करु नाहिं देर री ॥

गत	१ X				२				०				३				
	ऽ	रेरे	सा	रे	ऽ	गग	रे	ग	ग	मम	पप	मम	ग	ग्-	गग्	सा	
२ {		डिड़ि	डा	ड़ा	आ	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	डिड़ि	डिड़ि	डिड़ि	डा	ड़्-	डाड़्	डा	} २
		पिय	प्या	री	ई	बन	वा	री	व्या	कुल	तुअ	बिन	कू	ल्-	कालि	दी	
जोड़	१ X				२				०				३				
	ऽ	रेरे	सा	रे	ऽ	गग	रे	ग	ग	मम	पप	मम	ग	ग्-	गग्	सा	
	ऽ	डिड़ि	डा	ड़ा	आ	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	डिड़ि	डिड़ि	डिड़ि	डा	ड़्-	डाड़्	डा	
		पिय	प्या	री	ई	बन	वा	री	व्या	कुल	तुअ	बिन	कू	ल्-	कालि	दी	
	ग	ग्-	सासा	गग	ग	मम	ग	म	गग	रेरे	सासा	सासा	सा	स्-	नीनी	ध़	
	डा	ड़्-	डाड़	डिड़ि	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डाआ	डिड़ि	डिड़ि	डिड़ि	डा	ड़्-	डाड़्	डा	
	के	लि्-	कुञ्ज	बन	में	मग	जो	हे	तुअ	चलु	उठु	करु	ना	हिं-	देर	री	

राग बिहारी—तिताला

मात्रा १६

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-गीत

गीत

खुल-खुल छूट-छूट लट दोउ गाल डोले कारी ।
पी-उर लागि-लागि मुख चूमि-चूमि झूमे प्यारी ।
ये छबि हेरि-हेरि रस पागि-पागि के
जा पिय 'प्यारे' वारी ॥

गत	१ ×				२				०				३			
२ {							सस	सस	रे	रे-	पप	मम	मम	ग	रे-	ग
							डिड़ि	डिड़ि	डा	ड़्-	डाड़्	डिड़ि	डाड़्	डा	ड़्-	डा
							खुल	खुल	छू	ट-	छूट	लट	दोउ	गा	-ल	डो
	सा	रे	सा	ऽ	ऽ	ऽ										} २
	डा	ड़ा	डा	ऽ	ऽ	ऽ										
	ले	का	री	ई	ई	ई										
जोड़	१ ×				२				०				३			
							सा	ससा	रे	-रे	मम	मम	प	प-	धध	ध
							डा	डिड़ि	डा	ड़्-	डाड़्	डिड़ि	डा	ड़्	डाड़्	डा
							पी	उर	ला	गि-	लागि	मुख	चू	मि	चूमि	झू
	नी	ध	प	ऽ	ऽ	ऽ	म	मम	प	प-	नीनी	नीनी	सां	-सां	सांसां	सां
	डा	ड़ा	डा	ऽ	ऽ	ऽ	डा	डाडा	डा	ड़्-	डाड़्	डिड़ि	डा	-ड़्	डाड़्	डा
	मे	प्या	री	ऽ	ऽ	ऽ	ये	छबि	हे	रि-	हेरि	रस	पा	गि-	पागि	के
	प	धध	प	म	ग	रे										
	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	ड़ा										
	जा	पिय	प्या	रे	वा	री										

राग भैरवी—ताल कँहरवा

मात्रा ८

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-राग

गीत

मोसे ना खेलो जी होरी ।
चुँदरी नसैहैं 'प्यारे' ना खेलो०···

गत—	१ ×				२				
	ग॒	म	प	प	प	प	प	प	
	डा	ड़ा	डा	ड़ा	डा	ड़ा	डा	ड़ा	
	मो	से	ना	खे	लो	जी	ना	खे	
२	ध॒	नी॒	ध॒	ऽ	ध॒	ऽ	प	ऽ	२
	डा	ड़ा	डा	आ	डा	आ	ड़ा	आ	
	लो	जी	ना	आँ	खे	ए	लो	ओ	
जोड़	१ ×				२				
	ग॒	म	प	नी॒	ध॒	प	म	ग	
	डा	ड़ा	डा	ड़ा	डा	ड़ा	डा	ड़ा	
	हो	री	चूँ	द	री	न	सै	हैं	
	ग॒	म	ग	ऽ	रे॒	रे॒	सा	ऽ	
	डा	ड़ा	डा	आ	डा	ड़ा	डा	ऽ	
	प्या	रे	ना	आँ	खे	ए	लो	ओ	

रागिनी भैरवी—तिताला

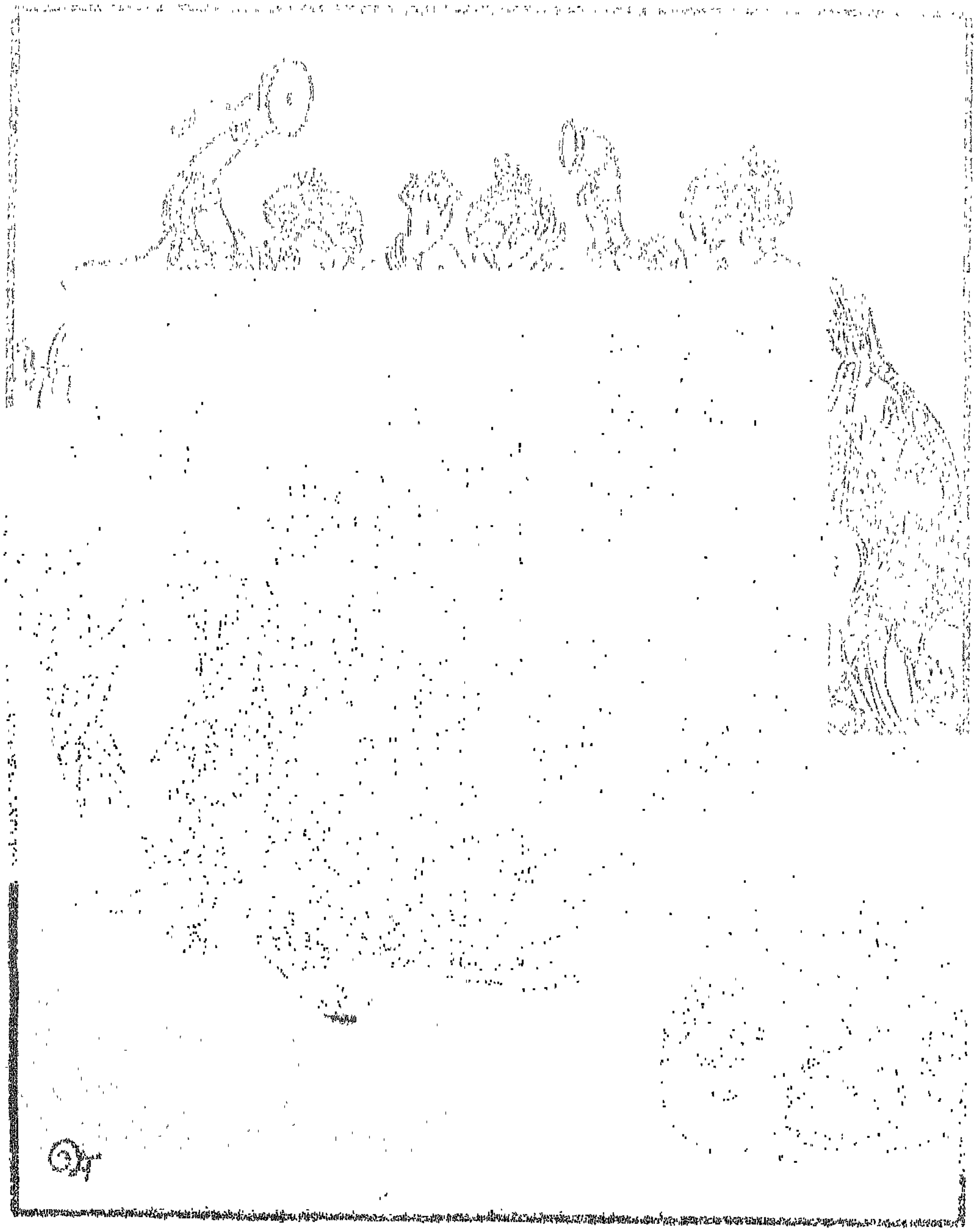
आत्रा १६

सितार के गत का प्रतिबिम्ब-गीत

गीत

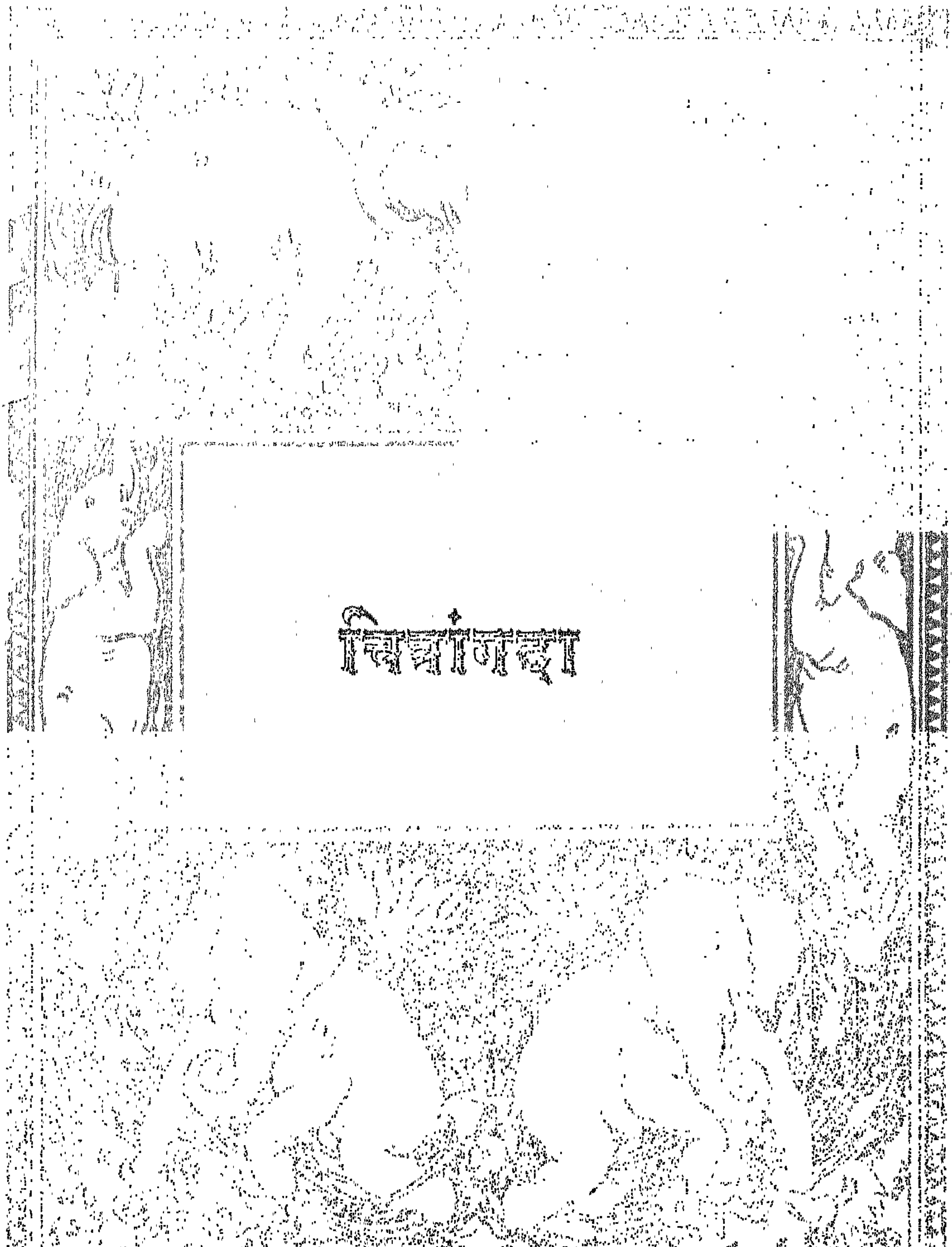
होय पूतरी आँखिन मेरो निबसो 'प्यारे'।
आय गर में छबि छावो, हीर-हरा ह्वै के छतियों में लागो।
होय कंचुकी रहो सदा ही, प्रान होय हिय माँह हमारे॥

गत-	१ ×				२				०				३				
२	प	प्-	पप	ध	म	पप	ग	म	मम	प	प	ध	ऽ	ग	ऽ	मम	२
	डा	ड़्	डाड़	डा	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डिड़ि	डा	ड़ा	ड़ा	ऽ	डा	ऽ	डिड़ि	
	हो	य्-	पूत	री	आँ	खिन	मे	रो	निब	सो	प्या	रे	ए	आ	ए	गर	
जोड़-	१ ×				२				०				३				
२	ग	रेरे	सा	सा	सा	रेरे	ग	म	ऽ	रे	ऽ	मम	ग	रे	सा	सा	
	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	डिड़ि	डा	ड़	ऽ	डा	ऽ	डिड़ि	डा	ड़ा	डा	ड़ा	
	में	छबि	छा	वो	ही	रह	रा	ह्वै	ऽ	के	ए	छति	यों	में	ला	गो	
	रे	ध्-	नीनी	नी	रेरे	ग	ग-	म	ग	स्-	रेस	रेरे	नी	ससा	नी	सा	
	डा	ड़्-	डाड़	डा	डाड़ा	डा	ड़ा	ड़ा	डा	ड़्-	डाड़	डिड़ि	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	
	हो	य्-	कंचु	की	रहो	स	दा-	ही	प्रा	न्	होय	हिय	माँ	ह ह	मा	रे	
१	प	प्	पप	ध	म	पप	ग	म	मम	प	प	ध	ऽ	ग	ऽ	मम	
	डा	ड़्-	डाड़	डा	डा	डिड़ि	डा	ड़ा	डिड़ि	डा	ड़ा	ड़ा	ऽ	डा	ऽ	डिड़ि	
	हो	य्-	पूत	री	आँ	खिन	मे	रो	निब	सो	प्या	रे	ए	आ	ए	गर	





श्रीमान् राजा [illegible] (वर्त्तमान सूर्यपुराधीश)



चित्रांगदा



अनंगाश्रम

चित्राङ्गदा । मदन । वसंत ।

चि०—क्या तुम्ही हो पंचशर ?

म०—हाँ, मैं हूँ मदन । मैं ही इस जगत् के समस्त पुरुष और ललनागण के हृदय को सदा वेदना के बंधन में बाँधे खैंचे फिरता हूँ—इधरउधर !

चि०—कैसी वेदना है, कैसा होता है बंधन—दासी जानती है यह । प्रणाम तुम्हें है प्रभो ! कौन हो कृपालु ?

व०—मैं हूँ ऋतुराज । जरा, मृत्यु—जो दो दैत्य विश्व का कंकाल हाय निमेषनिमेष किया चाहते हैं बाहर, उन्हीं के पीछेपीछे फिराफिरा, उनको पदपद पर किया करता हूँ आक्रमण ; रात्रिदिन मेरे उनके चलता रहता है यह संग्राम । मैं वही जगत् का हूँ अनन्त यौवन !

चि०—प्रणाम तुम्हें है भगवन् ! चरितार्थ दासी देवदर्शन से हुई ।

म०—कल्यान । किस लिए तू करती है—यह कठोर व्रत ? तपस्या के ताप से तू करती है क्यों यूँ क्षीण वो मलीन हाय यौवनकुसुम ?—अनंग की पूजा की तो यह नहीं है विधि ! तू कौन है ? क्या चाहती है ? भद्रे !

चि०—मदन ! दया करो यदि, सुनो मेरा इतिहास । निवेदन करूँगी प्रार्थना तत्पश्चात् ।

म०—अच्छा ! हाँ, कहो, मैं सुनता हूँ ।

चि०—चित्राङ्गदा मेरा नाम है । मैं महाराज मनीपुर की कन्या हूँ । मेरे पितृवंश में कदापि कोई कन्या जन्म नहीं लेगी—देवदेव महादेव ने ऐसा कभी दिया था वर, मेरे किसी पूर्व-पुरुष के तप पर होकर संतुष्ट । मैंने वही महा वर व्यर्थ कर दिया ! अमोघ देवता-वाक्य जो मेरे मातृगर्भ में प्रवेश करके मेरे दुर्बल प्रारंभ को भी स्वीय शैव तेज से बना न सका पुरुषआकार । मैं ऐसी हूँ नारी ।

म०—हाँ, यह मैंने भी सुना है । इसीसे तेरे पिता ने पुत्र के सदृश अद्यापि किया है तेरा लालनपालन, सिखाई है धनुर्विद्या—राजदंडनीति ।

चि०—इसी से मैं पुरुषवेश में युवराज के सदृश किया करती हूँ राजकाज, फिरा करती हूँ

अपने इच्छानुसार ; नहीं जानती लज्जा, भय, अन्तःपुरवास ; नहीं जानती हाव-भाव, विलासचातुरी ; सीखी है धनुर्विद्या। केवल सीखा नहीं देव ! तुम्हारा पुष्पबान एक—आँखों से चलाना।

म०—सरसीरुहनयने ! यह विद्या कोई नारी सीखती नहीं ; आपहीआप आँख अपना काम अपने अवसर पर करती है। जिस्को इस्की चोट लगती है वही इस्को जानता है।

चि०—देव ! एक दिन गई थी मैं मृगयान्वेषन को एकाकिनी गहन वन में; पूजनी तटिनी के तट बाँधकर अश्व को एक तरुमूल से, दुर्गम कुटिल वनपथ से होकर वन में घुसी ; मृग-पदचिह्न का अनुसरन करती-करती। झिल्लीमन्दमुखरित नित्यअंधकार लता-गुल्मआच्छादित गहनगम्भीर महारण्य में किञ्चित् दूर अग्रसर होकर देखा सहसा एक सङ्कीर्ण पथ में सोया हुआ है पृथ्वी पर कोई चीरधारी मलिन पुरुष। कहा उसे उठने को अवज्ञा के स्वर में; उठा नहीं वहाँ से वो, हिला तक नहीं। रोष-अधीर उद्धत धनुष के अग्रभाग से खोदा उसे ; पलक मारते ही वह सरलसुदीर्घ-देह उठ खड़ा हुआ छूटे हुए बान सा शीघ्र मेरे सन्मुख—भस्मसुप्त अग्नि घृतआहुति पाकर उठता है ऊपर को जैसे शिखाकार एक क्षणमात्र में ; मुहूर्त्त भर तक देखा किया मेरा वो मुख चुपचाप। रोषदृष्टि पलक ही में हो गई लीन। गुप्त कौतुक की मंजु मृदु हासरेखा मधुर अधर के कोने नाचने लगी। जान पड़ता है देखकर मेरी यह बालकमूर्त्ति—पुरुषोचित विद्याओं को सीखकर पुरुषों का वस्त्र पेन्हकर पुरुषों के साथ-साथ घूमघूमकर जो वस्तु इतने दिनों मैं भूली हुई थी वो उस आनन की ओर निहारते ही वो अपनी सी आप अटल मूर्त्ति देखते ही याद आ गई पहलेपहल मन में। उसी मुहूर्त्त मैंने पहलेपहल अपने को नारी जाना, उसी मुहूर्त्त पहलेपहल देखा मैंने सन्मुख पुरुष।

म०—यह शिक्षा सुलक्षणे ! मेरी ही है। मैं ही चेतन कर देता हूँ एक दिन कभी जीवन के किसी शुभ पुन्य मुहूर्त्त में नारी को होना नारी, पुरुष को पुरुष। हाँ, क्या हुआ फिर ?

चि०—सभयविस्मयकंठ पूछा उस्से—"कौन हो तुम"—उत्तर पाया—"पार्थ कुरुवंशधर"; खड़ी रह गई चित्रप्राय—भूल गई प्रणाम करना। क्या यही है पार्थ मेरा आजन्म-विस्मय ? सुना था यह पहले मैंने, सत्य रक्षनार्थ द्वादश वत्सर वनवन घूमकर

ब्रह्मचर्य्यपालन करता है अर्ज्जुन। क्या यही है वही पार्थ ख्यात धनुर्द्धर? बाल-दुराशावशतः कितने दिनों से समझे हुई थी, पार्थ की कीर्त्ति को मैं ही निष्प्रभ करूँगी—अपने भुजबल से। बनाऊँगी अपना उसे अव्यर्थ लक्ष्य; पुरुष के छद्मवेश में माँगूँगी युद्ध उसके साथ—वीरत्व का दूँगी परिचय। कहाँ गई मुग्धे! अब तेरी वह स्पर्द्धा?

हाय! जिस भूमितल पर वो खड़े हैं, होती उस भूमितल का जो तृणदल! शौर्य-वीर्य धूरि में मिलाकर भी यदि पाती उन चरनों के पास मरने तो!

उससमय क्या क्या जी में आया, याद नहीं। हाय! फिर वो मेरे देखते ही देखते चला गया वन की आड़ में धीरे धीरे; चमक उठी मैं; उसी मुहूर्त्त चेतना जन्मी। देने लगी अपने को शतशत बार धिक्कार—छिः छिः! मूढ़े! तूने उनसे सम्भाषन तक न किया, एक बात तक नहीं पूछी!—हाय! क्षमा तक नहीं माँगी!—खड़ी रह गई बर्ब्बर सी चुपचाप और चला गया वह वीर हाय यों ही! हाय! यदि मैं उसी समय मर जाती तो बच जाती निश्चय। दूसरे दिन ही फिर प्रभात होते ही फेंक दिया मैंने पुरुषवेशभूषा सर्वसामग्री दूर; पेन्हा रक्ताम्बर—कंकन, किंकिनि, काञ्ची—अनभ्यस्त साज। लज्जा से जकड़कर अंग हो गया संकुचित—गुप्त भाव से फिर मैं एक दिन उसी वन में गई। अरन्य के एक शिवालय में उसको बैठा हुआ पाया।

म०—कहती जाओ प्रमदे! मुझसे लज्जा न करो। मैं हूँ मनसिज; मानस के मैं सारे रहस्य जानता हूँ।

चि०—याद नहीं पूरा मैंने क्या कहा उससे, उसने क्या दिया उत्तर। देव! भगवन्! मुझसे अब और न पूछो—हाय! हाय! वज्र सी लज्जा सिर पर गिरी तथापि न कर सकी शतधा मुझे—अबला स्त्री होकर भी मेरा ऐसा है पुरुषप्रान। जानी नहीं कैसे आई फिर घर लौटि—दुःस्वप्नविह्वला-सी, उसका शेष वाक्य लगने लगा कानों में उत्तप्त शूल सा—"मैं ब्रह्मचारी व्रतधारी हूँ वीराङ्गने। मैं पतियोग्य नहीं"—पुरुषब्रह्मचर्य्य!

धिक् मुझे, मैं इसे भी हा! न उगा सकी। तुम तो जानते ही हो मीनकेतु। कितने ऋषियों वो मुनियों ने अपना चिरार्जित फल नारीपदतल पर विसर्ज्जन कर कर दिया है। क्षत्री का ब्रह्मचर्य्य—घर आकर फेंक दिये धनुषबान सब जितने थे मेरे निकट

जिनसे हो रहा है अंकित अद्यापि करतल। जो मेरे गर्व्व के धन थे इतने दिनों, लांछना की उन सबके प्रति, निष्फल आक्रोशभार से—इतने दिनों पर जाना, स्त्री होकर कोई यदि पुरुष का मन जीत न सकै तो उसकी विद्या सब वृथा। अबला के कोमल मृनाल से बाहों में इन बाहों से सहस्रगुणा बलवीर्य्य अधिक है। धन्य है वो मुग्ध मूर्ख क्षीन परावलम्बिता तनुलता—लज्जाभयलीनांगिनी सामान्य ललना जिसके त्रस्त नेत्रपात से भी मानता है पराभव वीर्य्यबल तपस्या का तेज। मनसिज! तुमने एक दंड में मेरा सारा दम्भ छीन लिया। मैं अपनी सकल विद्यायें, मैं अपना सारा बल तुम्हारे पदानत करती हूँ। सिखाओ अब अपनी विद्या; दो अब कृपापूर्वक अबला का बल और निरस्त्र का अस्त्र।

म०—मैं हूँगा सहाय तेरा शुभे! विश्वजयी अर्ज्जुन को जीतकर बन्दी बनाकर मैं तेरे सामने लाके खड़ा कर दूँगा। राज्ञी होकर तुम देना दंड, पुरस्कार—जो जी चाहै; विद्रोही का मनमाना करना शासन।

चि०—समय मिलता यदि, एकाकिनी मैं ही तिलतिल हृदय पर उसके अपना अधिकार जमा लेती। चाहती नहीं कभी कोई दैवी सहायता। सङ्गी के सदृश साथ रहती, रनक्षेत्र में सारथी होती, मृगया में अनुचर बनती, शिबिरद्वार पर रहती प्रहरी सा सर्वनिशि, भृत्य की भाँति सेवा करती रहती सदा, क्षत्रियों के आर्त्तत्रान महाव्रत में रहती सहाय। एक दिन कौतूहली होकर मुझे देखते, सोचते मन में—यह कौन बालक है; पूर्व जनम का यह कोई दास है, मेरे संग सदा लगा रहता है जो सुकृति की भाँति। क्रमशः खोलती उसका हृदय, बनाती उसे अपना चिरनिवासस्थान। मैं जानती हूँ—मेरा यह प्रेम, मीनकेतु! केवल रोने ही का नहीं है; जिसे नारी निर्व्वाक् धैर्य्य धारन किये हुए किसी चिरमर्म्मव्यथा की भाँति निशीथनयनजल से सींचकर करती है पालन, दिवालोक में रखती है जिसको छिपाये मलिन हँसी में—हाय आजन्मदुःखिनी! मैं ऐसी नारी नहीं हूँ। किसी भाँति मेरी कामना नहीं होगी निष्फल। पंचशर! एक बार भी यदि मैं अपने को उसे दिखा सकी तो वो अवश्य धरा जायगा। हाय विधि! क्या था वो दिन! लज्जासंकुचिता एक शंकिता कम्पिता नारी आत्मद्दारी प्रलापवादिनी! किन्तु क्या मैं यथार्थ ही वैसी ही हूँ जैसी सहस्रसहस्र स्त्रियाँ पथ-पथ गृहगृह जो

केवल रोने की अधिकारी हैं, मैं क्या उनसे कुछ भी न अधिक हूँ ? किन्तु हाय ! अपना परिचय देना बड़े धैर्य्य से बहुत दिनों में होता है। यह है सारे जीवन का काज—जन्मजन्मान्तर का व्रत—इसीसे आई हूँ तुम्हारे चरनों में, किया है कठोर तप। हे भुवनजयी देव ! मैन मीनकेतु ! हे महासुन्दर ऋतुराज वसंत ! केवल एक दिन के लिए मिटा दो यह जन्मदाता विधाता का विना अपराध का दिया हुआ अभिशाप—नारी का कुरूप। बना दो मुझे अपूर्व सुन्दरी। मुझको दे दो अपना एक दिन; चिरकाल तो मेरे ही हैं मेरे दिन। जब देखा उसे प्रथम, मानों मुहूर्त्तमात्र में हृदय में अनन्त वसंत कर गया प्रवेश। बड़ी लालसा हुई थी उस समय कि उस यौवनसमीरन से समस्त शरीर मेरा हो उठता विकसित—पद्मालया पद्मा के पद पै पड़े पद्म के सदृश। हे वसंत ! हे वसंतसखे ! वो वासना पुरावो मेरी—एक दिनमात्र के लिए।

मदन—तथास्तु।

वसंत—तथास्तु ! केवल एक ही दिन नहीं, वर्षावधि यह वसंतपुष्पशोभा घेरे हुए तेरा तन विकसी रहैगी।

卐 ❀ 卐

मनीपुर

अरण्य का शिवालय। अर्जुन।

अर्जुन—हाय ! किसको देखा ? यह सत्य है किंवा माया ? विजन वन में एक निर्मल सरसी—ऐसा निभृत निरालय, मानों काननलक्ष्मी वनदेवीगण निस्तब्ध मध्याह्न में आ आकर वहाँ करती हैं स्नान, गम्भीर राकारात्रि में वहीं उस सुप्त सरोवर के श्यामल स्निग्ध शस्यदल पर आ आकर करती हैं शयन, सदा निःशंक विश्रामगता—स्खलितअंचला। —वहीं एक तरुवर के अन्तराल में अपराह्न समय सोच रहा था बैठाबैठा—शैशव से लेकर आज तक की अपने जीवन की अनेक कथायें, इस संसार की गूढ़ क्रीड़ा, सुख वो दुख की उलटपलट, जीवन का असन्तोष, आशाओं की असम्पूर्णता, क्लेश और मर्त्य मानव का अन्तहीन दारिद्र्य। देखा, कोई घने तरुओं के अंधकार से बाहर आकर सरोवरसोपान के सुश्वेत शिलातट पर खड़ा हुआ। कैसा अपूर्व रूप ! आहा ! कैसा

सौन्दर्य्य ! कोमल चरणतलों का स्पर्श करके धरा का हृदय कैसे रहा अचंचल ! उषा का कनकमेघ देखतेदेखते जैसे लीन हो जाता है—पूर्व्वपर्व्वत के शुभ्र सिर पर निष्कलंक नग्न शोभाराशि करके विकाशित, वैसे उसका वदन लीन हुआ जाता था उसके अंगलावन्य में। धीरेधीरे जल के निकट उतरकर सरोवर के तल पर पहुँचकर कुछ यों ही सा झुककर उसने देखा अपना आननप्रतिविम्ब; चकित सी हो उठी। फिर मंदमंद हँसती हुई बायें बाहु से केशपाश उसने खोल डाला। मुक्त केश गिर पड़ा विह्वल होकर उसके चरणों पर। अंचल खिस्काकर उसने देखा आनन्द के साथ अपने अनिन्दित मृनाल बाहु—कातर सुस्पर्शरस—करुनापूरित। देखा उसने अपना फिर सीस नवाकर परिस्फुट देह-तट पर यौवन का उन्मुख विकास; देखा गौर गात पर झलक्ता सा आरक्तिम आलज्ज आभास; सरोवर के जल में अपने पैरों को डुबाकर देखा अपने चरणों की आभा, विस्मय की तान !—जैसे उसने यही प्रथमप्रथम अपने को देखा हो; मंजु नलिनी ने मानों अपना कोरक वयस आँख मूँदे बिताया। जिस दिवस प्रातःकाल प्रथमप्रथम पूर्ण शोभा पाई उसी दिन सरोवर के नील जल में प्रथम अपने को देखा; सारा दिन देखती रह गई विस्मय से—मुहूर्त्तोपरान्त फिर न जाने कौन से दुख से हो गई हँसी मुख में विलीन; मलीन हो आए दोनों नयन, सुन्दर केशपाश को फिर बाँध डाला; आनन छिपा लिया अंचल से; एक गाढ़ा दीर्घ निःश्वास लेकर चली गई धीरेधीरे, स्वर्ण-सायाह्न जैसे म्लान मुख करके जाता है तमोमई रजनी के निकट।

सोचने लगा—

धरनी ने अपना ऐश्वर्य देखा दिया आज ! कामना की सम्पूर्णता; एक छनमात्र के लिए अपनी झलक देखा गई।—सोचने लगा, कितना युद्ध, कितनी हिंसा, कितना आडम्बर, पुरुषों का गर्व्व, उनका पौरुषगौरव, उनकी वीरत्व की नित्यकीर्तितृषा आदि शांत हो होकर लोटा करते हैं पृथ्वी पर, उस पूर्ण सौन्दर्य के पास—पशुराज सिंह जैसे सिंहवाहिनी के भुवनवांछित पादपद्म के नीचे, और एक बार भी यदि·····

ऐं ! यह क्या ? यह द्वार कौन खोले डालता है ?

(द्वार खोलकर)—यह क्या ! वही मूर्त्ति !

शान्त ! शान्त हो हृदय ! कोई भय नहीं है मेरा इन्दुनिभानने ! चन्द्रकुलजात मैं हूँ —भीत और दुर्बलों का भयहारी !

चि०—आर्य्य ! तुम आज मेरे अतिथि हो ! यह मन्दिर मेरा ही है आश्रम । नहीं जानती कैसे करूँ तुम्हारी अभ्यर्थना ! क्या करके किस सत्कार से तुम्हारा तोष करूँ ?

अ०—अतिथिसत्कार तो तेरे दर्शन ही से हो गया सुन्दरि ! शिष्टवाक्यसमूह तो मेरा सौभाग्य है । कोई अपराध यदि ग्रहन न करो तो एक प्रश्न पूछूँ—चित्त है कुतूहली ।

चि०—पूछो निर्भय ।

अ०—शुचिस्मिते । किस कठोर व्रत के लिए ऐसी रूपराशि तू इस निर्जन देवालय में यों ही करती है विसर्जन, हतभाग्य मर्त्य मानव को वंचित करके ?

चि०—एक गुप्त कामना की साधना के लिए सदैव अनन्यमना करती हूँ पूजा आशुतोष भगवान् की ।

अ०—तुझे हाय किसकी कामना है ? जगत्कामनाधन—सुदर्शने ! उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक मैं भ्रमन किए हुए हूँ, सप्तद्वीप में जिस स्थान पर जो कुछ है दुर्लभ सुन्दर दिव्य मनोहर अचिन्त्य महान् अपूर्व, वो सब इन आँखों देखा है; क्या चाहती हो ? किस्को चाहती हो ? यदि मुझे बता दो तो सम्भव है कि उस्के विषय में मैं कुछ तुम्हें कह सकूँ ।

चि०—त्रिभुवनपरिचित हैं वो, मैं जिन्हें चाहती हूँ ।

अ०—ऐसा मनुष्य कौन है इस मर्त्यलोक में अद्रिशिरे ! जिस्की यशोराशि तेरे अमरकांक्षित मनोराज्य में सबसे दुर्लभ आसन अधिकृत किये हुई है ? प्रियंवदे ! क्या नाम है—कहो भी; उसे श्रवन कर कृतार्थ हूँ ।

चि०—उस्का जन्म सर्व्वश्रेष्ठ नरपतिकुल में हुआ है । वह सर्व्वाग्रगन्य वीर है ।

अ०—रसना रसना पै चढ़ती, बातों बातों में मिथ्या ख्याति की वृद्धि कर उठती है; क्षनस्थाई वाष्प सदृश जो उषा को छलना किए ढाके रहता है उस क्षण तक जबतक सूर्य्य-उदय न होवे । सरलहृदये ! मिथ्या की उपासना तू इस दुर्लभ सौन्दर्य्य ऐसे सम्पद से कदापि न कर । हाँ, कह, कौन है वह सर्व्वाग्रगन्य वीर—सर्व्वश्रेष्ठवंशज ?

चि०—परकीर्त्तिअसहिष्णु कौन हो संन्यासि ! कौन नहीं जानता जगन्मंडल में कुरुवंश सर्वराजवंशशिरोमणि ?

अ०—कुरुवंश ?

चि०—हाँ। उसी वंश में सुना है नाम; कौन है अक्षययश वीरेन्द्रकेशरी ?

अ०—यह भी तुम्हीं कहो।

चि०—अर्ज्जुन गांडीवधनु भुवनविजयी। इस अक्षय नाम को समस्त जगत् से लूटकर छिपाए रखे हुई हूँ यत्न के साथ अपना यह कुमारीहृदय पूरित करके।.........

यह क्यों ? ब्रह्मचारि ! यह अधैर्य्य कैसा ? तो क्या यह सब मिथ्या ही है ? मिथ्या है क्या अर्ज्जुन का नाम ? बतला दो कृपापूर्व्वक मिथ्या हो यदि, तो इसी समय अपने हृदय को तोड़कर उसे फेंक दूँ बाहर; फिरा फिरे वो रसना रसना में, बात बात में, नारी के अन्तरासन में उसका कहाँ स्थान ?

अ०—त्रिलोकदुर्लभरत्ने ! वही अर्ज्जुन, वही पांडुतनय, वही गांडीवधनु, वही भाग्यवान, तेरे चरणों के शरनागत है। उसका नाम, उसकी ख्याति, उसका बल, उसका वीर्य्य मिथ्या हो, सत्य हो—जो हो, जिस दुर्ल्लभ लोक में तुमने उसे स्थान दे दिया है वहाँ से अब उसको कदापि विच्युत न करो—क्षीणपुण्य हृतस्वर्ग हतभाग्य सम।

चि०—तुम पार्थ ?—

अ०—मैं ही पार्थ हूँ देवि ! तुम्हारे हृदयद्वार का प्रेमार्त्त अतिथि।

चि०—मैंने तो सुना था, अर्ज्जुन द्वादशवर्षव्यापी ब्रह्मचर्य्यपालन कर रहा है। वही वीर आज कामिनी की करता है कामना अपना महाव्रत भंग कर ? हे संन्यासि ! तुम पार्थ !!!

अ०—तूने तोड़ डाला है मेरा व्रत। चन्द्र उदय लेकर जैसे भंग कर देता है निशीथयोग-निद्राअंधकार।

चि०—धिक् पार्थ धिक् ! कौन मैं हूँ ? क्या मुझमें है ? तुमने क्या देखा है ? तुम क्या जानते हो ? किसके लिए आत्मविस्मृत हुए जाते हो ? मुहूर्त्त भर के लिए सत्य भंग कर अर्ज्जुन को तुम अनर्ज्जुन किसके लिए किए डालते हो ? मेरे लिए ? मेरे लिए नहीं। इन दो नवनीलोत्पलविनिन्दु नयनों के लिए सत्य का बंधन अपने हाथों से उच्छिन्न कर नवनीनिन्दित बाहुपाश में आज सव्यसाची अर्ज्जुन स्वयं बन्दी हो रहा है ! कहाँ गई प्रेम की मर्य्यादा ! कहाँ रहा नारी का सम्मान ! हाय ! अतिक्रम कराया

मुझे मेरा यह तुच्छ देह—मृत्युहीन अन्तर का यह चनस्थाई छद्मवेश ! अब मैंने जाना, मिथ्या है ख्याति तुम्हारी, असत्य है वीरत्व !

अ०—ख्याति मिथ्या है, वीरत्व मिथ्या है, आज जाना ! सप्तलोक आज मुझे स्वप्न बोध होता है ! केवल एक तुम्ही पूर्ण, तुम्ही सर्व्व, तुम्ही विश्वऐश्वर्य ! एक स्त्री, किन्तु सकल दैन्य का महा अवसान ! सकल कर्म्म की सुविश्रामस्वरूपिनी ! न जाने क्यों अकस्मात् तेरे देखते ही मुझे बोध होने लगा वह आनन्द, जो प्रथम प्रत्यूष को तपन के प्रथम किरन से अंधकारमहाअर्णव से शतदल की सृष्टि होने पर उठा था दिग्विदिग उन्मेषित होकर मुहूर्त्तमात्र में। संसार के और समस्त पदार्थ तो जाने जाते हैं थोड़ा-थोड़ा धीरेधीरे बहुत दिनों में; किन्तु तुम्हें देखते ही तुम्हारा देख चुका सब कुछ समस्त; तथापि होता नहीं शेष।—एक दिवस मैं कैलासशिखर पर गया था मृगयार्थ। श्रान्त तृषित द्विपहर के समय कुसुमविचित्र दिव्य मानस के तीर ज्यों ही उस सुर-सरसी के प्रति देखा त्यों ही दृष्ट पड़ा उसका अनन्त अतल। शुद्ध स्वच्छ जल जितना नीचे देखते जाव—मध्याह्न के रश्मिमाली की रश्मिरेखायें स्वर्न-नलिनी के स्वर्नमृनाल के साथ उतरी हुई हैं नीचे अगाध असीम जल में—काँप रही हैं टेढ़ी हो होकर जल के कोमल हिल्लोलों से, लक्षकोटि अग्निमई पन्नगियों की भाँति; मानों भगवान् सूर्य्य-देव सहस्रअङ्गुलिनिर्देशपूर्व्वक दिखला रहे हैं जन्मशान्त कर्मक्लान्त मर्त्य जन का कहाँ है सुन्दर मरण; स्वच्छ अनन्त शीतल वही अतलता मैंने इसमें देखी है ! चारों ओर से देवताओं की अंगुलियाँ जैसे दिखला रही हैं मुझे इस तेरे अलोक-अभूतपूर्व्व दिव्य आलोक में कीर्त्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्व्वाण।—

चि०—मैं नहीं, मैं वैसी नहीं; हाय पार्थ ! हाय, कोई है यह दैवछलना ! लौट जावो, पलट जाव वीर ! मिथ्या की उपासना कदापि न करो ! अपना शौर्य्यवीर्य्य बलमहत्त्व डालो न मिथ्या के चरण पर यों ही ! अब जावो, अब लौट जावो वीर !

卐 ॐ 卐

एक तरु के नीचे चित्राङ्गदा

चि०—हाय हाय ! क्या उसे लौटा सकी हूँ ? उस वीरहृदय की स्फुलिंगनिःश्वासिनी तृषित-कम्पित होमाग्निशिखासदृशी थरथर व्याकुलता को; उन नयनों की दृष्टि को, जो मानों अन्तर के बाहु बनकर मुझे खींचे डालती है; उस उत्तप्त हृदय को, जो गिरा पड़ता है समस्त अंगों से छूटताटूटता हुआ सा—जिसकी क्रन्दनध्वनि प्रति अंग से सुनाई सी पड़ती है ! हाय हाय ! यह तृष्णा क्या लौटा सकी हूँ ?

[वसंत और मदन का प्रवेश]

अनंगदेव ! यह कैसे हुताशन से मुझको घेर डाला है ? दग्ध हो रही हूँ और दग्ध किए डालती हूँ।—

मदन—तन्वि ! कह कल का विवरण; मुक्त पुष्पशर ने मेरे कहाँ किया कौन काज, सुनने की है वासना।

चि०—कल संध्या समय, सरसी के तृणपुंज तीर पर बिछाई थी पुष्पशय्या वसन्त के झरे हुए कुसुमों की; श्रान्तकलेवरा सोई थी इच्छानुसार वाम बाहु पै अपना अलस सिर रक्खे, सोच रही थी दिन के सकल वृत्तान्त ! सुनी थी जो स्तुति मैंने अर्जुन के मुख से, याद करती थी उसकी प्रति क्षुद्रकथा—एकाकिनी सोई-सोई; दिवस के सुसंचित अमृत से मानों बिन्दुबिन्दु लेकर मैं पान कर रही थी; भूलती जाती थी पूर्वइतिहास—विगत जन्मकथा की भाँति; जैसे मैं राजकन्या नहीं हूँ, जैसे मेरा पूर्वापर नहीं है, जैसे मैं एक दिवस इस धरातल पर प्रस्फुटित हो उठी हूँ; अरन्य के पितृमातृहीन पुष्प के सदृश, एक प्रभातमात्र जिसका परमायु; इसीमें सुन लेना होगा—भ्रमरगुंजनगीति, वनान्त आनन्दमर्मर; फिर सुनील गगन के प्रति झुकानी होगी आँख, नवानी होगी ग्रीवा, वायुस्पर्शभर से टूटकर लोटना होगा पृथ्वी पै पड़ा क्रन्दनविहीन; मध्य ही में समाप्त हो जायगी कुसुमकहानी—आदि अन्त हारा।

वसन्त—सुन्दरि ! एक प्रभात में तो प्रस्फुटित हो उठता है अनन्त जीवन !

मदन—सुमुखि ! संगीत में, एक तान में गूँज उठती है जैसे अनन्त कथा। फिर क्या हुआ, कहो।

चि०—मैं यही सोच रही थी। दक्षिण पवन डाले देता था सर्वाङ्ग पै निद्राहिल्लोल—सघन-पर्णशाखाओं से अपने, पूर्ण फुल्ल मालतीलता मेरे गौर तनु का स्पर्श करती हुई झूम-झूमकर शतशत निःशब्द चुम्बन दे रही थी; फूल सब कोई केश पर, कोई पदमूल पर, कोई स्तन पर, अचेत अनन्तनिद्रामग्न हो रहे थे।

अचेत ही व्यतीत हुआ यों ही कुछ काल—जानती नहीं, कब उसी मधुर निद्रावस्था में; अनुभव हुआ, जैसे किसी के मुग्ध नेत्रों की दृष्टि दश अंगुलिवत् स्पर्श कर रही है········से मेरा सुनिद्रालस तनु। चौंककर जाग उठी।

देखा, वही संन्यासी पदप्रान्त पै खड़ा है निर्निमेष स्थिर मूर्त्ति सम। पूर्वपर्व्वत से धीरेधीरे पश्चिम आकर द्वादशी का शशि अपना समस्त हिमांशुराशिस्खलित वसन अम्लान नूतन मेरे शुभ्र सौन्दर्य्य पर ढाले देता था—पुष्पगंध से तरुतल पूर्ण हो रहा था—सुझिल्लिरवों से निशीथ तन्द्रामग्न हो रहा था; स्वच्छ सरोवर में अकम्पिता सुधांशुअंशुच्छाया पड़ रही थी; पवन सुखशयन कर रहा था; ज्योत्स्नालोक में अटवी—सुमसृण चिक्कन राशिराशि अंधकारभार शिर पर लिए हुए स्तम्भित खड़ी हो रही थी। इन्हीं की भाँति चित्रार्पित खड़ा था दीर्घकाय तरु सा दंडधारी ब्रह्मचारी छायासहचर! निद्राभंग होने पर प्रथम प्रथम देखा जब चतुर्दिक्, बोध हुआ, मानों मैंने कभी किसी विस्मृत प्रदोषकाल में अपना जीवन तजकर स्वप्नजन्म लाभ किया है एक किसी सुखापरूप निद्रालोक में जनशून्य म्लानचन्द्रिका वैतरनी तटिनी के तट के निकट। उठ खड़ी हुई। शिथिल शरम संकोच खिसक कर गिर पड़ा श्लथ वसन के सदृश पैरों पर। सुना मैंने फिर, "प्रिये! प्रियतमे!!"—सुगम्भीर आह्वान में; मेरा जन्मजन्म, मेरा शतशत जन्म सहसा एक साथ ही जग उठा इस मेरी एक देह में; बोल उठी—"सुन्दर! प्राणवल्लभ! लो, ले लो, मेरा जो कुछ है!" बढ़ा दिये मैंने अपने दोनों बाहुवल्लरि!—डूब गया वनान्तर में सुधांशु, अंधकार से छिप गई मेदिनी। स्वर्ग, मर्त्य, देश, काल, जीवन, मरण, दुःख, सुख—किसी का चेत न रहा फिर उस असह्य पुलक में।

प्रभात की प्रथम किरणों से, विहंगों के प्रथम संगीत से, जगकर वाम बाहु पर भार दे, धीरेधीरे शय्यातल पर उठ बैठी। देखा पार्श्व ही में सुखसुप्त वीरवर; छा

रहा है उसके होठों पर शान्त हास्य—प्रभात की सुधांशुकला सा, रजनी के आनन्द का शीर्ण अवशेष। अरुणाभा उन्नत ललाट पै पड़ी हुई है; इस नरलोक में जैसे एक नूतन उदयाचल पै नवकीर्तिसूर्योदय प्रकाश पा रहा है।—

एक दीर्घ निःश्वास लेकर छोड़ा शय्यातल, मालतीलता का जाल झुका दिया उसके मुख पर, रविकर का करके अन्तराल। देखा चतुर्दिक्, वही पूर्वपरिचिता प्राचीना पृथ्वी। फिर अपनी समस्त कथा सहसा याद आ गई—भागी अति द्रुत शेफालि-विकीर्णतृणवनपथ होकर अपनी छायात्रस्ता हरिनी के सदृश; एक विजन वितानतल में बैठकर अपना मुख अपने दोनों हाथों से छिपा लिया—चाहा रोने को; किन्तु न आया क्रन्दन।

मदन—हाय! मानवनन्दिनि! धरनी की एक रात की पूर्णता हेतु स्वर्ग का एक दिन भंग कर अमरलोक से लाकर रखा तेरे अधरों के सामने—शची का प्रसादसुधा, रति का अपने हाथ का ढाला, नन्दनकानन की सुगंध से भरा हुआ; कराया तुमको पान, तब भी यही क्रन्दन!

चि०—देव! किसे, क्या पान कराया? किसकी तृषा मिटाई? वह चुम्बन, वह प्रेमसंगम, अभी तक जो कँपकँप उठता है सर्व्वाङ्ग में छाकर, वीणा के झंकार के सदृश, सो तो मेरा नहीं है! बहुकाल साधना पर सिद्धि एक दंड के लिए मिलती है। प्रथम मिलन, वह मिलन, किसने लूट लिया मुझे हाय वंचित करके? उस दुर्लभ मिलन की सुख-स्मृति को संग लिए झर जाता एक अति स्फुट कुसुमदल सा यह मेरा मायालावन्य! अन्तरदरिद्र रमनी, रिक्तदेह ही बैठी रह जायगी—निर्लज्ज, शिशिरभिरा! मीनकेतु! यह किस महाराक्षसी को लगा दिया है संग मेरे, अंगारलहरी उतार छाया की भाँति?—कैसा अपूर्व अत्याचार! चिरन्तन तृष्णातुर लोलुप अधरों के पास आया चुम्बन, जो चाट गए ओठ। जो प्रेमदृष्टिपात कैसा आग्रहपूर्ण! जो अंकित सा कर जाता है शरीर पर पड़कर वासना की स्पष्ट चिह्नरेखा, दृष्टि वही रविकरवत् चिररात्रितापसिनी कुमारी हृदयनलिनी के पास आई—उसने ले ली!

मदन—सो तुम्हारी कल की रात व्यर्थ ही गई! केवल कूल के सम्मुख आकर आशा की तरणी तरंगाघात से फिर पलट गई!

चि०—कल की रात की तो बात याद नहीं, देव ! स्वर्ग का सुख इतना दिया था—धारा ने क्या पाया, क्या नहीं पाया, कुछ गणना न कर सकी उस आत्मविस्मरणसुख में ! प्रातःकाल से आज नैराश्यधिक्कारवेग से अन्तरअन्तर हृदय टूटा जा रहा है ! याद आ जाती है सब एक-एक रात की बात । विद्युतवेदना के साथ होती है चेतना मम बाह्यअभ्यन्तर उभयपूरित सतीन ! हाय ! इसे भुला भी तो न सकूँगी । स्वहस्त से सपत्नी को यत्न के साथ सज्जित करके प्रति दिवस भेजना होगा अपने आकांक्षातीर्थ वासरशय्या पर, अविश्राम संग में रहकर देखना होगा प्रति मुहूर्त्त आँखें बन्द किए हुए उसका आदर—देह के सोहाग पर, अन्तर हिंसाग्नि में जला करेगा, ऐसा शाप नरलोक में और पाया है किसने ? हे देव अतनु ! फेर लो अपना वर !

मदन—यदि मैं फेर लूँ—छलना का आवरण खोलकर फिर किस मुँह से तू खड़ी होगी कल प्रातःकाल अर्ज्जुन के सम्मुख पुष्पपल्लवहीन, हिमन्त की हिमशीर्णलता; प्रमोद का प्रथम आस्वादन देकर सुधापात्र उसके मुँह से हटाकर तू यदि फेंक दे भूमितल चूर्ण करके; तो तू ही कह, कैसे आघात से वो चौंक उठेगा, कैसे आक्रोश से तुझे देखेगा !

चि०—यह भी श्रेय देव ! इस छद्मरूपिनी से मैं शतगुण श्रेष्ठ हूँ ! आत्मपरिचय दूँगी अब; भली यदि नहीं लगी उन्हें, चले जायँ घृना से यदि वो, वा मर ही जाऊँ हृदयविदीर्ण; तब भी मैं, मैं ही रहूँगी ! वो भी श्रेय इन्द्रसखा !

व०—चंचले ! मेरी बात सुन ! फूल का जब समाप्त हो जाता है परिपूर्णकार्य्य, प्रकाशित होता है तब फल—अपने समय पर आप ही आप, झर जायगा यह तापक्लिष्ट लघु-लावण्यदल; अपने गौरव के साथ तब आयगा चला । देखकर तुम्हें तब फाल्गुनी मानेगा एक नूतन सौभाग्य; जाओ, फिर जाओ वत्से ! यौवनोत्सव को !

अर्ज्जुन और चित्राङ्गदा

चि०—क्या देखते हो वीर !

अ०—देखता हूँ, पुष्पवृन्त पर के कोमल अंगुलियाँ रचती हैं माला ! निपुणता, चारुता—दोनों बहिनें मिलकर खेलती हैं मानों अविराम चंचल उल्लास के साथ अंगुलियों के आगे-आगे । देखता हूँ और सोचता हूँ ।

चि०—क्या सोचते हो ?

अ०—सोचता हूँ, इसी सुन्दर कर से घर के, इसी परशरस से सरस करके, मेरे प्रवासदिवसों को यों ही गूँथगूँथकर एक ऐसी ही सुन्दर माला विरच दो प्रेयसि ! जिस अक्षय आनन्दहार को अपने सिर पर पेन्हकर अपने घर फिर चलूँ।

चि०—यह प्रेम का घर तो है ही !

अ०—क्या घर नहीं ?

चि०—नहीं ! घर चलोगी !—घर का नाम न लो। जो रह सके चिर दिन, वही ले जाना घर। अरन्य का पुष्प जब सूख जायगा, फेंक दोगे उसे कहीं घर के भीतर अनादृत पाषाणराशि में। इससे तो यहीं इसी अरण्यअन्तःपुर में—नित्य ही जहाँ मरते हैं अंकुर, गिरते हैं पल्लव, झरते हैं केशर, लोटते हैं कुसुम; छनिक जीवन जहाँ खिलते हैं, मुरझाते हैं पल पल में—दिनान्त में मेरी क्रीड़ा जब सांग हो जावेगी, तब झरकर गिर पड़ूँगी इस वन के शतशत समाप्त सुखों के साथ। होगा नहीं खेद किसी के मन में।

अ०—बस यही !

चि०—बस यही ! और कुछ नहीं ! वीरवर, इसका दुःख ही क्या ! आलस्य के दिन में जो भला लगे, आलस के दिनों ही में उसे शेष कर डालो। सुख को एक दंड भी यदि अधिक बलपूर्वक बाँध रक्खो, तो वह दुख हो जाता है। जो कुछ शक्ति है उसे लो; जबतक कि है तबतक लो ! कामना के प्रत्यूष को जितना चाहा था, तृप्ति की सन्ध्या में उससे अधिकतर आशा न करना।

दिन समाप्त हो गया। लो, यह माला पहरो। मेरे श्रान्त तन को उठा लो अपने बाहों पर, प्राणेश्वर ! सन्धि हो अधरों का, सुखसम्मिलन में शान्त करूँ मिथ्या असन्तोष ! आओ, बाहुपाश में दोनों दोनों को बन्दी करें—प्रेमअमृतमय चिर-पराजयविवश !

अ०—वह सुन प्रियतमे ! वनान्त में दूर, किसी देवालय में बज उठा गम्भीर आरातिशान्ति-शंख—गूँज उठा कानन !

卐 ॐ 卐

मदन वो वसन्त

म०— मैं पंचशर हूँ सखे ! मेरे एक शर में हँसी, दूसरे में अश्रु, तीसरे में आशा, चतुर्थ में है भय; आशा, भय, सुख, दुःख एकत्र ही शेष पंचम में ।

व०— श्रान्त हो गया हूँ नितान्त मैं, अब क्षान्त हो सखे ! अनंग ! रणरंग भंग करो । रात्रिदिन, सचेतन रहकर, अब कबतक यों ही तुम्हारे हुताशन को व्यजन कर कर के बढ़ाया करूँगा । बीचबीच में कभीकभी आँखों में नींद आ जाती है, पक्ष अवनत हो जाते हैं, हो जाती है भस्म में म्लान तप्तदीप्तिराशि । चौंक के जगकर फिर नए श्वास से जगानी पड़ती है मुझे फिर नूतन उज्ज्वलता; अब बिदा दो सखे !

म०— जानता हूँ, तुम आनन्त अस्थिर चिरशिशुमना ! नित्य द्युलोक भूलोक में बन्धनहीन किया करते हो क्रीड़ा ! नितान्त बल से जिसे बहु बार श्रम से बहु काल में बनाते हो सुन्दर, निमेष मात्र ही में उसे छोड़ देते हो अकातर ही; पीछे कभी फिरकर भी देखते नहीं । अब बहु काल नहीं; आनन्दचंचल दिन धीरेधीरे तेरे पक्षपवन से उड़े जा रहे हैं—वृन्तच्युत पल्लव से । हर्ष अचेतन वर्ष का शेष हो गया ।

卐 ❀ 卐

अरन्य । अर्जुन

अ०—मैंने जैसे पाया है नींद से जगते ही प्रातःकाल ही स्वप्नलब्ध अमूल्य रत्न, जिसके रखने का इस मृन्मई धरा में स्थान नहीं पाता उपयुक्त—सीस पर जड़ित रक्खूँ ऐसा सुकिरीट नहीं; गले में गाँथे रक्खूँ ऐसो सूत्र भी नहीं; छोड़ जाऊँ फेंककर यों ही मैं, ऐसा तो अधम भी नहीं—केवल रात्रिदिवस क्षत्रिय का बाहु उसके लिये आबद्ध सा हो रहा है कर्त्तव्यविहीन !

(चित्रांगदा का प्रवेश)

चि०—क्या सोचते हो ?

अ०—सोच रहा हूँ मृगया की कथा मैं ! वह देखो वृष्टिधारा झुक आई है पर्व्वत पर; असंख्य पर घन की घोर छाया पड़ी हुई है; निर्झरिनी दुरंत सी हो उठी है; कलकल उपहास करती हुई तटों के शासन की अवहेला करती है; ऐसे ही वर्षा के दिन, हम पंचभ्राता

जाया करते थे मृगयार्थ चित्रक अरन्य में। रौद्रहीन सुस्निग्ध अंधकार में सारा दिन बिताते थे बड़े उत्साह के साथ! मंद मंद मेघमन्द्र से हृदय नृत्य कर उठता था। वृष्टिजल की ध्वनि से मुखर निर्झर के कलोल्लास से, प्रिये! सावधान पद का शब्द सुन सक्ता था न मृग; व्याघ्र अपने पंचनख की पूर्ण चिह्नरेखा रख जाता था पंकिल पथ पर, दे जाता था अपने गृह का सन्धान; केकारव से गूँजा करती थी अरन्य-भूमि—मृगया समाप्त होने पर हम सब पंचसंगी परस्पर पण करके सन्तरण द्वारा किया करते थे पार पावससौभाग्यगर्व्वस्फीता तरंगिनी! वैसे ही फिर, जी में आता है मृगयार्थ जाऊँ किञ्चित् दूर, यदि आज्ञा दो, प्रिये!

चि०—मृगयाविज्ञ! मृगया जो तुमने की है आरम्भ, पहले वह तो हो ले समाप्त! तब क्या स्थिर तुमने जी में जान लिया यह स्वर्णमायामृगी हो गई आबद्ध! नहीं नहीं, ऐसा नहीं—यह बन्यहरिनी आप रखती नहीं अपने को आबद्ध। न जाने कब यह अचानक छूट जावे स्वप्नवत्। क्षणमात्र की क्रीड़ा के लिए केवल वहन कर सक्ती नहीं कभी चिरदिवस का पाश। वह देखो जैसी हो रही है क्रीड़ा, हवा में, जल में—श्याम आसार चला रहा है सहस्र सहस्र शर हवा की पीठ पै निमेष निमेष। तब भी वह दुरन्ता मृगी उन्मत्ता सी घूम रही है अचला अजेया—तुमसे और हमसे नाथ, इसी भाँति है क्रीड़ा आज वर्षा के दिन; चंचला बनावो लक्ष्य प्राणपण करके—जितना शर जितना अस्त्र होवे तुम्हारे सन्निकट वह सब चलाओ मुझ पर एकाग्र अनुग्रह भर से—घोर घनान्धकार कभी, कभी उज्ज्वल प्रकाश, कभी स्निग्ध शीतल वृष्टिवर्षण, कभी तप्त दीप्त वज्रज्वाला। मायामृगी छूटी हुई है, किन्तु घूम रही है मेघाच्छन्न धरातल में अविराम बाधाविहीन चिरदिवस।

卐 ❀ 卐

मदन वो चित्राङ्गदा

चि०—मन्मथ! न जाने तुमने क्या भर दिया मेरे सिर में, मेरे समस्त शरीर में! तीव्र मदिरा-वत् रक्त सह मिश्रित होकर जो कर रहा है ऐसा उन्माद; अपनी गतिगर्व्वउन्मत्ता मृगी मैं हूँ मुक्तकेशा उच्छ्वसितवेशा; दौड़ती हूँ पृथ्वीतल पर। धनुर्धर घनश्याम

व्याधा का अपने फिराती हूँ पथ पथ वन वन सदा, हँसती हूँ कौतुक की हँसी, निर्दय विजयसुख में—यह क्रीड़ाभंग देते होता है भय—एक दंड भी स्थिर होने पर कहीं क्रन्दन से न यह हृदय पूर्ण होकर हो जावे विदीर्ण !

म०— हाँ ! बिगाड़ना न यह क्रीड़ा; यह क्रीड़ा है मेरी । छूटा करै बान वो टूटा करै हृदय ! हो रही है मेरी मृगया आज—इस अरन्य में, इस नवीन वर्षा में ! श्रान्त कर डाल उसे, कर डाल उसे पदानत, बाँध उसको दृढ़ पाश में, दया न कर रञ्चक—इसीसे जर्ज्जर कर डाल, अमृतगरलपूर्णस्वरवाक्यबाण मारा कर अविराम सदा । लक्ष्य पर दया की कोई विधि नहीं है ।

卐 ॐ 卐

अर्ज्जुन वो चित्राङ्गदा

अ०—कोई गृह तेरा नहीं प्रिये ! जहाँ तेरे प्रिय परिजन रोते हैं तेरे विरहदुःख से ? नित्य स्नेह सेवा से जो आनन्दपुरी रक्खे थी तुझे सुधामय करके; जहाँ का प्रदीप बुझा कर तू चली आई है इस अरन्य में ? अपनी शैशवस्मृति जहाँ रोने जाय, ऐसा कोई स्थान नहीं ?

चि०—प्रश्न कैसा ? तब क्या आनन्द मिट गया ? जो देखते हो, वही मैं हूँ; और कोई नहीं परिचय । सबेरे यही जो किंशुक के एक पत्ते के प्रान्तभाग पर लटक हिल सा रहा है एक शिशिर; कौन नामधाम है इसका ? कौन पूछता है परिचय इसका ? तुमने जिसे चाहा है, ऐसी ही है वो शिशिर की कणा नामधामहीन ।

अ०—उसे क्या कोई बन्धन पृथ्वी पर नहीं ? एक बिन्दु स्वर्ग केवल क्या भूलकर गिर गया है इस धरनीतल पर ?

चि०—नहीं नहीं ! शुद्ध निर्मलगात्र के लिए नन्दनकानन ने अपनी दिव्य उज्ज्वलता दी है इस अरन्य के कुसुम को ।

अ०—इसीसे सर्वदा 'अब गया, अब गया' करके डरा करता है प्राण । होती ही नहीं तृप्ति, आती नहीं शान्ति । सुदुर्लभे ! और सन्निकट आ ! मानव के सदृश—नाम, धाम, गोत्र, गृह, देह, मन, वाक्य, सहस्र बन्धनों में से किसी से तो अब दे धरा । चार

पार्श्व से तुझे करता हुआ स्पर्श निर्भय निर्भर करूँ वास ! नाम नहीं ? तब किस प्रेममन्त्र से अपने हृदयसुमन्दिर में तेरा जप करूँ ? गोत्र नहीं ? तब किस मृनाल से इस कोमल कमल को मैं बद्ध कर रक्खूँ ?

चि०—नहीं, नहीं, नहीं !—जिसे बाँधा चाहते हो, वह जानती नहीं बन्धन ! वो केवल मेघ की स्वर्णछटा है—कुसुमसौरभतरंग की गति ।

अ०—ऐसे को जो चाहता हो, अभागा है वह । प्रेम के हाथ में प्रिये ! दो न आकाशकुसुम । हृदय में रखने योग्य दो कोई धन, रक्खे वहूँ मन में जिसे, सुख में, दुख में, सदा, सुदिन में, दुर्दिन में ।

चि०—अभी तक तो बीता नहीं वर्ष, श्रान्ति क्या मध्य ही में हो गई ? हाय ! अब समझी ! पुष्प, देवताओं ही के आशीर्वाद से है स्वल्प परमायु ! गत वसन्त के यदि असंख्य फूलों के साथ मैं भी झर जाती तो यह मोहन तन आदर से जाता—अब बहुत दिन नहीं पार्थ ! ये कई दिन जो रह गए हैं, इनके आनन्दमधु को निःशेष कर डालो—पान करके पुरा लो अपनी आशा कुतूहल के साथ । इसके पीछे स्मृतिकुहुक में बार बार आना न फिरि फिरि—गत सायङ्काल के वृन्तच्युत धूलिधूसरित माधवी की आशा से आनेवाले भूले भृंग की भाँति ।

卐 ॐ 卐

वनचरगण । अर्जुन

वन०—हाय ! हा ! कौन रक्षा करेगा ?

अ०—क्या हुआ है ?

वन०—उत्तरपर्व्वत से आया है चढ़कर दस्युदल, वर्षा के पार्व्वत्य वन्या की भाँति—लोकालयों के विनाशहेतु !

अ०—इस राज्य का कोई रक्षक नहीं ?

वन०—राजकन्या चित्राङ्गदा थीं दुष्टों की दमनकारिनी, उनके भय से राज्य में और कोई भय नहीं था, यमभय के व्यतिरेक ! मैंने सुना है, गई हैं वह तीर्थनिवासार्थ—लिया है उनने अज्ञात भ्रमनव्रत ।

अ०—इस राज्य की रक्षक रमनी है कोई ?

वन०—एक ही देह से पितामाता दोनों—वह अपनी अनुरक्त प्रजा की हैं। वो हैं स्नेह में राजमाता, वीर्य्य में युवराज। (प्रस्थान)

[चित्राङ्गदा का प्रवेश]

चि०—क्या सोचते हो नाथ ?

अ०—राजकन्या चित्राङ्गदा कैसी है, नहीं जानता मैं; इसीसे सोचता हूँ। नित्य ही सुना करता हूँ शतमुख से उसकी कथा, नई नई अपूर्व्व कहानी !

चि०—कुत्सिता कुरूपा ! ऐसी कहाँ टेढ़ी भौंहें, घनी कहाँ ऐसी कृष्णतारा—सकठिन सबल उसके बाहों ने सीखा है शुद्ध लक्ष्यों का बेधना, बाँध वे सकते नहीं वीरतनु, ऐसे कोमल नागपाश में।

अ०— किन्तु सुना है, स्नेह में तो नारी है वह, वीर्य्य में पुरुष।

चि०—छिः छिः ! यही तो उसका है मन्द भाग्य ! नारी यदि केवल नारी ही रहै, केवल घरनी की शोभा ही रहै, केवल एक प्रकाशमात्र ही रहै ; केवल शत मधुर छलों में, प्रतिक्षण नूतन भंगिमाओं में, सेवा के साथ, सोहाग के साथ, बँधी हुई, जकड़ी हुई रहै; तो सफल है उसका जन्मग्रहण ! क्या होगा कर्मकीर्त्ति, शिक्षादीक्षा, बलवीर्य्य उसे ? पौरुष ! यदि देख पाते कल उसे तुम इसी वनपथ के पार्श्व में, इसी पूर्ना नदी के तीर पर, इसी देवालय में, तो हँस के चले जाते तुम यों ही पार्थ ! हाय हाय ! आज इतनी हुई है अरुचि नारी के सौन्दर्य पर भारी, जो चाहते हो पाना पुरुष का स्वाद !

आओ नाथ ! आओ ! वह देखो, घनी छाया पड़ी हुई शैलगुहामुख पर, बिछा रक्खी है अपनी मध्याह्नशयनहेतु शय्या; कच्चे कच्चे पीत श्याम किसलयों से, झरन के शीकरनिकर में उनको आर्द्र कर।

घने पल्लवों की छाया में बैठा क्लान्तकंठ रोता है कपोत 'वेला जाय' 'वेला जाय', कलकलनिनादिनी नदी बही चली जाती है—अर्धजलमग्न शिलाखंड पर वो सरस शैवाल पड़ा हुआ है; जैसे निद्रावेश अर्धविकच नयन चूमते हों अधरपल्लव—आओ नाथ ! चलो, चलें विरल विरामार्थ !

अ०—प्रेयसि ! आज नहीं !

चि०—क्यों नाथ ?

अ०—सुना है, दस्युदल आया है नगर नाशने। भीत जनों की करूँगा रक्षा।

चि०—कोई भय नहीं है प्रभो! तीर्थयात्रा ही के समय में राजकन्या चित्राङ्गदा चतुर्दिक् सतर्क प्रहरीस्थापन कर गई है—विपद् के जितने पथ थे सब बन्द कर गई है—बड़ी सतर्कता से।

अ०—तथापि आज्ञा दो प्रिये! अल्पकाल कर आऊँ कर्त्तव्यसन्धान; बहुत दिनों से हो रहे हैं अलस ये क्षत्रिय के बाहु—इसी मध्य में इन क्षीणकीर्त्ति भुजाओं को पुनर्व्वार नव-गौरव से भर लाकर रख दूँ तेरे मस्तक के तले—तव योग्य उपाधान!

चि०—यदि न जाने दूँ? यदि बाँध रक्खूँ तुम्हें? क्या छुड़ाकर चले जाओगे? तब जाव! किन्तु याद रक्खो, टूटी हुई लतिका में गाँठ लगती नहीं कभी! यदि हो गई हो तृप्ति, तो चले जाव; मैं नहीं रोकूँगी। यदि तृप्ति नहीं हुई हो, जान लो, यह सब सुखलक्ष्मी चंचला है, रहती नहीं बैठी कभी किसी की हो के—किसी की वह सेवादासी नहीं है; उसी की सेवा सब करते हैं नरनारी! अति डरे डरे रखते हैं आँखों आँखों में उसे—जबतक रहती है वह प्रसन्न। छोड़ जाओगे जाने के समय एक कलिका, जिसको—आने पर कर्म्मक्षेत्र से सायङ्काल को—पाओगे, उसके दल सब विकसित होकर झरे पड़े हैं भूमितल पर। सारा कर्म जान पड़ेगा मन में व्यर्थ; चिर दिवस रहेगी जीवन से लगी—जीवन्त अतृप्ति क्षुधातुरा। आओ, नाथ! बैठो! आज क्यों हो तुम ऐसे अन्यमना? किसकी बातें सोचते हो? चित्राङ्गदा की आज? उसका ऐसा भाग्य?

अ०—सोचता हूँ, उस वीराङ्गना ने किसके लिए लिया है यह दुष्कर व्रत? उसको अभाव है किसका?

चि०—उसको अभाव है किसका? था ही क्या उसे? उसका वीर्य्य अभ्रभेदी दुर्गम दुर्ग की भाँति रक्खे था—चतुर्दिक् रुद्ध करके रोरुद्यमान रमनीहृदय! रमनी तो स्वभावतः ही है अन्तरनिवासिनी; अपने में भी आप छिपी ही रहती है; कौन उसे देख सक्ता है?—यदि उसके हृदय का प्रतिबिम्ब उसके बाह्यिक रूप पर न पड़े! उसको अभाव है किसका? निर्व्वापित अरुनलावन्यलेखा उषा के सदृश जो सुरमनी अपने शतस्तर-तिमिर में छिपी बैठी रहे वीर्य्यशैलश्रृंगों पर एकाकिनी, क्या अभाव उसे! बस करो, अब बस उसकी कथा। पुरुषश्रवनसुमधुर नहीं है उसका इतिहास!

अ०—कहो, कहो, श्रवनलालसा क्रमशः बढ़ी है मेरी ! हृदय उसका अनुभव हृदय में कर रहा है, जैसे मैं पथिक हूँ कोई, प्रवेश करता हूँ जाकर कहीं किसी अपरूप देश को अर्ध-रजनी बीते, सुप्तिनिमग्न नदी, अचल शस्यक्षेत्र, शुभ्रसौधकिरीटिनी उदार नगरी छाया सम अर्धस्फुट देख पड़ती है; सुना पड़ता है सागरगर्ज्जन। प्रातप्रकाश से मानों सुविचित्र विस्मय के साथ विकसित हो उठेगा चतुर्दिक्, प्रतीक्षा कर रहा हूँ उसकी उत्सुक होकर। कहो प्रिये ! सुनें उसकी कथा !

चि०—और क्या सुनोगे ?

अ०—देख तो पाता हूँ उसे अश्वारोहिनी वाम कर में बल्ला लिए, दक्षिण में शरासन, जैसे नगर की विजयलक्ष्मी दुःखार्त्त प्रजासमूह को करती है वराभयदान। दरिद्र के सङ्कीर्ण द्वार पर, जहाँ नत होती है राजा की महिमा, जिसको प्रवेश करते माता की मूर्त्ति धरे कर रही है वहाँ दयावितरन—सिंहनी की भाँति चारों ओर से अपने बच्चों की रक्षाविधा में तत्परा; शत्रुभय से आता कोई नहीं; फिरती है मुक्तलज्जा निःशङ्का प्रसन्ना—वीर्य्यसिंहआरोहिनी जगद्धात्री दया। रमनी के कमनीय दोनों बाहों पर स्वाधीन असंकोच बल के सम्मुख तो तुच्छ से भी तुच्छ कंकन किंकिनी काञ्ची। आओ वरारोहे ! बहु दिन कर्म्महीन रहने से प्राण अशान्त हो हो जाता है—दीर्घ-शीतसुप्तोत्थित काकोदरवत। आओ, आओ, दोनों दो मत्त अश्व लेकर साथसाथ दौड़ाते चलें महावेग से दो प्रदीप्त ज्योतिष्क के सदृश। निकल चलें—इस रुद्धसमीरन इस तिक्तपुष्पगंधासव घनघोरनिद्रामग्न अरन्यानीअंधकारगर्भ से बाहर।

चि०—कौन्तेय ! यह लालित्य—यदि यह दुर्ब्बलतास्पर्शक्लेशसकातर शिरीषपल्लव—फेंक दिया जावे घृना के मारे पृथ्वी पर पराए वसनखंड सम, तो वह क्षति क्या उठा सकोगे ? कामिनी की छलनाकला दूर करके यदि उठ खड़ी हूँ, सरल उन्नत वीर्य्यवन्त अन्तर के बल से—पर्व्वत के तेजस्वी सुतरुन तरुवर के सदृश; किन्तु वायुनम्र ललित लतिका की भाँति नहीं कुंठित लुंठित नित्य—वह क्या रुचेगा पुरुषनेत्रों को ! रहने दो, उससे यही है अच्छा। अपने दो दिन के इस बहुमूल्य धनयौवन को सयत्न सजाए पथ देखती बैठी रहूँगी। आओगे जब, अपनी सुधा अपने देहपात्र में आकण्ठ पूर्ण कर कराऊँगी पान। सुखस्वादश्रान्त होने पर चले जाना तुम कर्म्मसन्धानार्थ;

पुरातन होने पर मेरे, मुझे जहाँ दोगे स्थान, वहीं रहूँगी पड़ी, अपना बहुभाग्य मानि। निशामर्मसहचरी यदि दिवाकर्म्मसहचरी होवै; वाम कर सा अनुचर ही रहे अनुचर; लगेगा यह अच्छा क्या वीरहृदय को ?

अ०—आता नहीं बुद्धि में कुछ तेरा रहस्य। इतने दिन हुए, किन्तु तेरा सन्धान मैंने नहीं पाया! गुप्त रहकर तुम जैसे मुझको वंचित किया करती हो। इसीसे मेरा प्रेमोच्छ्वास तेरे अतुल रूप में मिलकर झुक जाता है—मानों मर जाता है, जिससे आता नहीं फिर के। तुम मानों देवी के सदृश प्रतिमा के अन्तराल से देती हो अमूल्य चुम्बन-रत्न आलिङ्गनसुधा; स्वयं तुम कुछ चाहती नहीं, लेती नहीं! यह अंगहीन छन्दहीन प्रेम प्रतिक्षण परिताप जगाता है अन्तर में। तेजस्विन्! तेरा परिचय पाता हूँ तेरी बातों बातों में। तेरे सन्मुख तेरा यह सौन्दर्य्यराशि बोध पड़ता है एक निपुनचित्रित मृत्तिकामूर्त्ति—केवल शिल्पजवनिका। बीचबीच में जाना जाता है, जैसे तेरा रूप तुझे अब और कर सक्ता नहीं धारन! काँप रहा है थरथर! नित्यदीप्त हँसी में जैसे करता है निवास पूर्ण अश्रु। बीचबीच में बोध होता है जैसे फट पड़ेगा छन भर में छिन्न कर यह क्षीन आवरन। साधक के पास आती है प्रथम भ्रान्ति मनोहर काया धरे; पश्चात् आता है दृष्ट सत्य भूषनविहीन रूप में अन्तर बाहर प्रकाश करता हुआ। कहाँ है वही सत्य तुम्हारा? दे दो उसे मुझको। मेरा सत्य ले लो तुम—भ्रान्तिहीन है वो मिलन चिर दिवस का! अश्रु क्यों प्रिये? हाथ से छिपाकर आनन, यह कैसी व्याकुलता? वेदना दी क्या प्रियतमे! तब रहे, तब रहे वह मनोहर रूप मेरा पुण्य-फल। वो जो संगीत सुनाई देता है बीचबीच में, वसन्तसमीर द्वारा यौवनयमुना के पर पार का, इसीको मैं समझता हूँ अपना उच्च भाग्य।—यह वेदना मेरी, सुख से अधिक सुख है; आशा से अधिक आशा—हृदय से बड़ा। इसीसे वह हृदयवेदना सा बोध होता है मुझे, ललने!

卐 ❀ 卐

मदन । वसन्त । चित्राङ्गदा

म०—शेष रात्रि आज !

वस०—रात्रिअवसान पर तेरी अंगशोभा लौट जायगी वसन्त के अक्षय भांडार में—अर्जुन की चुम्बनस्मृति को भूलकर तेरा अधरराग दो नवीन किसलयों में चला जावैगा; निकलेगा लतिका की मंजरी होकर। तेरे अंग का वर्ण शतशत श्वेत पुष्पों में बँटकर पकड़ैगा नूतन तनु—भूल जायगा गत जन्म की कथा को स्वप्नवत्, अपने नव-जागरन में।

चि०—हे अनंग ! हे वसन्त ! आज रजनी में, तब मेरा यह मुमुर्षु सौन्दर्य्य शेष रात्रि के खिन्न प्रदीप की अन्तिम शिखा की भाँति जगमगा उठै—उज्ज्वलतम होकर !

म०—तथास्तु !

सखे वसन्त ! दक्खिन पवन तब भर दो फूँक करके प्राणपूर्ण वेग से—सब अंग में पुनर्व्वार उच्छ्वसित होने लगे नवीन उल्लास से सुयौवन का क्लान्त मन्दीभूत स्रोत। मैं अपने पंचपुष्पशरों से निशीथ का निद्राभेद कर भोगवती तटिनी के तरंगउच्छ्वास से प्लावित कर दूँगा बाहुपाशबद्ध युगलआलिंगिततनु।

शेष रात्रि

अर्जुन । चित्राङ्गदा

चि०—प्रभो ! मिट गई न साध ? इस ललित सुगठित नवीन कोमल सौन्दर्य्य की जितनी गंध—जितना मधु था, किया है पान ! और भी कुछ शेष है ? और क्या चाहिये ? मेरा जो कुछ था, वो सब हो गया शेष ?—हुआ नहीं प्रभो ! अच्छा हो, बुरा हो—अभी और भी कुछ है; वह दूँगी आज तुम्हें ! प्रियतम ! अच्छा लगा था—समझ कर किया था निवेदन चरनकमलों में, यह सौन्दर्य्यपुष्पराशि नन्दनवन से लाई हूँ बड़ी बड़ी साधनायें करके। यदि आज्ञा करो प्रभो ! निर्म्माल्य की डाली अब फेंक दूँ मन्दिर के बाहर। देखो सेविका की ओर होकर प्रसन्न ! जिस फूल से मैंने पूजा की थी उस फूल के सदृश मैं नहीं हूँ सुमधुर—न उतना कोमल, न उतना पूर्ण सुन्दर।

दोष है, गुण है; पाप है, पुण्य है; कितने दैन्य हैं! आजन्म की कितनी अतृप्त तृषा है? संसारपथ का पाश, धूलिविलिप्त वास, विक्षतचरण—मैं कहाँ पाऊँगी कुसुम-लावन्य—दो दंड जीवन की अकलंक शोभा! किन्तु अमर अक्षय एक है रमनी का हृदय! दुख सुख आशा भय लज्जा दुर्बलता—धूलिमई मही के अंक की सन्तान—उसमें कितनी भ्रान्ति, कितनी व्यथा, कितना प्रणय, मिश्रित जड़ित हो रहे हैं एक साथ! है एक सीमाहीन अपूर्वता, अनन्त, महत्। कुसुमसौरभ यदि मिल गया होवै, तो देखो इस अपनी जन्मजन्मान्तर की सेविका को दिशि—नाथ! प्रसन्न चक्षु से!

卐 ♣ 卐

सूर्य्योदय

चि०—(अवगुंठन खोलकर) प्रभो! मैं चित्राङ्गदा हूँ राजेन्द्रनन्दिनी! याद होगा तुम्हें, एक दिन सरोवर के तीर के शिवालय में कोई रमनी मिली थी तुमसे जाकर—आभरनों से अपना रूपहीन अंग भाराक्रान्त कर। क्या जाने क्या बोली थी वो निलज्जमुखरा; पुरुष की पुरुषप्रथा में उसने की थी आराधना; लौटा दिया था तुमने उसे—अच्छा ही किया! सामान्य रमनीरूप में यदि तुम ग्रहन करते उसको, तो अनुताप से तपा करता आमरन उसका हृदय। नाथ! मैं वही नारी हूँ, तथापि मैं वही नारी नहीं हूँ। वो मेरा एक हीन छद्मवेश था। तत्पश्चात् मिला था मुझे वसन्त के वर से एक वर्ष-पर्य्यन्त के लिए अपरूप रूप—वो भी मैं नहीं हूँ। प्रभो! मैं चित्राङ्गदा हूँ; मैं देवी नहीं हूँ; मैं सामान्या रमनी भी नहीं हूँ। पूजा करके सर पर रक्खो, मैं वह भी नहीं हूँ; अवहेला करके मुझे छोड़ दो पीछे, मैं वह भी नहीं हूँ। संकट के पथ में यदि मुझे अपने पार्श्व पार्श्व रक्खो, दुरूह चिन्ता में अपनी यदि मुझे अंश दो, आज्ञा दो मुझे यदि अपने कठिन व्रत में सहाय होने की, रक्खो बनाकर यदि सहचरी मुझे सुख की दुख की—तब मेरा पाओगे परिचय। गर्भ में जो सन्तान तुम्हारी मैं धारण किए हुई हूँ, यदि पुत्र हुआ वो, आशैशव वीरत्वशिक्षा देकर उसे जब द्वितीय अर्ज्जुन बनाकर पिता के चरणों में भेज दूँगी, तब ही जानोगे मुझे प्रभो! आज केवल यही निवेदन करती हूँ प्रभो! मैं चित्राङ्गदा हूँ राजेन्द्रनन्दिनी।

अ०—हृदयेश्वरि! मैं आज धन्यधन्य हुआ!

卐 ♣ 卐

वीरबाला





श्रीमान् कुमार राजीवरंजनप्रसादसिंह, एम. ए., एम. एल. ए. (सूर्यपुरा-रियासत, शाहाबाद)

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[महाराज चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलीपुत्र—अन्तःपुर]

(दिगम्बरी और चन्द्रगुप्त)

चं०—मा ! मुझे किस लिए बोलाया ?

दि०—बेटा ! एक ऐसा कुस्वप्न देखा है जिससे चित्त अति व्याकुल हो रहा है, इसी हेतु—

चं०—(सहास्य) कैसा स्वप्न देखा है—आज्ञा कीजिए ।

दि०—जगदीश्वर जानते हैं, मैं तो किसी की कभी अमंगलचिंतना नहीं करती ।— (क्रन्दन)

चं०—मा ! तो स्वप्न से इतना भय क्यों ? स्वप्न में राजा होने से क्या कोई सचमुच राजा ही हो सक्ता है ?

दि०—बेटा ! शुभ स्वप्न तो फलीभूत नहीं होते । किन्तु कुस्वप्न ही प्रायः फलते हैं । हमने एक बार और स्वप्न देखा था । जो देखा था सोई हुवा । उसी के बाद तुम्हारे पिता का काल हुवा और राज में भी महाविपत्ति उपस्थित हुई ।

चं०—न न, आप कुछ भय न करें, तथापि आपने क्या स्वप्न देखा है, जरा हम भी तो सुनें !

दि०—स्वप्न में देखा है (अंचल से आँखों का जल पोंछते हुवे) कि तुमने मानों एक सिंह के साथ युद्ध किया है । सिंह गरजगरजकर तुम्हें आक्रमण करता है और तुम्हारे अस्त्राघात से आहत होकर फिर सगर्ज तुम पर आघात करता है । सिंह का शरीर भी रक्तप्लुत, तुम्हारा शरीर भी रक्ताक्त अवशेष, तुमुल संग्राम के उपरान्त सिंह तुमसे हार मान के भाग गया । मैं मानों रोती थी और तुम्हारा क्षतविक्षत रक्तारक्त कलेवर धोती थी , इसी क्षण में पक्षियों का कलरव आरंभ हुवा, मैं जग उठी, देखा तो प्रभात हो गया है । छाती धड़धक करने लगी ।

चं०—(स्वगत) माता ने जो स्वप्न में देखा है सो तो मिथ्या नहीं है, महाशत्रु उपस्थित ही है जो बलवान सिंह की अपेक्षा भी महाबली है ।

दि०—बेटा ! तुम्हीं कहो, क्या मा का कलेजा ऐसा स्वप्न देखकर सुस्थिर रह सक्ता है ?

चं०—मा ! स्वप्न तो कुछ है नहीं, आप कुछ चिन्ता न करें । मैं जाता हूँ । (प्रस्थान)

दि०—(ऊर्ध्वमुख कृताञ्जलिपुट होकर प्रणामपूर्वक) ईश्वर ! तू ही जानता है । (दीर्घनिश्वासपरित्याग)

द्वितीय दृश्य

[राजसभा—चन्द्रगुप्त व पारषद्‌वर्ग उपविष्ट]

चं०—राज में शत्रु ने प्रवेश किया है। अब तुमलोगों के निश्चिन्त रहने का समय नहीं। तुमलोग महावीर सिकन्दरशाह को जानते हो ?

१ पा०—हाँ, आज्ञा हो।

चं०—उन्हीं के दक्षिणहस्तस्वरूप महाबली शैलवच्च दिग्विजयार्थ गृहद्वार ही पर उपस्थित है।

२ पा०—महाराज, आर्यशक्ति के सामने शैलवच्च हो या लौहवक्ष हो, मुहूर्त भर में चूर्णीकृत हो जाएगा। उसने तो छलबल से दो एक निर्वीर्य राज्य जय करके इसको भी भीरु राज्य समझ लिया है। परन्तु—

चं०—(सप्रसन्नवदन) वाहवाह, यही बात तो आर्यसन्तानों के उपयुक्त है। मुझे तो दर्पवाक्य और वीरवाक्य सदा ही प्रिय है। मैं जानता हूँ कि आर्यभूमि वीरपुत्रों की कंगालिनी नहीं है। म्लेच्छपदाघातद्वारा मातृभूमि कदापि कलंकित न होगी।

पारषद्‌वर्ग—(उत्साह से स्फीत होकर) महाराज ! आज्ञा हो तो म्लेच्छकीट को अभी इसी दम युद्धानल में भस्मीभूत कर दें।

चं०—तुमलोगों की ए साहसयुक्त आशा उद्रेककारिनी है। मैं तो तुमलोगों के बलद्वारा, तुच्छ शिलबच्छ क्या है, समस्त भुवमंडल को भी सागरागर्त्त कर सक्ता हूँ। इस समै व्यस्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, समै पर तुमलोगों को ऐसा ही रणप्रिय देखें।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—(प्रणामपूर्वक) महाराज ! दिग्विजयी शिलबच्छ का दूत महाराज से साक्षात् होने की चेष्टा प्रकाश करता है।

चं०—(सभासदों से) देखा ? (प्रतिहारी से) अच्छा, आने दो।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

१ पा०—म्लेच्छदूत यदि कोई विरुद्ध अभिप्राय प्रकाश करे तब तत्काल ही उसका मुंडच्छेद करना होगा।

२ पा०—उसको भाई, क्या कहना है ?

३ पा०—आह, आर्यभूमि में म्लेच्छ का पद आता है !

चं०—(सहास्य) तुमलोग जैसा समरप्रिय और जयलुब्ध हो, बोध होता है, तुम्हीं लोगों की बदौलत अथवा उसी की बदौलत यह घटना घटी ।

(प्रतिहारी के साथ दूत का प्रवेश)

दू०—राजन्, महाराज सिल्यूकस आपके द्वार पर अतिथि होकर आए हैं, आपने उन्हें एक बार पूछा तक नहीं ?

चं०—(दूत से) बैठो ।

दू०—(सम्भ्रमपूर्वक बैठकर) सिल्यूकस का किस लिए इस दूर देश में आना हुआ है, आपसे सविशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं । वह दिग्विजयप्रिय एवं समरप्रिय हैं । उन्होंने अनेक राजधानियों में अपनी विजयपताका उड़ायी है, अनेक राजाओं के बल की परीक्षा ली है ।

चं०—अच्छा, अब अपना उद्देश्यज्ञापन करो, जरा उसे भी तो सुनें ।

दू०—सिल्यूकस ने मुझे यही कहकर भेजा है कि तुम जाकर महाराज छान्द्राकोटस को मेरी तरफ से मेरा अभिवादन जनाकर कहना कि मैं विजयप्रिय वो समरप्रिय हूँ । या तो वे मेरे संग जुद्ध करके देश की रक्षा करें या आत्मसमर्पण करें ।

चं०—(सक्रोध) तुम दूत हो, विशेषतः एकाकी आए हो, न तो अभी तुम्हारा मुंडच्छेद कर डालता । जाओ, जाकर अपने प्रभु से कहो कि यह आर्यस्थान है, यह शृगालों की वासभूमि नहीं ! यहाँ सिंह राज्य करता है । चिरकाल से हमलोगों की खरशाण तलवार शुष्ककंठ हो रही हैं । अबकी बार सहर्ष म्लेच्छशोणित से उनकी पिपासा मिटाऊँगा । आर्यसंतानगण के तुल्य समरप्रिय संसार में कोई नहीं है ।

दू०—महाराज, अनेक देशों के राजाओं ने पहले ऐसा ही वीरवाक्य सुनाया था; किन्तु महावीर सिल्यूकस बातों से डर जानेवाले लोगों में नहीं हैं, अन्त में सब ही का दर्प चूर्णित हुआ ।

चं०—तू दूत है, तेरे साथ वादानुवाद करना मूर्खत्व और नीचत्व है । मेरे सामने से दूर हो !

दू०—क्या ? मैं महावीर सिल्यूकस का दूत हूँ, क्या आपने मेरा अपमान किया ?

चं०—तेरा परोचित सत्कार हुवा है । जा, दूर हो !

१ पा०—म्लेच्छ का मानअपमान क्या ?

दूत—(सक्रोध) महाराज, तब मैं जाता हूँ ।

चं०—हाँ, सिल्यूकस से जाकर कहना, अबकी बार म्लेच्छशोणित से भारतभूमि और भी शस्यशालिनी होगी ।

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

[पर्वतपार्श्व में शिलवच्छ का शिविर—शिविराभ्यन्तर एक गृह]

(शिलवच्छ, वीरबाला, दामिनी और कुशला बैठी हुई हैं)

वी०—पिता, इस प्रान्त के पर्व्वत कैसे सुन्दर हैं ! इतनी जो फूलों की सुगन्ध आ रही है, क्या यह वाटिकाओं के फूलों की है ? और ये फूल कहाँ से आए ? (तोड़े हुए फूलों को देखकर)

शि०—पुत्री, यह देश अत्यंत मनोरम है और यहाँ की मृत्तिका से सोना उत्पन्न होता है। यहाँ के लोग बिना परिश्रम सुख भोगते हैं। ये फूल भी किसी वाटिका के नहीं हैं, ये वनसुमन हैं, आपसे आप कितने सुगंधित पुष्प विकसित होते हैं और कितने वृक्ष उत्पन्न होते हैं। यह स्वाभाविक वाटिका है, मनुष्य की नहीं। न तो इतने प्रसून क्या कोई किसी वाटिका से लावेगा ? वाटिका में भला कितने पुष्पवृक्ष होंगे ?

वी०—पिता ! ऐसा सुस्वादु मधुर फल तो मैंने कभी नहीं खाया था, यह वनफल क्यों कहलाता है ?

शि०—पुत्री ! क्या किसी बाग में भी ऐसे फल उत्पन्न होते हैं ? ए सब वनफल हैं !

वी०—पिता, हमलोग इसी स्थान में क्यों नहीं निवास करते ? मेरी यही इच्छा है कि इसी निर्ज्जन स्थान में निवास करें, वनफल खाएँ और झरना का शीतल जल पान करें।

शि०—क्या तुम्हें निर्ज्जन वन अति प्रिय है ?

वी०—पिता, आपके संग में रहने से केवल सैन्यगण का कोलाहल, अस्त्रों की झनझनाहट, मुमुर्षु का आर्त्तनाद, भेरियों का भैरवनाद, जयवाद्य, यही सब सुन पड़ता है। यह तो

अब मुझे अच्छा नहीं लगता। इसी हेतु मेरी अब यह इच्छा है कि जहाँ कलह न हो, वहीं निवास करें।

शि०—(दामिनी और कुशला प्रति) मेरी पुत्री की बात सुनती हो ? (हास्य, और वीरबाला के प्रति) अच्छा, तो तुम्हें इसी देश के किसी राजपुत्र के हस्त में अर्पण कर दें, क्यों ?

वी०—(लज्जित होकर) माता, चलो तो एक मर्तबा उस झरना के किनारे। देख आवें कि कैसा कलकल करता हुआ अनवरत जल आ रहा है।

(दूत का प्रवेश)

शि०—(कौतुकपूर्वक) क्या समाचार है ?

दू०— (सविषाद) छान्द्रकोलस को शीघ्र उपयुक्त दंड देना उचित है। मैं जहाँजहाँ गया था वहाँवहाँ आपके नाम से राज्य कम्पित हो जाता था और स्वयं राजा मेरा कितना सन्मान करता कि मैं क्या कहूँ। परन्तु यहाँ तो मेरी बातों को राजा ने दिल्लगी में उड़ा दिया और मेरा अनेक अपमान किया।

शि०—क्या ? अपमान ! यह क्या ?

दू०—और अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? मेरी ऐसी दुरवस्था कहीं नहीं हुई थी।

शि०—(सोचकर) अच्छा, राजा की क्या वयस है ?

दू०— पच्चीस से अधिक नहीं है।

शि०—देखने में कैसा है ?

दू०— देखने में हमारे देश की अपेक्षा सबसे सुन्दर, बलवान और सुचतुर बोध होता है।

शि०—जिस समै तुमने उससे मेरा संवाद कहा, उस समै कुछ भी भय का लक्षण उसके मुख पर देखा ?

दू०— भय तो अलग रहे, और भी हर्षयुक्त देखा ! उसके मुख पर किंचिन्मात्र भी भयचिन्ह नहीं मालूम हुआ, वरंच युद्धकथा सुनकर उसके वदनमंडल से आनन्द की लहरें उठने लगीं।

शि०—(अंगुली चबाते चबाते) सैन्य और सभासदों को कैसा पाया ?

दू०— युद्धकथा से किसी का वदन अप्रसन्न नहीं देखा, सब के सब तेजयुक्त सिंहसमान बलवान और निर्भय थे।

शि०—राज्य का प्रबंध कैसा है ?

दू०— कुछ भी किसी बात में त्रुटि नहीं ।

वी०—पिता, यह किस देश का राजा है ?

शि०—इसी राजा के साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे, क्यों ? (हास्य)

दू०— (वीरबाला प्रति) इसी राजा का मुंडच्छेद करके तुम्हारे पाँव तले रक्खा जायगा ।

(खिलखिल का हास्य)

वी०—(विकृतवदन और अधोदृष्टि) माता, चलो, उस झरना की धारा को चलकर देख आवें ।

दा०—अब आज नहीं, कल चलेंगे ।

शि०—(दूत प्रति) अब इस समै निश्चिन्त रहना उचित नहीं है । तुम्हारे वाक्यों से मुझे ठीक विश्वास होता है कि यह लोग साधारण व्यक्ति और नितान्त शृगाल नहीं हैं । अब और उनके निकट कोई संवाद देने की आवश्यकता नहीं है । हठात् एक दिन आक्रमण करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है ।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रति०—एक अश्वारोही छान्द्रकोलस महाराज के निकट से आया है ।

दू०— (आनंदित होकर) अब इस समै सोचने से ज्ञात होता है । संधिप्रस्तावनहेतु निश्चय ही आदमी भेजा है ।

शि०—विशेष बढ़बढ़कर न बोलो । क्या वह ऐसे सहज ही सन्धि के लिए किसी को भेजेगा ? बोध होता है, वह युद्धसंवाद देने आया है । (प्रतिहारी के प्रति) जाओ, उसे यहाँ भेज दो ।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

दू०— महाराज, मेरा अनुमान मिथ्या नहीं हो सक्ता ।

शि०—तुम दूतत्व के लिए सम्पूर्ण रूप से अयोग्य हो—तुम प्राचीन हो—विशेषतः महावीर अलेकजेंडर के समय के, नहीं तो तुम्हारे गुण का कोई अनुरोध नहीं है ।

(आर्यदूत का प्रवेश)

शि०—(ससम्भ्रम हस्तधारणपूर्वक) बैठिये ।

आर्य्यदूत—आप विजयवासना करते हैं—युद्ध हो या आत्मसमर्पण—इन्हीं दो में से कोई एक

वस्तु आप चाहते हैं। हमलोगों की भी चिरन्तन प्रथा यही है। हमलोग कभी आत्मसमर्पण नहीं कर सकते—अतएव युद्धव्यतिरिक्त आपकी मनस्तुष्टि का कोई और उपाय नहीं है। आप युद्ध के लिए कब प्रस्तुत होंगे, महाराज ने यही जानने के लिए मुझे आपकी सेवा में भेजा है।

शि०—(सहास्य) हठात् आक्रमण नहीं करने से आपके महाराज की जयआशा बहुत है।

आ० दू०—हमलोग अस्त्रहीन योद्धा और अप्रस्तुत शत्रु के साथ युद्ध नहीं करते।

शि०—(चिन्तापूर्वक) अच्छा, आप इसी हेतु आए हैं तो जब समय होगा तब हम भी युद्ध का संवाद महाराज के निकट प्रेरित करेंगे।

(आर्य्यदूत का प्रस्थान)

शि०—(दूतप्रति) देखा, आर्य्यस्थान कैसा सुसभ्य है ? इनका व्यवहार कैसा ! देखा ? इस समै स्वातिरक्षा करना सहज व्यापार नहीं है। तुम देखना, निश्चय ही विषम समरानल प्रज्वलित होगा।

(प्रतिहारी का पुनःप्रवेश)

प्रति०—सिन्धुपति आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

शि०—(सहर्ष) क्या ? देवपाल आए हैं ? जाओ, शीघ्र उनको ले आओ।

(प्रतिहारी, वीरबाला, दामिनी और कुशला का प्रस्थान)

(सिन्धुपति देवपाल का प्रवेश)

शि०—(हस्तधारणपूर्वक) आइए आइए, आपने तो कुछ पहले ही आने को कहा था।

देव०—हाँ ! कुछ विशेष कारन था—यहाँ की क्या अवस्था है ?

शि०—आन्ध्रकोतस युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। सहज की उनके आत्मसमर्पण करने की कोई आशा नहीं है।

दे०—सहज ही नहीं तो असहज तो करेंगे !

(दोनों हँसते हैं)

शि०—आपके साथ जो बातचीत हुई थी—आप स्मरण करें—आप उसे प्रतिपालन तो कीजिएगा न ?

दे०—मैंने जो आपसे कहा था वह आपको याद तो है न ?

शि०—पहले आपका काम, पीछे मेरा—

दे०—अवश्य।

शि०—आपका सैन्य कहाँ है ?

दे०—अधिकांश तो साथ ही है और शेष घर पर।

शि०—तब आप अब विलंब न करें। समस्त सैन्य को संग्रह करके कर्त्तव्य कार्य्य में प्रवृत्त हूजिए। और कार्य्य समाप्त होने तक स्वीय विश्वास निमित्त आपको अपना पुत्र यहाँ रखना होगा।

दे०—(कुछ चिन्ता करके) अच्छा, ऐसा ही होगा। शिशुपाल को थोड़े ही दिनों में आपकी सेवा में भेजूँगा।

शि०—यह नहीं होने का, पहले उसको यहाँ बोलवाइए।

दे०—क्या आपको मेरे कहने का विश्वास नहीं है ?

शि०—'विश्वास' 'अविश्वास' की कोई बात नहीं है—हमलोगों की कार्य्यप्रणाली ही यही है।

दे०—अच्छा, तो आज ही उसे लाने को किसी को भेजता हूँ।

द्वितीय दृश्य

[झरना के पार्श्व में उपवन; वीरबाला और कुशला आती हैं]

वी०—ओ कुशला, देखती हो, यहाँ कैसी सुन्दर शोभा है ! इधर नील गगन झुका पड़ता है, और कलकल शब्द से इस क्षुद्र पर्वत के नाभिदेश में अनवरत जल पड़ रहा है, वनपुष्प और वनपच्छियों का अन्त नहीं है, इधर पुष्पों की सुगंध उधर पच्छियों की सुकंठध्वनि। यहाँ मनुष्यों का कोलाहल कुछ भी नहीं है, कैसा निस्तब्ध, निर्जन और मनोरम स्थान है !

कु०—अच्छा, तो तुम्हें तो यहीं रहना होगा, चचा तो तुम्हारा विवाह यहीं कर देंगे, उन्होंने तो कहा ही है। तुम्हारी मनोवाञ्छा तो सभी पूर्ण होगी। तुम यहीं रहकर नित्यनूतन क्रीड़ा देखा करोगी ! (हास्य)

वी०—.........

कु०—.........

वी०—अच्छा बहिन, एक आश्चर्य की कथा तो सुनो, मैंने तो कभी उस राजपुत्र को देखा भी

नहीं और मैं कभी उसकी चिन्ता भी नहीं करती, तब भी उसको स्वप्न में देखा, यह क्यों ?

कु०—(हास्यपूर्वक) चच्चा ने तो कौतुक से ऐसा कह दिया था, और तुम सर्वदा उसी राजा का ध्यान धरे रहती हो, क्या सत्य ही है कि तुम्हारा विवाह उसी के साथ होगा ?

वी०—हटो बहिन, तुम तो हमसे ठट्ठा करती हो, अब मैं न बोलूँगी ।

कु०—नहीं बहिन, तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ, कहो, अब मैं कौतुक नहीं करूँगी—कहो ।

वी०—तब कहती हूँ । देखा, मानों राजा मेरे शिविर में आए हैं ।

कु०—वयस क्या है, और देखने में कैसे हैं ?

वी०—सब कहती हूँ, सुनो, वयस और क्या, युवा पुरुष···

कु०—·········

वी०—नहीं, पिता के साथ कुछ वार्त्ता कर रहे थे, उसी औसर में वहाँ गई ।

कु०—इसके उपरांत क्या हुवा ?

वी०—·········

कु०—तू आज बोलने में इतना संकोच क्यों करती है ? क्या उसी राजा से बोलती है जो इतना लज्जित होती है ?

वी०—(कुछ कोधप्रकाश करके सहास्य) चल, तू कुछ भी करेगी, अब मैं नहीं कहूँगी ।

कु०—कह, अब मैं कुछ नहीं कहूँगी ।

वी०—तिसके बाद और क्या, राजा मेरे मुख को देखकर हँसने लगे, और पिता से पूछने लगे कि आपकी कन्या की क्या वयस है ?

दामिनी—पंद्रह । (हास्य)

वी०—(लज्जित होकर अस्फुट स्वर से) कुशला, यह देख, माय सब सुन रही है !

दा०—(संमुख आकर) पुत्री, मैंने तो सब सुन लिया ! (हास्य)

कु०—चाची !

वी०—(भ्रुकुटीकुञ्चनपूर्वक) तू तो बड़ी—

दा०—इस समै चलो, बहुत देर से आई हो ।

(सब जाते हैं)

卐 ♣ 卐

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

[दुर्गाभ्यन्तर—एक पार्श्व में आर्यसैन्यगण; दूसरे पार्श्व में महाराज चन्द्रगुप्त]

चं०—सैन्यगण, महावीर शिलबच्छ का असीम प्रताप और आश्चर्य्यप्रद युद्धकौशल तुमलोगों को अविदित नहीं है। कल तुमुलसंग्रामानल प्रज्वलित होगा। आर्य्यकुल के गौरव तुम्हीं लोग हो, तुम्हीं लोग भारत के प्रियपुत्र हो। भारत को जो आशाभरोसा है, केवल तुम्हीं पर है। देश के हितार्थ और पराये सुखार्थ जो शरीरत्याग करता है वह स्वर्ग को चला जाता है; इस लोक में यशी होता है और परलोक में अक्षय अनन्त सुख भोगता है। कल यदि समरानल में वृद्धवनितापर्यन्त भस्मीभूत होयँ, जगत में यदि आर्य्यनामपर्य्यन्त लोप हो जाए, तथापि एक मनुष्य भी जीवित रहते इस भूमि को म्लेच्छों के हस्तगत न होने दें, सब आदमियों को यही प्रण करना उचित है। (चारों ओर से—'अवश्य, अवश्य') एक मर्तबा सैन्यगण वीरदर्प से जयध्वनिपूर्वक दंडायमान होकर दिखलावें। (सब जयध्वनिपूर्वक सरल भाव से दंडायमान होते हैं)··········
(सैन्यगण द्विभाग होकर दंडायमान होते हैं)

प्रथम सैन्यभाग········

द्वितीय०·········

प्र०·········

द्वि०·········

प्र०·········

द्वि०·········

प्र०·········

द्वि०·········

(नैपथ्य में हुङ्कार शब्द)

प्रधान सैन्य—महाराज, देखिए, कतारकतार सैन्यों के आने से दुर्ग परिपूर्ण हो गया है।

द्वितीय०—······

चन्द्र०—(सानन्द) आज मैं जानता हूँ कि आर्य्यभूमि के तृणवृक्षादिपर्यन्त भी महाजीवन-विशिष्ट हैं। मैं इस समै महासाहसी हो गया हूँ। क्षीणबल शिलवक्ष को बालुकाबिन्दु के समान फूँककर उड़ा सकता हूँ। मैं आज अत्यन्त आनंदित हूँ। तुमलोग इस समै एक मर्तबा सब मिलकर विजयसिंहनाद करके अपने अपने विश्रामालय में गमन करो।

(आनन्दपूर्वक सबों का सिंहनाद)

द्वितीय दृश्य

[शिलवक्ष के शिविर में एक निर्जन गृह]

(वीरबाला आती है)

वी०—(स्वगत) पिता ने जो कौतुकपूर्वक कहा है, क्या वही मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है? सामान्य उपहास का आघात यह हृदय नहीं सह सका! छान्द्रकोतस! तुम तो अनजान और विलक्ष हो, तुम्हें तो इसने कभी नहीं देखा है, केवल तुम्हारा नामगौरव श्रवणमात्र किया है। तुम्हारे नाम में कैसी अद्भुत मोहिनी शक्ति है! तुम्हें देखने पर क्या होगा, सो नहीं जानती। तुम अदृश्य, मेरे हृदय को किस प्रकार लक्ष्य कर लिया? हाय! पिता के शत्रुप्रति यह कैसा अवैध भाव उत्पन्न हुवा है! सहस्रों बार बूझती हूँ, मैं पागल हो गई हूँ और मैंने विषम कंटकमार्ग में पाँव दिये हैं, तथापि अपने हृदय को समझा नहीं सक्ती हूँ। हृदय! तुमको फिर भी कहती हूँ, तुम इस अस्वाभाविक आशा को परित्याग करो। यदि होय तो जिसे कल शिविर में छिन्नमस्तक धूल में लोटते देखूँगी, ऐ हृदय! आज उसी के हेत क्यौं इतना व्याकुल हो रहा है! (दीर्घनिःश्वासपरित्याग) छान्द्रकोतस! तुम्ही आत्मसमर्पण क्यों नहीं करते? नहीं, नहीं, यह मैं नहीं चाहती। मेरे प्रियतम को लोग कापुरुष कहैं, यह सुनना मेरे हृदय को सह्य नहीं होगा। प्राणेश्वर! यदि तुम वीरों जैसा अपने शरीर को परित्याग करोगे तो मैं अनेक समै अश्रुसंवरन कर सक्ती हूँ। हा हा! मैं क्या करूँगी? मैं तो जैसे पागल हो गई हूँ! (गीत)

हे आनन्दचन्द, हृदयआकाश में आओ।

आज घोर अन्धकारमई रजनी में बिजली भी नहीं चमक्ती!

तृतीय दृश्य

[कक्षांतर में शिशुपाल निद्रित]

(कुशला का प्रवेश)

कु०—(स्वगत)...

शि०—हाँ हाँ। (पार्श्वपरिवर्तन)

कु०—अजी, उठो ना, अब कितना झकझोरें ?

शि०—(झिझककर गात्रोत्थान) हाँ, आप मुझे क्षमा करें। शरीर कुछ सुस्त है, इस हेतु कुछ थोड़ा सो गया था।

कु०—आप बड़े बोदे हैं, अपने कार्यसाधनार्थ आप कुछ यत्न नहीं करते।

शि०—क्यों ? जो आप कहिएगा, वही मैं करूँगा।

कु०—आप मेरी कथा तो सुनिए, वीरबाला आप ही की हो गई है।

शि०—क्या वीरबाला मुझे कुछ कहती है ?

कु०—क्या आप वीरबाला की कथा पूछते हैं ? आप तो कदापि उसे स्मरण नहीं करते ? मैं यह वार्त्ता वीरबाला से कह दूँगी।

शि०—जी नहीं, आपके पैरों पर गिरता हूँ, उनसे कुछ नहीं कहिये। उन्के लिए मैं अपने आहार और निद्रा को भी कुछ नहीं समझता।

कु०—......

शि०—जो हो, मैं छिनमात्र भी उन्हें भूल नहीं सक्ता। जिसमें वह मुझपर शीघ्र दया करें, सोई आप कीजिए।

कु०—मैं केवल आपसे कौतुक कर रही हूँ। वस्तुतः यह बात है कि वीरबाला आप पर आप ही आसक्त हो रही है।

शि०—मेरा माथा तो छुओ।

कु०—आप पागल तो नहीं हो गए हैं, क्या मैं आपसे मिथ्या कहती हूँ ?

शि०—तब मुझे उन्के पास ले चलिए। (आनन्दित होता है)

कु०—आप चित्कार न कीजिए; मैं जो कहती हूँ, वही कीजिए।

शि०—कहिए, मैं प्रस्तुत हूँ।

कु०—तब आपको स्त्रियों के जैसा कपड़ा पहिनना होगा। जैसा न होने से आप कैसे वीरबाला के साथ सर्वदा रह सक्ते हैं ? उसने इस बात को हमसे गुप्त में कह दिया है।

शि०—हाँ, उन्हं ने कहा है ?

कु०—आप यदि उससे मिलना शीघ्र चाहते हैं तो जो मैं कहती हूँ सोई कीजिए। इतने उतावले मत होवो।

शि०—अच्छा।

कु०—तब स्त्रियों का वेश धरो।

शि०—......

कु०—आप तो बड़े निर्बोध हैं। मैं जो कहती हूँ सोई कीजिए, नहीं तो मेरा दोष मत दीजिएगा; और गोंफ नहीं फेंकने से पुरुष कहकर लोग पकड़ लेंगे।

शि०—......

कु०—......

शि०—......

कु०—......

शि०—अब क्या करोगी ?

कु०—......

शि०—छि: ! आपने मेरे मुख में क्या लगा दिया ?

कु०—मैं आपकी अनुचरकारी नहीं हूँ; जो कहती हूँ सो कीजिए। आप मेरे काम में कोई प्रश्न नहीं कर सक्ते।

शि०—नहीं।

कु०—इस समै चलिए। जिस गृह में वीरबाला रहती है, उसको आप जानते हैं ?

शि०—आज्ञा, आपके प्रसाद से मेरा जाना है।

कु०—तब उस गृह में जाइये, आपको देखते ही वह पहिचान लेगी। कार्य्य सिद्ध होने पर मुझे क्या बिदाई दीजिएगा सो तो कहिए ! (हास्य)

शि०—सब कुछ आप ही का है। मैं अब उस तरफ जाता हूँ, अब विलंब करना कर्त्तव्य नहीं।

(प्रस्थान)

कु०—(सहास्य)······

[नेपथ्य में कोलाहल—··· कुशला का वेग से प्रस्थान]

चतुर्थ दृश्य

[शिविर]

[शिलादत्त और आमात्यवर्ग]

शि०—सुनते हो ? कैसा समुद्र को क्षुब्ध करनेवाला शब्द होता है ! सब आर्य्यसेना एकत्र हुई है। जिस देश में इतनी शक्ति, साम्य और एकाग्रता है, वह देश कभी परहस्तगत नहीं हो सकता।

मेगेन्थिस—असंख्य मनुष्य होते भी मैं उस तरफ का कुछ भी भय नहीं करता। सब शृगाल हैं। जब मेरी सेनातरंग उस तरफ की सेना पर हुंकार शब्द करती हुई पड़ेगी तब देखिएगा कि वे लोग भागने को भी पथ नहीं पा सकेंगे और विशेषतः सिंधुपति (देवपाल) हमलोगों के पक्ष में हैं।

(स्त्रीवेश में शिशुपाल का प्रवेश)

शि०—यह कौन है ? पागल तो नहीं है ?

मे०—आज्ञा, यह न स्त्री है न पुरुष।

शि०—यही तो, स्त्रियों का कपड़ा पहिने हुए है, दाढ़ी-मूछ भी मुड़ा ली है और मुख में तेल और कोयले का चित्र किया है। यह निश्चय पागल है।

शिशु०—(स्वगत) मैं निर्बोध हूँ। उस हतभागिनी के फेर में पड़ने से मेरी यह दशा हुई। इस समै कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए, पागलपन ही करना चाहिए। (नृत्य)—तानानाना तानानाना !

शि०—(प्रतिहारीप्रति) इस पागल को बाँधकर रक्खो।

प्रति०—जो आज्ञा।

(पागल को बंधन करके प्रतिहारी का प्रस्थान)

शि०—(जनान्तिक) हमलोगों को इस यात्रा का फल अच्छा नहीं होगा। इस समै मेरा हृदय आह्लादित नहीं होता।

(व्यस्त भाव से कुशला का प्रवेश)

शि०—क्यों पुत्री, इतना व्यस्त क्यों हो ?

कु०—चचा,............

शि०—ऐं, क्या हुवा है ?

(सबका प्रस्थान)

卐 ॐ 卐

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

[चन्द्रगुप्त की राजसभा—चन्द्रगुप्त और मुकुन्द]

चं०—देखो मुकुंद ! सिंधुपति देवपाल ने एक मरतबे म्लेच्छों के निकट आत्मसमर्पण कर दिया था, इसलिए हमलोगों को उसके विश्वास पर रहना उचित नहीं है।

(ऊर्ध्व स्वांस परित्याग करते हुए दूत का प्रवेश)

दू०—महाराज की जै हो।

चं०—क्यों जी, क्या देखकर आए हो ?

दू०—महाराज ! म्लेच्छसेना की नितान्त अस्त की अवस्था हो रही है। मैं छद्मवेश से सब देखे आता हूँ। अन्यान्य विषय के मध्य दो नवीन संवाद लाया हूँ, अनुमति होय तो निवेदन करूँ।

चं०—हाँ, कहो।

दू०—महाराज,......

चं०—(मुकुन्द प्रति) क्योंजी, मैं तो पहले ही कहता रहा कि देवपाल की दुरभिसन्धि है। यह सुनो ना, इस समै यह क्या कहता है !

दू०—महाराज ! और एक कथा सुनिए। शिलवच्छ की कन्या जो परम सुन्दरी है वह पागल होकर केवल आपका नाम जप रही है, इसलिए शिविर के सब आदमी व्यस्त हो रहे हैं।

चं०—क्या ? मेरा नाम ?

(देवपाल का प्रवेश)

चं०—आइए महाशय, बैठिए।

दे०—(उपवेशन करते हुए) जिससे म्लेच्छों का समूल नाश हो सोई कर्त्तव्य है। इस समै हमलोगों को कुछ चिन्ता नहीं है। आपका भी सैन्य असंख्य है, मेरा भी आपकी अपेच्छा न्यून नहीं है। आज मिलित युद्ध होने पर क्या किसी का डर है ?

चं०—आप जो कहते हैं सो अवश्य बहुत अच्छा कहते हैं, किन्तु जैसे आपने विश्वास के लिए शिलवच्छ के शिविर में अपने पुत्र को रख दिया है तद्रूप युद्ध नहीं होने पर्यन्त अपने को मेरे निकट आबद्ध रखिये।

दे०—नहीं महाराज, मेरा पुत्र घर है। आप मेरे कहने पर विश्वास रखिए।

चं०—जो लोग अनायास म्लेच्छों के अधीन हो जाते हैं वे लोग प्रेत और पशु के समान हैं। मैं घृणित पशुजातिप्रति कदापि विश्वासस्थापना नहीं कर सक्ता।

(चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार देवपाल बन्दिगृह में बंद हुए)

दे०—(स्वगत) हाय ! मैं यहाँ वहाँ दोनों जगह से गया। मैं जैसा हूँ, वैसा ही मेरा परिणाम हुआ।

द्वितीय दृश्य

[शिलवच्छ के शिविराभ्यन्तर गृह—वीरबाला]

वी०—(उन्मादिनीसमान गीत)—

हे आनन्दचंद, हृदयआकाश में आओ।
आज घोर अंधकारमई रजनी में तड़ित भी नहीं चमकती।

(शिलवच्छ का प्रवेश)

शि०—पुत्री, क्या हुवा है ?

वी०—(निस्तब्ध)

शि०—ओ पुत्री, पुत्री !

वी०—पिता !

शि०—तुम्हें क्या हुवा है पुत्री ?

वी०—पिता, मुझे तो कुछ भी नहीं हुवा है ।

(दामिनी और कुशला का प्रवेश)

दा०—यही तो पुत्री बैठी है ।

शि०—आज प्रभात होते ही समरानल प्रज्वलित होगा । सुनते हैं कि छान्द्रकोलस बड़ा वीर है । कल उसका वीरत्व देखा जायगा । वीरबाला ! तुम भी मेरे संग रणक्षेत्र में चलोगी ?

वी०—(सहर्ष) पिता ! मैं चलूँगी ।

(वीरबालाव्यतीत सबका प्रस्थान)

वी०—(स्वगत)............

तृतीय दृश्य

[प्रातःकाल—महाराज चन्द्रगुप्त की राजधानी के सम्मुखवर्ती वृहद् प्रान्तर]

(सेना, सेनापति, वाद्यकर प्रभृति)

प्रधान सेनापति—भ्रातृगण ! आज हमलोगों के आनन्द का दिन है ! आज म्लेच्छशोणित से समरांगन प्लावित करेंगे । म्लेच्छगण कैसे समरविशारद हैं सो आज देखेंगे । आओ सब आदमी मिलकर एक बार महाराज की जैध्वनि करें ।

सब—जै महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त की जै !

प्र० सेनापति—भ्रातृगण, यह सुनो, इस समै हमलोगों की जैध्वनि से पर्वत भी प्रतिध्वनित हो गए हैं । आओ, एक बार और जैध्वनि करें ।

सब—जै महाराज चन्द्रगुप्त की जै !

[रणवाद्य—युद्धवेश में महाराज चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

सब—महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त की जै !

चं०—प्रिय सैन्यगण ! तुमलोगों का उत्साह देखने से आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है। तुमलोगों के समान समरप्रिय और असीम बलशाली सैन्य जिसकी आज्ञा में हो वह इस जगत् को तृणसमान चूर्ण कर सक्ता है। तुमलोगों के साहस से आज मैं महाबली शिलयक्स को मेषपाल के समान जानता हूँ। अब लौटना उचित नहीं है। चलो युद्ध-क्षेत्र में चलें। चलो, एक बार ही सिंहहृदय म्लेच्छों को समूल ध्वंस कर आवें।

(जैध्वनिपूर्वक सबका प्रस्थान और रणवाद्य)

चतुर्थ दृश्य

[शिलयक्स के शिविर का सन्मुख भाग—शिलयक्स और पाश्चात्य म्लेच्छसैन्यगण]

शि०—(सैन्यगण प्रति) देखो, आज का युद्ध ही युद्ध है। अद्यपर्यन्त जितना राज्य जै किया, जितना युद्ध किया, बोध होता है कि आज के युद्ध के ऐसा कोई युद्ध नहीं हुआ। देखो, राजा छान्द्रकोतस के दृक्पातमात्र से ही असीम बल असीम साहस आनन्द और उत्साह से समरानल प्रज्वलित किया है। सैन्यबल और असाधारण वीरत्व न होने पर भी क्या कोई इस दुःसाहसिक कार्य में प्रवृत्त हो सक्ता है ? विशेषतः इस देश में जो तुमलोगों को हिन्दूसैन्यप्रति घृणा है सो आज परित्याग करो। आज प्राणपण से समरतरंग में निमग्न होवो। छान्द्रकोतस के सैन्यगण सिंह के समान बलवान् हैं, महाराज स्वयं महावीर हैं, अतएव आज विशेष कौशल के सहित प्राणपण करके युद्ध न करने से············चलो, सब वीरदर्प से चलो।

(रणवाद्य और सबका प्रस्थान)

पंचम दृश्य

[शिविरमध्य एक गृह; वीरबाला और कुब्जा]

कु०—वीरबाला ! तेरी यह उग्र चंडीमूर्त्ति देखकर मुझे भय होता है। युद्धवेश धारण किया है ! क्या तू सचमुच युद्ध में जाएगी ?

वी०—(आनन्दित होकर) युद्ध में जाऊँगी ! और क्या ? (तलवार उत्तोलित करके) यह मेरी असि देखो, आज इसी असिआघात से कितने वीर पुरुषों का वध करूँगी।

कु०—यह लो ! युद्ध में जाने को इतना फूल ! फूल की माला किस वास्ते ? यह सब देकर तू क्या करेगी ?

वी०—युद्ध में जो सबकी अपेक्षा अधिक वीरत्वप्रकाश करेगा, उसीके मस्तक पर वर्षण करूँगी और इस पुष्पमाला को भी उसीके गले में पहिनाऊँगी ।

कु०—तब क्या तू निश्चय युद्धक्षेत्र में जाएगी ?

वी०—और निश्चय क्या है ?

कु०—आ, तेरे इन बिखुरे हुए केशों को सँवार दूँ ।

वी०—नहीं, मेरे केशों को बाँधने का कुछ प्रयोजन नहीं है ।

कु०—तेरे इस भैरवीवेश को दिखलाने के लिए एक मरतबा चची को बुलाती हूँ ।

(कुलवेग से कुशला का प्रस्थान)

वी०—(स्वगत) इसी माला को आज वीरकेशरीसमान छान्द्रकोतस के गले में पहिनाऊँगी । और यह असि किस वास्ते ? प्रियवर का अमंगल होगा तो यही मेरी शान्ति की आश्रयस्वरूपा होगी । यह असि मेरे छान्द्रकोतस की निधनवार्त्ता सुनकर व्याकुली नहीं होने देगी—प्रिय असि ! आओ, तुम्हें हृदय में धारण करूँ । (असि का आलिंगन)

(युद्धवेश में शिलवच और संगसंग दामिनी और कुशला का प्रवेश)

शि०—(सहास्य) रणप्रिय मेरी पुत्री प्रस्तुत होकर बैठी है । पुत्री ! तेरा यह सूर्यतेजसप्रभ वदन देखने से मुझे भय होता है । पुत्री, मेरी असिधारिणी स्वर्गीय देवी ! (कपाल का चुम्बन करके) पुत्री, वीरत्व की उत्साहमूर्त्ति वीरबाला ! क्या तू सत्य ही युद्धक्षेत्र में जाएगी ?

वी०—पिता, मैं जाऊँगी ।

दा०—(सरोष) पागलिनी ! तू कहाँ जाएगी ?

वी०—मातः ! मैं युद्ध में जाऊँगी !

शि०—(दामिनी का आलिंगन करके और कुशला का सिरचुंबन करते हुए) वीरबाला ! जाएगी तो चल ।

(शिलवच का वीरबाला के कर धरे हुए प्रस्थान)

卐 ♣ 卐

पञ्चम अंक

प्रथम दृश्य

[युद्धक्षेत्र—हिन्दूसैन्यगण और महाराज चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चं०—वह देखो, म्लेच्छ सैन्यगण की पताका दीखती है। थोड़े ही काल पहिले ये लोग यहाँ आकर उपस्थित हुए हैं। तुमलोगों को इस समै ऐसा प्रस्तुत होकर रहना चाहिए कि जिस्से शिलवक्ष के ससैन्य सन्मुखवर्त्ती होने के पूर्व ही महावेग से आक्रमण कर लो, जबतक देखो कि एक हिन्दूसैन्य भी जीवित है तबतक युद्ध में पृष्ठदान मत करो। आज युद्धक्षेत्र में पराभव होने से अनन्तकालपर्यन्त हमलोगों को आर्यकुलकलंक कापुरुष कहकर लोग घृणा करेंगे। म्लेच्छअधीनता की अपेक्षा मृत्यु भी सौगुना श्रेय है। युद्ध में जिस्की कापुरुषता देखी जाए या जो कोई पृष्ठदान करे, उस्का मैं बिनाश कर दूँगा अथवा देश से निकाल दूँगा; और जो लोग जितना ही वीरत्व दिखावेंगे, मैं प्राण देने तक भी उन्के उपकार के हेतु यत्नशील होऊँगा। देखो सैन्यगण! मातृभूमिप्रति जितना संबंध मेरा है उसी रूप तुमलोगों का भी है। आज एक स्वार्थ एक मन एक बल से सब उपस्थित होकर संग्रामबद्धपरिकर होवें। देखो, उस्के समान नीच नराधम पशु पिशाच जगत में और कौन है जो अनायास मातृतुल्य मातृभूमि को म्लेच्छों के कर में अर्पण करके दासत्वबद्ध हो सके। वह घृणित कुलांगार वज्राहत होवे! किस नराधम पामर को मातृवक्ष में म्लेच्छपादाघात सन्मुख देखकर सह्य हो सक्ता है! हमलोग यदि आज रणभंग दें अथवा पराभव स्वीकार करें तो हमलोग भी उसी रूप से पामरों और नराधमों में गिने जाएँगे। जो हमलोगों के संमुख मातृतुल्य जन्मभूमि म्लेच्छों के पद से दलित होगी तो क्या हमलोगों का स्वत्व होगा? देखो, वह शिलवक्ष आते हैं। तुमलोग इस समै जयध्वनि करके प्रस्तुत होवो।

सब—(एकत्र होकर) जै महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त की जै!

[कुछ दूर पर म्लेच्छसैन्यगण—जै महावीर सिल्यूकस की जै!]

चं०—(सैन्यप्रति) और देखो, आक्रमण करो, मेरा विनाश होने पर भी तुमलोग भीरुन्याय रणभंग मत देना ।

हिन्दूसैन्यगण—जै महाराज चन्द्रगुप्त की जै !

म्लेच्छसैन्यगण—(निकटवर्ती होकर) जै महावीर सिल्यूकस की जै !

[उभय सैन्यगण का घोरतर युद्ध और अधिकसंख्यक म्लेच्छसैन्य का निपात]

चं०—(शिलबक्ष प्रति) महाशय ! यह वीर का चिन्ह नहीं है । नारी संग में लेकर युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हो ? आप जानिए कि आर्ययोद्धा कदापि नारी और दुर्बल प्रति अस्त्र-क्षेप नहीं करता । स्त्री का अंचल पकड़कर कौन युद्ध में आता है ?

शि०—(सक्षोभ) आपको अगण्य सैन्य का बल है और मेरा सैन्य अल्पसंख्यक है । क्या सहस्र मेष चेष्टा करके एक व्याघ्र का वध नहीं कर सक्ते ? आपलोगों का वीरत्व धिक् है । हमलोगों की स्त्रियों को भी हतने में हिन्दू जोद्धा साहसहीन हैं ?

चं०—(तड़ित वेग से असि को घूर्णित करके) क्या ? क्या कहते हो म्लेच्छशूर ?

वी०—(चन्द्रगुप्त के मस्तक पर पुष्पवृष्टि करती हुई) धन्य ! आर्य्यकुलगौरव छान्द्रकोतस !!

चं०—......

शि०—तब आइए !

[दोनों का परस्पर युद्ध और अस्त्राघात से शिलबक्ष की मूर्च्छा]

वी०—हाय पिता ! (पतन और मूर्च्छा)

चं०—(सैन्यप्रति) धरो धरो धरो, यह क्या हुआ ? (वीरबाला को गोद में लेकर) थोड़ा सा जल लाओ—(मस्तक पर पंखा झलकर) क्या यही शिलबक्ष की कन्या है ?

[आर्य्यसैन्य का शिलबक्ष को राजशिविर में ले जाना]

वी०—(चैतन्यप्राप्त होकर और असि को हस्त में लेकर) महाराज छान्द्रकोतस ! आप मेरे पिता के शत्रु होने पर भी ··(क्रन्दन) आपकी वीरता धन्य है, आपका बाहुबल धन्य है ! मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो आज के युद्ध में अधिक वीरत्व दिखलावेगा उसके गले में इस पुष्पमाला को स्वहस्ते पहिनाऊँगी । आइए महाराज ! प्रतिज्ञारक्षा करें ! (चन्द्रगुप्त के गले में माल्यदान) तथापि आप मेरे पिता के शत्रु हैं, मेरे पिता का बध किया है ।

मैं क्या पिता के ऋण में बद्ध रहूँगी ? (असि को निकालकर) आइए महाराज ! पितृधारशोध देकर प्रान परित्याग करूँ !

चं०—(विस्मित होकर) धन्य महावीर शिलबच्छ की कुमारी ! तुम्हीं अपने पिता की सुसन्तान हो ।

वी०—(रोती हुई) पितृशोक अब हृदय को सह्य नहीं है । महाराज, अस्त्रग्रहण कीजिए ।

चं०—बाले ! मैं अस्त्रग्रहण नहीं करूँगा । आर्य्यसन्तान वीर कदापि नारीरक्त से अस्त्र को कलुषित नहीं करते । तुम्हारे आश्चर्यजनक वीरत्व के पुरस्कारस्वरूप तुम्हें शरीरदान दे दिया ! तुम मुझे असिआघात से खंडखंड करके पितृऋण से मुक्तिलाभ करो ।

वी०—(अस्त्रत्याग कर) हाय पिता ! विदेश''(पतन और मूर्च्छा)

(पटाक्षेप)

द्वितीय दृश्य

[महाराज चन्द्रगुप्त की राजधानी—एक निभृत गृह]

(वीरबाला और चन्द्रगुप्त आते हैं)

चं०—बाले ! तुम दंडदंड मूर्च्छित क्यों होती हो ?

वी०—महाराज ! मैं अब पितृशोक सहन नहीं कर सकी ! (क्रन्दन)

चं०—भय न करो, तुम्हारे पिता जीवित हैं ।

वी०—वे कहाँ हैं ?

चं०—वे बन्दी होकर मेरे गृह में हैं ।

वी०—क्या ? वे बन्दी हैं ? (मूर्च्छा)

चं०—पितृअपमान से आघातित फनिनी के समान वीरबाला सिर पीट रही है ! ओह ! बालिका को इतना अभिमान !!

(वीरबाला के मुख पर जलसेक और विजन)

वी०—महाराज ! शत्रुकन्याप्रति इतना यत्न किस हेतु ? मुझे छोड़ दीजिए, एक व्याधजाल में प्रविष्ट उस सिंह को देख आऊँ । (क्रंदन) बाबा को एक बार देख आऊँ ।

चं०—कुछ चिन्ता नहीं, तुम अपने पिता को देखोगी ? इसके वास्ते कुछ भय मत करो । मैं पामर नहीं हूँ, बन्दीप्रति कदापि असभ्य व्यौहार नहीं करता । वे बन्दी होकर भी

राजसुख से हैं। तुम उनके लिए अब मूर्च्छित मत होवो। मैंने कितने यत्न से आज ४–५ बार तुम्हारी मूर्च्छा को भंग किया है।

वी०—(क्रन्दन) हा ईश्वर !

चं०—यही तो, फिर तुम रोती हो !

वी०—मेरा शरीर अत्यन्त अस्थिर हुआ है।

चं०—तो शयन करो, मैं तुम्हें पंखा झलता हूँ।

(वीरबाला का शयन)

चं०—(स्वगत) ऐसी नारीदुर्लभ रूपमाधुरी तो कभी नहीं देखी थी। म्लानमुखी पद्मिनी की जो एक निभृत चारु कांति है, सो तो कवियों के ज्ञान से भी अगोचर है। उस निष्प्रभ स्निग्ध कांति को मैं इस समय देखता हूँ। वह भी कवियों के स्थूल ज्ञान में स्थान नहीं पावेगा।

वी०—(चौंककर) महाराज ! आपने मेरे लिए आहार और निद्रा का परित्याग कर दिया, मुझपर इतनी दया ! मेरा सामान्य जीवन तो इस ऋणशोध के उपयुक्त नहीं है।

चं०—वीरबाला ! रोगियों की शुश्रूषा, शोकातुरों को सान्त्वना, दुखियों का अभावमोचन, आश्रितों के लिए जीवनदान, भीरुओं प्रति क्षमादान हमलोगों का स्वभावसिद्ध है, इसलिए तुम ऋणी नहीं हुई।

वी०—महाराज ! इस ऋण से कौन मुक्त कर सकता है ?

चं०—एक मर्तबा मैं तुम्हारे पिता के निकट जाऊँगा, आज तुम्हारे पिता को निर्मुक्तिदान करूँगा और तुमलोगों को हमारे गृहवासजनित कष्ट अनेक दिन भोगना नहीं पड़ेगा।

वी०—(दीर्घनिश्वाससहित कम्प्रमुखभंगि दूर करके) महाराज ! क्या और एक बार देखने की प्रत्याशा कर सकी हूँ ?

चं०—(सहास्य) अवश्य। (प्रस्थान)

वी०—(स्वगत) हृदय ! तुम धन्य हो। अयोग्य मनुष्य प्रति धावित न होवो, तुम जिसके लिए व्याकुल हो, वह राजेन्द्र, नरेन्द्र और वीरेन्द्र हैं। आज शोकसुखमिश्रित हिय कैसा एक भाव से उद्वेलित है ! पिता की दीनता और जिसको हृदयदान किया है उसकी वीरता, हृदय को दुखसुखतरंगआवेग से आघात कर रही है। हमारा सुखदुख

सब आज सागर समतूल अपार है । इस समै मेरी शान्तिमृत्यु है । जगदीश ! मैं इस समै मर जाऊँ ! ऊः ! (दीर्घ निःश्वास)

(एक दासी का प्रवेश)

वी०—तुम कौन हो ? क्या चाहती हो ?

दासी—मैं दासी हूँ । महाराज के आदेश से आपकी शुश्रूषा में नियुक्त हुई हूँ ।

वी०—महाराज कहाँ हैं ?

दासी—देवालय में ।

तृतीय दृश्य

[चन्द्रगुप्त की राजधानी—बंदिगृह]

शिलबच्छ—(स्वगत) महावीर छान्द्रकोतस का वीरत्व तो देखो, इस रूप का महावीर मैंने कदापि नहीं देखा है । हाय ! मैं स्वदेश से क्या कहकर इस पापी मुख को दिखाऊँगा ? हाय पुत्री वीरबाला ! तुम कहाँ हो ?—प्राणेश्वरी दामिनी की आज कौन दशा हुई होगी ! ओह, इस समै अस्त्र होता तो इस कलंकित जीवन को इसी छिन परित्याग कर देता । लोभ से पाप होता है और पाप से मृत्यु । मुझे भी वही होगा । कितने राज्य जय किया और कितने राजाओं को बन्दी और अस्त्रशून्य कर दिया । अब शेष इस समै मेरा पोषित दर्प एक बार ही चूर्णीकृत हो गया । महावीर छान्द्रकोतस ! क्या तुमने मेरा ही दर्प चूर्ण करने को भूमंडल में जन्मग्रहण किया था ? जिसको मैं मृनालसूत्र के समान लघु बोध करके अपमान करता था, उसको देखा तो महावज्र सा ! इतने पर भी महाभयंकर !!!

(दो सैनी मनुष्य और चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चं०—(ससंभ्रम) वीरवर ! यद्यपि कर्मदोष से आप आज मेरे गृह में बन्दी हैं, तथापि आपके वीरत्व की तुलना नहीं है । मैंने आपको कारामुक्त किया । आइए, आपको बंधुभाव से आलिङ्गन करें ।

शि०—आप मेरे परमशत्रु, किस रूप से मुझे बंधुभाव से ग्रहण कीजिएगा ? मैं जानता हूँ कि आप सुसभ्य और वीरधर्म पालन करते हैं, सब वीर का बंधुभाव से आलिङ्गन और क्या हो सक्ता है ? मुझे अस्त्रदान कीजिए, तभी यथेष्ट होगा ।

चं०—यथाविहित संधि करते हुए आपको अस्त्रदान करूँगा और आपको मुक्त करूँगा।

शि०—मैं मुक्ति नहीं चाहता।

चं०—तब आपकी क्या इच्छा हुई ?

शि०—आज देखूँगा कि आप कैसे सत्यप्रिय हैं।

चं०—आर्य्यसन्तान मृत्युशय्या पर भी सत्यप्रिय है।

शि०—आप अस्त्रग्रहण कीजिए, मेरा अस्त्र मेरे हस्त में दान कीजिए कि सबके संमुख दोनों का वीरत्व प्रदर्शित होए। यदि आप मेरे इस वचन को राखिएगा तो मैं जानूँगा कि आपकी प्रकृति वीर पुरुषों की है।

चं०—(सदर्प) आर्य्यसन्तान को युद्ध अतिप्रिय है इसलिए जो पृष्ठदान करता है वह भीरु और कापुरुष है। आप बन्दी हैं, आप प्रति मैं यथेच्छा व्यवहार कर सक्ता हूँ। इस समै आपके प्रस्ताव के अनिच्छाप्रकाश करने पर भी मेरा नाम महावीर शिलवक्ष के मस्तक पर ध्वनित होगा। मेरे नाम पर शिलवक्ष को साष्टांग प्रणिपात करना होगा, तथापि मैं असंभव वीरोचित और आर्य्यसाहस के बल से आपको कहता हूँ कि मैं आपके प्रस्ताव से सहमत होता हूँ। आर्य्यसन्तान भीरु नहीं हैं जो वे युद्ध में अनिच्छाप्रकाश करें। (जनान्तिक) जाओ, तुम इसी समै दो तीक्ष्णधार असि ले आओ। (शिलवक्ष प्रति) चलिए, आपकी इच्छा पूरित करें।

(दोनों का प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य

[राजभवन का संमुखवर्ती प्रांगण—नागरिक, सेना, वाद्यकार]

(निष्कोषित असि हस्त में लिए हुए शिलवक्ष और चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

नागरिकगण—यह क्या ? यह क्या ?

शि०—(असि को घुमाकर) इसी समै सावधान रहो।

(उभय का तुमुल संग्राम और शिलवक्ष का पतन)

चं०—(जानु-द्वारा शिलवक्ष के वक्ष को चाँपकर) अब ? (असि को उठाकर) क्या अब भी आप अस्वीकार कीजिएगा ? पराभूत नहीं हुए ?

(चारों ओर से—जै महाराज चन्द्रगुप्त की जै—और मृदुल विजयवाद्य—सबका प्रस्थान)

पंचम दृश्य

[राजान्तःपुर—गृह; वीरबाला और चन्द्रगुप्त]

चं०—वीरबाला ! तुम्हारे पिता मुक्त हुए। तुमलोगों के सैन्यगण भी मुक्त हो गए। तुम कल परमानन्द से उनके संग जाओगी।

वी०—(दीर्घ निःश्वास) माय कहाँ हैं ?

चं०—सब हैं।

वी०—सन्धिपत्र में क्या लिखा गया है ?

चं०—तुम्हारे पिता फिर इस देश में नहीं आवेंगे।

वी०—क्या बंधुभाव से भी नहीं आवेंगे ?

चं०—शत्रुराज्य में आने का उन्हें क्या प्रयोजन है ?

वी०—हमलोग कब जाएँगे ?

चं०—जब इच्छा हो। एक बात कहना चाहता हूँ।

वी०—कौन बात ?

चं०—जब पालन करो तो कहूँ।

वी०—(अश्रुपात करती हुई) प्राण देने तक भी पालन कर सकती हूँ।

चं०—शत्रु के लिए क्या प्राणदान सम्भव है ?

वी०—(रोती हुई) अवश्य असंभव है, किन्तु आज वह संभव है, आप कहिए।

चं०—चन्द्रगुप्त बल में इस भूमंडल पर एक ही मनुष्य है, यह बात तुम्हारे चित्त में क्यों बैठ गई है ?

वी०—(व्याकुल भाव से) इस बात का सदुत्तर क्या दूँ ? वह आप ही बतला दीजिए।

चं०—मुझे अपराधी समझकर क्षमा करो। ऐसा होने से इस पापी का नाम तुम्हारे हृदय को कलुषित नहीं करेगा।

वी०—(सखेद) प्रियतम ! (दाँत से जिह्वा को काटकर) मुझे क्षमा कीजिए राजन् !

चं०—तुम मुझे स्मरण रखना।

वी०—मैं स्त्री हूँ।

चं०—तुम्हारे चक्षु से जल क्यों गिरता है ?

वी०—इसके अनेक कारण हैं। इस समै सुनने का कुछ प्रयोजन नहीं है। कभी कहने का समै आ जाएगा तो कह दूँगी।

चं०—वीरबाला, अब मुझे कब देखोगी?

वी०—ईश्वरेच्छा से कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह भी हो सक्ता है। यदि कदापि मुझे कुछ कहना होगा तो और भिन्न किसीसे न कहूँगी।

(दासी का प्रवेश)

दा०—महाराज! मन्त्री महाशय ने आपकी अपेक्षा की है।

चं०—(वीरबाला प्रति) अब थोड़े ही काल में अपने पिता के शिविर में जाओगी, तुम्हारे पिता मुक्त हो गए। मुझे बोध होता है कि अब तुमसे देखादेखी न होगी। मेरी यह विनय है कि पिता का शत्रु कहकर उपेक्षा मत कीजियो।

वी०—(सजल नैन से) क्या? उपेक्षा?

(चन्द्रगुप्त और दासी का प्रस्थान)

वी०—(स्वगत) हृदय! तुम शान्त होओ। तुम मुझे अब व्याकुल मत करो। तुम वृथा क्यों दग्ध हो रहे हो!

षष्ठ दृश्य

[सभाकुटिम—महाराज चन्द्रगुप्त और चाणक्य]

चा०—महाराज! यदि मैं शिलवक्ष के शिविर में दूत नहीं पठाए होता, तो सर्वनाश हो गया होता। देवपाल की कुशला प्रति संधि सिद्ध होने से आज सर्वनाश हो गया होता।

चं०—आप समान बृहस्पति मंत्री जिसकी शुभफलवांछा करे उसे और भावना क्या है? आपने जो महत् कार्य्य तीक्ष्ण बुद्धिद्वारा सिद्ध किया है, उसका यश युगयुगान्तर में भी लोग गान करेंगे।

चा०—जो होय, शिलवक्ष सपरिवार शिविर में गए। संधिपत्र इत्यादि सब प्रस्तुत है, केवल आपके स्वाक्षर की अपेक्षा है। इसके हो जाने पर वे चले आएँगे।

(संधिपत्रदान और चन्द्रगुप्तकर्तृक स्वाक्षरित होना)

(चाणक्य का प्रस्थान)

चं०—(स्वगत) युद्ध में तो जयी हो गया, दुख की निशा अवसान हुई। किन्तु उसी के साथ चारुचन्द्र हार गया। वीरबाला! क्या तुमने पुष्पमाल देने के समै मेरे चित्त को छोर लिया? तुम सामान्य मानवी नहीं हो, तुम अमूल्य नारिरत्न हो।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—(प्रणामपूर्वक) महाराज! यह पत्र शिलयकुक्ष के शिविर से आया है। (पत्रप्रदान)

चं०—पत्र कौन लाया है?

प्र०—(हाथ जोड़कर) महाराज! जो पत्र लाया था सो इस पत्र को मेरे हाथ में देकर शीघ्र ही चला गया।

चं०—(पत्रपाठ) "प्राणेश्वर!" यह क्या? नहीं···।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

"राजन्! यह दु:खिनी चिरकाल के लिए विदा चाहती है। अन्य के चक्षु में मैं दु:खिनी नहीं हूँ, फलतः मैं नितान्त दु:खिनी के वेश में चलते समै हृदय का वेग और संकुचित नहीं रख सकी। जिस समै आपने मेरी कथा सुनने के लिए आग्रहप्रकाश किया था उस समै इस दीना ने कहा था कि समै पर कहूँगी। इस समै मेरा समै उपस्थित हुआ है। मैं स्त्रीप्रचलित रीति को व्यतिरिक्त करके आपको पत्र लिखती हूँ। बोध होता है, इसमें मेरा अधिकार भी हो सक्ता है। जो होय, मैं कुछ अधिक कहना नहीं चाहती। मेरा औधत्य क्षमा कीजिए! मैं आपसे सौगुना हार मान चुकी हूँ। आपने हरा दिया है। इधर पिता आपके निदारुण प्रहार से मुमुर्षुदशा में धराविलुंठित हुए थे, उधर मैंने आपके वीरत्व से भूलकर पुरस्कारस्वरूप आपके गले में पुष्पमाल्य पहिना दिया। प्रियवर!"

"आपकी अनुग्रहाकांक्षी
वीरबाला"

पुनश्च—"वीरबाला के वीरेन्द्र को हृदयदान करने से उसके मातापिता भी सुखी होंगे।

"सिल्यूकस"

चं०—प्राणेश्वरि! गुरुता में पर्वतराज हिमाचल तुमसे हार मानेंगे, बुद्धि में वृहस्पति तुमसे

हार मान सके हैं। तुमने कौन प्रकृति लेकर जन्मग्रहण किया है ? तुमने मुझे हृदय दान किया है !

जाओ प्रिया ! आज तुम यह कथा न कहे हुए जाती तो अच्छा था। ऐसा होने पर मैं पागल नहीं होता। पत्र को फिर एक मरतबा पढ़ें। (विस्मित होकर) यह क्या ? इस पत्र में शिलवक्ष का भी नाम है ! पहले तो यह नाम नहीं देखा था ! (हर्ष से) तब हृदय ! शान्त हो, व्याकुल मत हो ! बोध होता है कि यह गुप्त पत्र शिलवक्ष के हाथ में पड़ा था।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—महाराज ! शिलवक्ष के शिविर से एक मनुष्य और आया है।

चं०—उसको ले आओ।

(मेगेस्थिस का प्रवेश)

चं०—(उठकर हाथ पसारते हुए) आइए।

मे०—महाराज ! सिल्यूकस कुछ अस्वस्थ हैं। आप उनकी अभद्रता क्षमा करें। इनके अनुरोध को आप एक बार चलें।

चं०—इसके लिए इतनी सुजनता का क्या प्रयोजन है ? चलिए, एक ही साथ चलते जायँ।

मे०—महाराज ! क्षमा कीजिए। अनुमति होव तो मैं कुछ पूर्व ही शिविर में जाऊँ। बोध होता है कि महाराज को कुछ विलंब होगा। मैं इसलिए अग्रसर होता हूँ।

चं०—चलिए, मैं भी आता हूँ।

(दोनो का बहिर्देश में गमन)

सप्तमदृश्य

[शिविराभ्यन्तर]

(कुशला और दामिनी)

कु०—चची, आज शिविर इतना सुसज्जित क्यों हो रहा है ? क्या हमलोग इस समै आएँगे नहीं ?

दा०—······

कु०—······

दा०—पुत्री कहाँ है ? मैं तो कुछ नहीं जानती ।

(वीरबाला का प्रवेश)

दा०—पुत्री वीरबाला ! आज तू ऐसी क्यों है ? बाल बिखर गए हैं, मुखमुकुल म्लान हो गया है, हँसी नहीं है । इतना गंभीर अथच व्यस्त और चिन्तित तुझे कभी नहीं देखा था । (चुम्बन) मेरी पुत्री कैसी हो गई है ! आवो, तेरे बालों को बाँध दूँ ।

(उपवेशन और कवरीबंधन)

(सिल्यूकस का प्रवेश)

सि०—पुत्री वीरबाला कहाँ है ?

दा०—यही तो, अभी बाल बाँध दिया है । (वीरबाला ससंभ्रम दंडायमान)

सि०—(वीरबाला प्रति) पुत्री, स्वदेश को चलो, अब कितने दिनों तुमलोगों को विदेश में रास्तेरास्ते कष्ट दूँ ? मेरे संग तुमलोग भी कष्ट पाती हो । न नियमित समै पर आहार, न सुनिद्रा, न मन का सुख ।

कु०—चचा महाशय ! तब क्या हमलोगों को आज ही जाना होगा ?

सि०—(ईषत् हास्य) हाँ, इसी समै ।

वी०—(विमर्ष वदन से बैठकर) पिता, मेरा शरीर अत्यंत अस्थिर हुवा है ।

सि०—पुत्री, हठात् तुम्हें यह क्या हुवा ?

कु०—वीरबाला, रोती है ?

(मेगेस्थिस का प्रवेश)

सि०—क्या मेगेस्थिस, कार्य्य सिद्ध हुवा ?

मे०—आज्ञा, हाँ ।

सि०—क्या महाराज आते हैं ?

वी०—(सहर्ष दामिनी प्रति) कौन आते हैं माय ?

मे०—वे आध घंटे के मध्य ही में आकर उपस्थित होते हैं ।

सि०—(सहास्य) मेगेस्थिस ! तब तुम महाराज की अभ्यर्थना के लिए तैयार रहो । हमलोग तत्क्षण ही कुछ दूर जायँ । मेरे और महाराज के साक्षात्कार का प्रयोजन नहीं है ।

आपाततः हम, हमारी स्त्री, कुशला और वीरबाला और अल्पसंख्यक शरीररक्षक सैन को संग करके अग्रगामी होते हैं, क्यों ?

मे०—(सहास्य) अच्छा तो !

(मेगेस्थिनिस, सिल्यूकस का प्रस्थान)

वी०—(अवसन्न होकर सैन) ऊः !

दा०—पुत्री, अवसन्न होकर क्यों पड़ रही ? तुझे क्या हुवा ? उठ के बैठ ना, तुम्हारे बाल भी तो नहीं बाँधे गए ।

वी०—मैं इस समै बाल नहीं बाँधूँगी ।

कु०—यह देखो, तू रोती क्यों है ?

(मेगेस्थिनिस का प्रवेश)

मे०—(दामिनी प्रति) आपलोग अब आपनी अच्छा कपड़ा पहिनिए । वीरबाला को सजाकर संग लेते आइए ।

दा०—हमलोग कहाँ जाएँगे ?

मे०—कर्त्ता महाशय इसी पार्श्व के घर में हैं । आपाततः उसी घर में आइए ।

दा०—क्या हमलोग एक ही बार चलेंगे ?

मे०—(सहास्य) आज्ञा, हाँ, शीघ्र आइए ।

(मेगेस्थिनिस का प्रस्थान)

दा०—पुत्री ! उठो, अब कपड़ा पहिनो, चलो ।

वी०—माय ! (मूर्छा और पतन)

कु०—चची, वीरबाला को मूर्छा हो गई ।

दा०—यही तो, पुत्री वीरबाला ! उठो, (पंखा झलना और मुख पर जल छिड़कती हुई) पुत्री, तुम क्यों ऐसे हो गई ?

वी०—(चैतन्यलाभ करके) माय, तो क्या आज ही जाऊँगी ? (दीर्घनिश्वास)

दा०—पुत्री, तेरी दशा देखकर मेरा जी दहल गया था । जो होय, इस समै तुझे ज्ञान में देख कर बच गई ।

卐 ॐ 卐

उपसंहार

[शिल्यूकस का शिविर]

(हीरामणिमुक्ताखचित स्वर्णकुसुममंडित मनोहर वस्त्रगृह ।

रत्नसिंहासन पर महाराज चन्द्रगुप्त । एक पार्श्व में

शिल्यूकस । पश्चात् भाग में ग्रीकसैन्य ।

दक्षिण पार्श्व में हिन्दूसैन्य ।)

शि०—महाराज ! भारत जो प्रकृत वीरभूमि है, उसको मैंने इसी समै विशेष करके जाना है । (सहास्य) मैं दिग्विजय करने में दो अमूल्य रत्न हार चला, एक वीरत्वयश, और एक······

चं०—महात्मन् ! आपका यश अभी लुप्त नहीं हुवा है । और, और क्या, कहिए !

शि०—और, एक मेरे हृदय की मणिस्वरूपा 'वीरबाला' आपके उपेक्षा न करने से आपके वीरत्व के पुरस्कारस्वरूप उसे आपके कर में समर्पण करने की इच्छा करता हूँ ।

(आगे मेगेस्थिस, तिस्के पीछे दामिनी, उस्के पीछे वीरबाला और कुशला का प्रवेश)

शि०—(व्यग्रता के सहित उठकर वीरबाला का हाथ पकड़कर) पुत्री वीरबाला ! पवित्र ही सलिल में हृदय का विसर्जन किया था । यह देखो, वीरत्व से परितुष्ट होकर जिस्के मस्तक पर पुष्पवृष्टि की थी, जिस्को गोपनपत्र लिखा था, ये वही वीरेन्द्र उपस्थित हुए हैं । आज मैंने तुम्हें इन्हीं महापुरुष के हाथ में समर्पण किया । (चन्द्रगुप्त के हाथ में वीरबाला का हाथ देकर) पुत्री ! तुम बाल्यकाल में वीरत्व की प्रशंसा करती थी, इस समै जिस्के हाथ में तुम्हें समर्पण किया है, उन्की प्रशंसा करने से तुम तृप्त नहीं हो सकी ।

(दामिनी और कुशला कर्तृक पुष्पवृष्टि)

कु०—चचा ने जो कौतुकन कहा था, वही हुवा !

शि०—(कुशला को चुंबन करते हुए) हाँ पुत्री, जो कहा था, वही हुवा । (हास्य)

(वीरबाला को मूर्च्छा और पतन)

दा०—हाय ! हाय ! यह क्या हुवा ?

वी०—(उन्मदसमान) क्या आश्चर्य का स्वप्न है !

शि०—(वीरबाला को गोद में लेकर)...

(स्त्री का वस्त्र पहिने और हस्तबद्ध शिशुपाल और एक सैनिक का प्रवेश)

सै०—आज पाँच दिन से आपके आज्ञापूर्वक इस उन्मद को आबद्ध रखा है।

चं०—खलस्वभाव सिन्धुपति की अवस्था भी ऐसी ही हुई।

शि०—वह कैसे महाराज ?

चं०—महाशय ! जो कोई मेरे राज्य में दुरभिसंधिसाधन की इच्छा से आता है, मैं जान जाता हूँ। दुर्मति सिंधुराज मेरे कारागार में रुद्ध है।

शि०—(जनान्तिक प्रति) अच्छा, उन्होंने अपने पुत्र शिशुपाल को यहाँ विश्वासस्वरूप रखा था, शिशुपाल कहाँ है ?

शिशु०—(रोते हुए) मैं ही शिशुपाल हूँ। मेरी दुरवस्था देखिए। मेरा कुछ अपराध नहीं है। अनाहार से मेरा प्राण ओठों तक आ गया है !

शि०—(विस्मयसहित) क्या ? शिशुपाल, तुम्हारी यह दशा किसने की ?

(सैन्य उसके हाथ का बंधन दूर करता)

शिशु०—(वीरबाला को दिखलाकर) यही मेरी इस दुर्दशा की मूल है।

शि०—क्या ? वीरबाला ?

शिशु०—आज्ञा, हाँ।......

चं०—(रोषकषायित लोचन से) क्या कहा ? फिर कहो, सुनें ! (कंपित मुष्टि से असि को पकड़कर) मायाविनी पिशाचिनी की क्या कथा कही ? ओह, ओह !

वी०—(विस्मयसहित) यह क्या हुआ ?

चं०—(जल्दी से उठकर) कालसाँपिनी ! तू ही रह ! (गमनोद्योग)

मे०—महाराज ! इतना अधीर मत होइए और समस्त विवरण श्रवण कीजिए।

कु०—(चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़कर) महाराज ! मैं यह सब जानती हूँ, मेरी विनय सुनिए। जबतक आप मेरी बात नहीं सुनिएगा, मैं आपका हाथ नहीं छोड़ूँगी।

चं०—(उपवेशन करते हुए) कहो।

कु०—महाराज ! वीरबाला इस विषय में कुछ नहीं जानती। मैं ही शिशुपाल की इस दुर्दशा की मूल हूँ।

ह्ना०—पुत्री, यदि तू जानती है, तो और कह ।

कु०—महाराज ! मेरे कहने का विश्वास नहीं करेंगे, यह निर्बोध मुझसे नित्य कहता था कि जिसमें वीरबाला मुझे प्यार करे, वह उपाय कहो । मैं भी इसे कौतुकन आश्वासन देती थी । एक दिन मुझे इतना कहा कि मेरी इच्छा हुई कि चचा महाशय से कहकर इस निर्बोध को शास्ति दूँ । और विचार किया कि ऐसा न करके इस वनपशु से कुछ आमोद करूँ ।

शि०—(सविस्मय) तब, तब ?

कु०—तब मैंने कहा कि राजकुमार ! वीरबाला को आपसे यथेष्ट प्रेम है । इसको सुनने से इतना आनन्दित हुवा कि ताली देदेकर उछलने लगा ।

(सबका हास्य)

शि०—तब ?

चं०—तब क्या इसी नराधम की सब दुष्कृति है ?

कु०—महाराज ! सुनिए । मैंने कहा कि महाशय ! इतना शोर मत कीजिए, आवेश में वीरबाला ने आपको अपने घर बोलाया है । तब आनन्दित होकर निर्बोध ने स्त्रियों का कपड़ा परिधान किया ! मैंने कहा, दाढ़ीमूछ तो—

सैन्य—यह देखिये, अभी तक इसके मुख पर कोयला लगा हुवा है !

कु०—(द्रुतवेग से घर में जाना और लौटकर) महाराज ! यह देखिए, शिशुपाल का वस्त्र मैंने छिपाकर रख दिया था ! (सबका उच्च हास्य)

चं०—नराधम पितापुत्र सब क्या दोनों पशु हैं ?

(तारेश का प्रवेश)

ता०—(शिशुपाल की ओर देखकर, सहास्य) क्या महाराज ! क्या समाचार है ? मनोवांछा तो पूरी हुई न ? (शिवचन्द्र प्रति) इसके संबंध में एक आश्चर्यजनक उपाख्यान है, जिसके सुनने से आपलोग हास्य को संवरन नहीं कर सकेंगे ।

चं०—(दीर्घ निःश्वास त्याग करते हुए) और सुनने की आवश्यकता नहीं है ! (सबका हास्य)

शि०—(एक मुष्टि से शिशुपाल का हाथ पकड़कर) नराधम ! आज तूने सर्वनाश किया था ।

जैसा अविश्वासी घोर नारकी बर्ब्बर तेरा पिता है, वैसा ही तू भी है। आज तेरा उचित दंड होगा।

शिशु०—(भूमि पर गिरकर) मेरी रक्षा कीजिए। दोहाई मगधेश्वर की ! (सबका उच्च हास्य)

(दो हिन्दूसैन्य और देवपाल का बन्दीअवस्था में प्रवेश)

शि०—यह और क्या ?

सैन्यद्वै—महाराज ! सिंधुपति कारागृह से भागे जाते थे, हमलोग उन्हें पकड़े आते हैं।

चं०—(देवपाल प्रति) आपको कुछ भी लज्जा नहीं है ? आप भीरु और कापुरुष हैं, आप भारत की कुसन्तान हैं, आप नरपशु हैं। आप जो मेरे सर्वससर्वनाश करने पर प्रस्तुत हुए थे, आपको इस समै शतखंड करके श्वान के पदतले निक्षेप किया जाए, तभी उचित होय। ऐसी विश्वासघातकता के हेतु आप अनन्तकालपर्यन्त नरक भोगेंगे।

दे०—मगधेश्वर ! मुझे नरक से भी अधिक कष्ट है ! (क्रन्दन) जाति, मान, सब गए। यह देखिए, मगधसैन्य ने मेरे दक्षिण कर्ण को छेदन कर दिया है।

शिशु०—(रोकर) पिता, तुम्हारा कान काटा गया ? (सबका उच्च हास्य)

शि०—सिंधुराज ! यही आपके पुत्र हैं ? (सैन्य करके पितापुत्र का एक स्थान पर आना)

दे०—शिशुपाल ! पुत्र ! तुम्हारी इतनी शान्ति हुई है ?

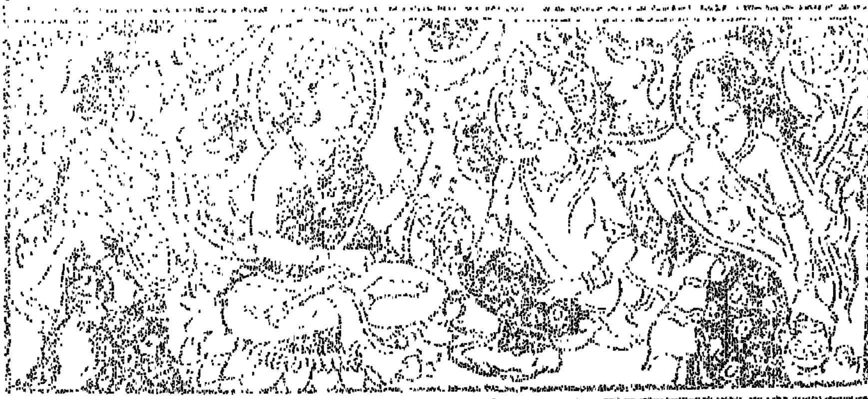
शिशु०—(रोकर) हाँ पिता ! तुम्हारा भी तो कान गया ! घर पर चलकर क्या कहोगे ? आँआँआँ !!! (सबका उच्च हास्य)





বৈকুণ্ঠের খাতা

[প্রহসন]



प्रहसन के पात्र

पुरुष

नैपाल बन्द्योपाध्याय	नायक
रामकुमार	नैपाल का पिता
कालीपदो मित्र	उन्नतिशील युवक
एन० राय	बारिस्टर
वीरेश्वर चक्रवर्त्ती	विज्ञ प्रतिवेषी
सिद्धेश्वर शील	ऋणदाता

स्त्री

मोहिनी	नैपाल की माता
हेमाङ्गिनी	नैपाल की स्त्री
चपला	एक पंडिता स्त्री
सुहासिनी	हेमाङ्गिनी की सहचरी

प्रथम अंक

प्रथम गर्भाङ्क

[वीरेश्वर का गृह—वीरेश्वर वो रामकुमार]

वीरेश्वर—वह पागल क्या तुम्हारा कहना मानेगा ? तुम उसके पिता हो। जब तुम्हीं को old fool (पुराना बेवकूफ) कहके डाँट देता है, तो हमलोग क्या हैं ?

रामकुमार—नहीं भाई ! बैठो। हम तुम्हारा सन्देह निवारण करते हैं। तुम अंगरेजी तो नहीं न जानते हो, पर तुम्हारा एक प्रकार से खातिर करता है। उससे पूछने पर वह यही उत्तर देता है कि केवल Press (छापाखाना) और समाचारपत्र मात्र रह जाएँगे और संसार के कुल पदार्थों का नाश हो जाएगा। हमारी जो कुछ पूँजी थी, उसे अभागे ने कोई व्यापार नहीं किया, वरंच एक मुद्रणयन्त्र खरीद किया है। केवल कल ही नहीं खरीदी है, वरञ्च और भी विशेष व्यय किया है। हमारे पास जो कुछ वस्त्राभूषण थे, उन्हें भी बेंच डाला। उसी पीड़ा से हम अद्यापि पीड़ित हो रहे हैं। हाय ! अभागे ने सब खो डाला ! यह भी सुना है कि सूदखोर सिद्धेश्वर को Handnote दे देकर क्रमशः ऋण लेता जाता है।

वी०—आजकल तो तुम्हारा नैपाल बिलकुल बदल गया है। उस दिन जब वह Town Hall meeting (टौन हौल की सभा) में गया था, तो उसका आचा और चेन देखकर हम चकित हो गए।

रा०—वह सिद्धेश्वर से ऋण लेकर यह सब व्यवहार कर रहा है। पूछने पर कहता है कि हमलोग Publicman (देशोपकारी) हैं, हमलोग देश के शिष्ट पुरुष हैं, लाट साहब और महाराजों के गृह में जाकर उनके साथ भोजन करना पड़ता है, बिना ऐसे वस्त्रों के कैसे काम चलेगा ? भाई ! कहो, इन बातों का क्या जवाब दें ? हमारा हृदय जल रहा है। हमारा प्रतिदिन पुनर्जन्म होता है, एक न एक दिन अवश्य मर जाएँगे।

वी०—वह तो बड़ा ही पागल हो गया, उसका क्या उपाय है? नौकरी-चौकरी तो करेगा नहीं! एक दिन हमने उसको रेल में Clerkship (किरानीगिरी) के लिए कहा था। उसने हँस के उड़ा दिया। यह समाचारपत्रप्रकाशन जबतक बन्द न होगा, तबतक उसका यह स्वभाव कदापि नहीं बदलेगा।

रा०—वह मूर्ख उसी के साधन में रातदिन मग्न रहता है। कुछ प्रयत्न करना चाहिए, नहीं तो बड़ा ही अपकार होगा।

वी०—अच्छी बात को कह ही देना चाहिए। किसी कार्य्य में तो वह लगेगा, विश्वास नहीं है, तथापि हमलोगों को उद्योग करने में त्रुटि नहीं करनी चाहिए।

रा०—भाई, इस समय तो हम जाते हैं, कुछ खानेदाने का भी प्रबन्ध करें, यह सब हमीं को करना पड़ता है। तो जाते हैं। (प्रस्थान)

वी०—(स्वगत —नैपाल को आते देखकर) अब इस अभागे को भी देखें।

(नैपाल का प्रवेश)

नै०—क्यों महाशय! आप नौकरी ही में सदा मग्न रहते हैं या किसी Public movement (देशोपकारी विषय) में भी सहायता करते हैं! समाज के प्रत्येक मनुष्य का धर्म्म है कि कुछ उत्तम कार्य्य करे।

वी०—क्यों जी, क्या कोई व्यापार है? स्पष्ट क्यों नहीं कहते? हम भी सुनें! हमलोगों की तो इस समय गणना old fools (पुराने मूर्खों) में हो रही है, तुम young generation (नई पीढ़ी) के हो। देश को तुम्हीं से भलाई की सब आशा है। देश के regeneration (पुनरुद्धार) का भार तुम्हीं लोगों के सर है!

नै०—व्यर्थ बकवाद त्याग कीजिए। अब व्यर्थ वादविवाद में समय व्यतीत करने का अवसर नहीं है। देश की यह दुर्दशा है तो कौन educated and sensible man (सुशिक्षित और बुद्धिमान मनुष्य) व्यर्थ बकवाद में कालक्षेप करेगा? यह उद्योग का समय है—केवल उद्योग ही उद्योग। तब देखो, हमलोगों की कैसी उन्नति होती है। इस समय agitation (आन्दोलन) की बड़ी आवश्यकता है, इसे आप जानते हैं? Prostitution (दुराचार) जो देश में फैला हुआ है, देश के सौ सौ युवक पुरुष, जिनसे देश की उन्नति की आशा है, इसी कालाग्नि में पड़कर भस्म हो रहे हैं। इस समय क्या देश-

हितैषी पुरुषों को चैतन्य नहीं होना चाहिए ? महाशय ! क्या अब भी निद्रा नहीं जायगी ? एक बार आँख खोल के Mr. Straight (मिस्टर स्ट्रेट) के वीरत्व को तो देखिए। हाय ! हमारे देश में कब ऐसे महात्मा जन्म लेंगे ?

वी०—अब स्थिरचित्त होकर हमारी भी दो बातें सुनो। तुमने अपने घर की अवस्था भी अपनी आँखों देखी है। क्या agitation (हलचल) ही खाओगे ? और माता-पिता के कष्ट से क्या देश ही का कष्ट बड़ा है ?

नै०—आप नितान्त स्वार्थपरता की बात कहते हैं। इसमें आपका दोष नहीं—यह प्राचीन-कालिक शिक्षा का फल है। आपलोग अपना ही भला चाहते हैं, और अपने ही को संसार का सार जानते हैं। Selfsacrificing spirit (आत्मत्याग का भाव) आपलोगों में नहीं है। आपने Matison's life (मैटिसन का जीवनचरित्र) भी पढ़ा है ?

वी०—अच्छा, इसके बाद इस समय देश के प्रधान अभाव की वार्त्ता एक बार करके देख लो। भारतउद्धार अथवा Social reformation (सामाजिक संस्कार) की कोई बात छेड़ के देखो तो कैसा भयंकर जीवनसंग्राम उपस्थित होता है ! देश जब देश रहैगा, तब न देश का उद्धार करोगे। दुर्भिक्ष और अनाहार की आग से जो देश भस्म हो रहा है, इसका क्या उपाय है ?

नै०—हाँ ! struggle for existence (जीवनसंग्राम) एक most evil (संकट) है, इसको मानते हैं। यह भी तो reformer (सुधारक) लोगों के programme (कार्य-क्रम) में आया था।

वी०—Reformer तुम किसको कहते हो ? सब ही जब reformer ही हो जाएँगे, तो reformed (सुधरा हुआ) कौन होगा ? तुम 'Politician heal thyself' की तरह reform करते जाते हो, किन्तु तुम स्वयं reformed नहीं होते। तुम तो आप ही दरिद्र हो, द्रव्योपार्जन की चेष्टा करके जो देश की दरिद्रता घटाना चाहते हो, तो क्या इससे देश की दरिद्रता नहीं बढ़ती ?

नै०—आपलोग हठी हैं। एक बार जो धर लेते हैं, वह फिर छोड़ते नहीं। आपलोग political economy के तत्त्व नहीं जानते। हम एक respectable journal के editor हैं। हमने Mailthun's Theory of Population पूर्णरूप से पढ़ा है। वह सब पुरानी बातें

हैं । अच्छा तर्क भी आपके सामने कुछ उपयोगी नहीं होगा । हमको इस समय Town Hall जाना है । आपको इस समय क्या काम है ? (प्रस्थान)

बी०—(नेपाल के जाने पर, स्वगत) यह लड़का तो एकबारगी पागल हो गया । इसका case अब hopeless है । हा ! दरिद्रपुत्र !! (प्रस्थान)

[यवनिकापतन]

卐 ॐ 卐

प्रथम अंक

द्वितीय गर्भाङ्क

[नेपाल का गृह—हैमाङ्गिनी वो सुहासिनी बैठी हुई हैं]

है०—प्यारी ! मैं इस समय private study करती हूँ । Language को उत्तम प्रकार से सीखना चाहती हूँ ।

सु०—क्या York study करती हो ?

है०—Randlaw's York, कल सम्पूर्ण mystery को समाप्त किया है, आज first होना चाहती हूँ ।

सु०—R. Y. पढ़ने में नेपाल बाबू कोई objection नहीं करते ?

है०—क्यों ? वे भी तो पढ़ते हैं ।

सु०—वे तो पुरुष हैं ।

है०—इससे कुछ बाधा नहीं । वे तो Principle of Radical female emancipation का खूब value करते हैं और यदि objection ही करें, तो उनकी सुनता ही कौन है ? हमलोग कुछ गूँगीबहरी तो हैं नहीं । हमारे विवाह के समय हमारे मातापिता ने यह condition किया है कि जितने दिन हमलोगों का वैवाहिक संबंध भंग न होगा, तबतक हमको और उनको equality of right observe करना होगा ।

सु०—अच्छा, तुम जो कालीपदो के संग पवित्र प्रेमभाव के कारण गई थी, तो उनने कुछ आपत्ति नहीं की ?

हे०—वह अपनी नीचता से कुछ मुझे दोष देते थे। अपने तो कुछ नहीं कहा, वरञ्च माता-पिता की दोहाई देने लगे।

सु०—तुम्हारी सासु आई हैं। हमारा भी अब school जाने का समय हुआ।

हे०—अच्छा! yes! yes!

(सुहासिनी का प्रस्थान वो मोहिनी का प्रवेश)

मो०—तुम कुलाङ्गना हो। यह घर और अब मेरा नहीं, तुम्हारा है। यदि तुम ऐसा करोगी, तो सर्वनाश हो जाएगा।

हे०—कुलाङ्गना किसे कहते हैं, जानती हो? प्रतिदिन ठट्ठा करती हो, क्या कोई तमाशा है? मैं किस कार्य्य का कैसे सर्वनाश करती हूँ?—यह मेरी बुद्धि में नहीं आता। जो विधाता ने मेरे भाग्य में लिखा है सो होगा।

मो०—प्रिये! मैं तो तुझे कोई बुरी बात नहीं कहती। तू झगड़ा क्यों करने लगी? तू मेरे नैपाल की लक्ष्मी है, क्या मैं तुझे त्याग सकूँगी? क्या मैं तुझे कोई अयोग्य बात कहती हूँ? मैं तो तेरी ही भलाई की बात कहती हूँ। देखो, मैं तो अब बहुत काल नहीं जीवित रहूँगी। अब मेरे गृहिणीत्व का अन्त है, अब मेरे सांसारिक कार्य्यों का अन्त है—यह कोई बुरी बात नहीं है।

हे०—क्यों? मैं कौन से सांसारिक कार्य्य को नहीं करती? क्या मेरे अर्थ संसार में कोई स्थान नहीं है?

मो०—देखो, किस बात का क्या उत्तर देती है! हा अभागिनी पुत्री! तू निशिद्यौस क्यों व्यर्थ निष्फल और झूठीझूठी बातों में लगी रहती है? संसार में तुझे लिखनेपढ़ने के व्यतिरिक्त और कौन सुकार्य्य है?

हे०—अच्छा! बहुत अच्छा! क्यों अधिक जलती हो? अब मैं तुमसे अलग ही हो जाऊँगी, नहीं तो अपने पिता के गृह चली जाऊँगी। अब तुम्हारी कटु बानी मुझसे सही नहीं जायगी।

मो०—तू तो बह गई! हमारा नैपाल यदि जीवित रहैगा तो तेरी ऐसी हजारों मिलेंगी। तेरे रहने से मेरी कुछ हाँड़ी नहीं जलती, अथवा तेरे द्वारा मेरी रोटी नहीं चलती। जब तू इन सभ्य पुरुषों में मुँह दिखलाने योग्य नहीं, तो तेरी जो खुशी हो, कर। मुझे

अब जाति और प्रतिष्ठा का भय नहीं। तेरे जाने से क्या हमारे हाड़ में वायु लग जायगा ?

हे०—चल, हट ! दूर हो ! अपने घर जा ! स्वामी की माता समझ के मैंने तेरी बड़ी रिआयत की, नहीं तो भली प्रकार बता देती कि मैं कैसी कुलाङ्गना हूँ !

मो०—मैं दूर नहीं हूँगी ! कलूटी, तू ही दूर हो ! क्या तेरे बाप का घर है हरामजादी ? नैपाल क्या तेरा ही बेटा है ? अच्छा, यही देखती हूँ कि तू कौन से नवाब के घर पड़ती है और तेरे साथ नैपाल क्या करता है ! (प्रस्थान)

हे० —(स्वगत) बिना divorce के अब कोई उपाय नहीं। कालीपदो बाबू ने पहले ही कहा था कि इस गृह में हमलोगों के सदृश अशिक्षिता रमणी का गुजर नहीं। मैं जितना ही चुप रहती हूँ, वह उतना ही बढ़ती जाती है। कालीपदो बाबू विलायत जाने को कहते हैं, इससे और कोई अच्छी बात नहीं दीख पड़ती। यदि ऐसा होता तो उनके साथ एक बार विलायत तो देख आती और इस यन्त्रणा से मुक्त होती।

(नैपाल का प्रवेश)

हे०—कहाँ जाऊँ ! अब तो सही नहीं जाती। तुम्हारी माता की यन्त्रणा से अब मेरी suicide commit करने की इच्छा है। तुमको विवाह के पूर्व ही यह विवेचना कर लेनी उचित थी। कि तुम एक कुलीना और शिक्षिता रमणी का पाणिग्रहण करते हो; और क्या विवाह के पूर्व ही तुमको अपने गृह के nuisance का द्वार बन्द करना उचित न था ?

नै०—प्यारी ! यह क्या बातें हैं ? स्पष्ट कहो। अभी उसके प्रतिविधानार्थ जो आज्ञा हो, करने को उद्यत हूँ।

हे०—तुम्हारी माता रातदिन मुझे जो मुँह में आती है गाली देती है। मैं उसपर damage suit दायर करने की इच्छा करती हूँ। बंगदेशीय सासुगणशिक्षार्थ कोई इस प्रकार का measure लेना अत्यावश्यक है।

नै०—Oh yes ! you are perfectly justified to take measure and such a measure is absolutely necessary for domestic reformation in the country. और Government को इस विषय में memoralise करना नितान्त आवश्यक है। इस विषय को मैं Female Emancipation Society के next meeting में move करूँगा। इस समय तुम ज़रा निज आभूषणों का box तो दो, देखें !

है०—Famine-fund के Balance में क्या तुम्हारे कुछ हस्तगत हुआ है ?

नै०—हाँ ! yes ! उससे कुछ प्राप्त हुआ है और एक नए fund से भी कुछ हाथ लगा है। इन दोनों के द्वारा तुम्हारा एक suit बहुत उत्तम बनेगा। उस room में इस list को रख दो। (प्रस्थान)

(यवनिकापतन)

卐 ♣ 卐

प्रथम अंक

तृतीय गर्भाङ्क

[नैपाल का office गृह—रामकुमार का आना]

रा०—कहाँ गया ? इस कुलाङ्गार को जूतों से ठंढा करूँगा।

(नैपाल का प्रवेश)

रा०—क्यों रे ! क्या तू मेरा कहना नहीं मानेगा ?

नै०—आप इस समय मत पधारिए। घर की बातें office में मत कीजिए। मेरे कार्य में बाधा मत दीजिए। आप समय का value नहीं करते। हमलोग अपने समय को घड़ी से नापा करते हैं। ठीक पाँच बजे मैं घर आऊँगा। आप उसी समय यह सब बातें कहिएगा।

रा०—तेरी बुद्धि नितान्त मंद हो गई। तू एकबारगी रसातल को चला गया। मुझी से जन्म लेकर मुझसे ही अपने समय का दाम पूछता है !

नै०—अधिक गोलमाल मत करो। कई gentlemen इस समय office में आनेवाले हैं।

रा०—क्या तुम्हारा office बहुत बड़ा है ? यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो मेरी बात सुन लो।

?



परिशिष्ट

ग्रंथकार के पूज्य पिताजी की कुछ रचनाएँ

सवैया

१

तन में मन में इन नैनन में कमला सुभ मूरति आइ बसे।
कहिबे सुनिबे गुनिबे में वही पद-पंकज की महिमा दरसे।
वर माँगत हौं कर जोरि यही जिनसे हिअ से मति और नसे।
बरसे बरसे रसना गुन को पद को सिर से कर से परसे॥

२

भजिये पद पंकजवासिनि की चितचेतन ब्रह्मविलासन की।
निसिनासन आसन आसन की, असि दारुन सी भवपासन की।
महिमा पद की नहिं जाय कही, सिर भूषन इन्दु हुतासन की।
मुद बासन आस निरासन की, प्रिय दासन की गति खासन की॥

३

हरि ते न छुटो हर ते न मिटो, बिधि ते न घटो दुख दारुन भारी।
बहु धाय थक्यो हिय हारि गिर्‍यो, छुधितातुर द्वार तेरे हरिप्यारी।
लघु बालक द्वार पुकार करै, करुना-रस-सागर आपु बिचारी।
पय अमृत-पान ले पालिये मातु, 'कुमार' हि गोद लगाय निहारी॥

४

सेइ उमापदपंकज को, जग जीवन को सुख लाहु लहो रे।
जो बिधि बिस्नु महेसहि पालत, सो पद को रज सीस धरो रे।
जोग न जाप न ज्ञान कछू करुना रस के बस आस गहो रे।
मूलबिभूतिनि ब्रह्मस्वरूपिनि, रूपसुधारस पाइ जियो रे॥

५

मातु पिता वर बन्धु सभी, सुरधाम गये मोहिं बालहिं त्यागी।
जानि अबोध अनाथ मोहीं, रिपुजुत्थ भये बध में अनुरागी।
सो दल नासि नेवाजि 'कुमार' हिं, गोद लगाय कियो बड़भागी।
काह भई करुना वह मातु जो पालित बालक की सुधि त्यागी॥

[भजन-भैरवी]

चन्दना

६

जयति गिरिकिसोरि मातु, भवनिधि को तरनी॥
चन्द्रवदनि चन्द्रभाल, सहस चन्द्र आज माल।
चन्द्रकला सी रसाल, त्रिबिध ताप हरनी॥
षन्मुख मुखपद्म चार, अतुलित महिमा बिचार।
चकित थकित अमित सहससीस नमित धरनी॥
आदि मध्य अन्त रहित, बरनत गति वेद थकित।
मूलप्रकृति ज्योतिरूप, देव दनुज सरनी॥
षन्मुख हेरम्ब आद, दारिद दुख कुल कदम्ब।
मेरी अवलम्ब अम्ब, शंकर प्रिय घरनी॥
हौं 'कुमार' अति अबोध, नेकहुँ नहिं पद प्रबोध।
केवल पद आस मातु सुत प्रमोद करनी॥

[भजन-दादरा—राग पिलू]

७

जुगल छबि हो निरखत थाके नैन ॥

वृन्दावन रमनीय सरद निसि, कोमल मलय समीर ।
मधुकर निकर कराकुल मधुकुल, कुसुमित बकुल गँभीर ॥
माधवि मालति माल निकुंजन, कोकिल कल बहु रंग ।
बिहरत जुगल किसोर मनोहर, दुति प्रति अंग अनंग ॥
सजल जलद दामिनि दुति जुग कर, कर मिलि लपटि सोहात ।
मकर्त मनि तरु मनहु लपटि रहि, हेमबेलि बिलसात ॥
नील जलज किसलय अरुनाकृत, जुग मुख सरस सुरङ्ग ।
पिअत अलोल अनोन्य सरस्मित, जुग लोचन जुग भृंग ॥
व्यापित ससि दुति कवि द्रुम रञ्जन, जुग पद जुगल कलंक ।
मनहु निरखि रबि छित बहु बपु धरि, मिलत निसंक मयंक ॥
यह सोभा राधा माधव की, नूतन रहस बिलास ।
अति अभिराम 'कुमार' जुगल सखि, बसि हिय करहु प्रकास ॥



